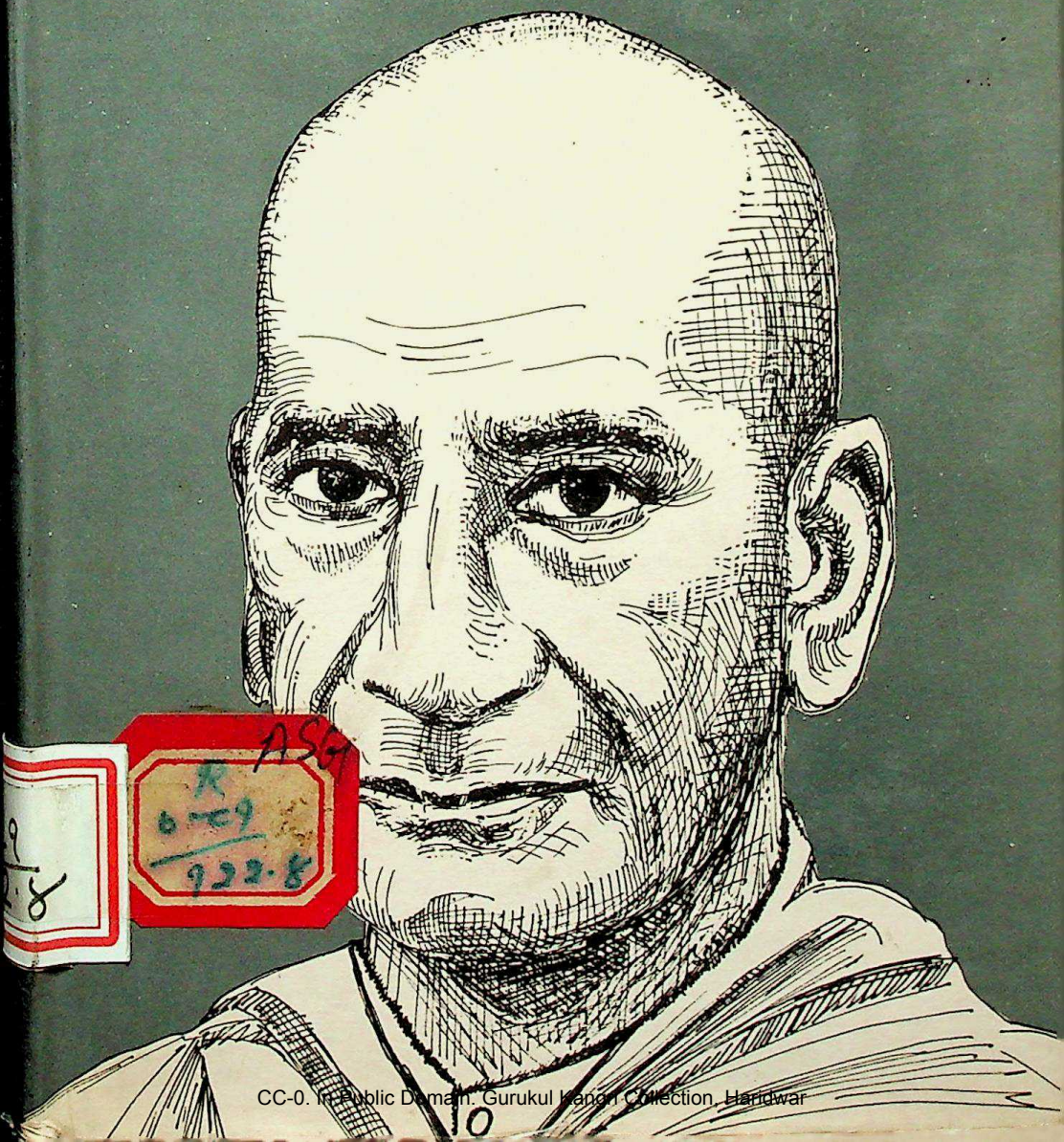


स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली



पुस्तकालय

1922.8 गुरुकुल काँगडो विश्वविद्यालय

91483

विषय संख्या ————— आगत नं०

लेखक श्री ह/न/५

शोषक र-वामी ॥ ५१ न ५ म-या वली

৮৭৫৪

[illegible]

[illegible]

श्रद्धानन्द ग्रन्थावली: ग्यारह खण्डों में

राष्ट्र पुरुष श्रद्धानन्द ने भारत में धर्म, समाज, संस्कृति तथा शिक्षा के क्षेत्र में चौमुखी क्रांति का सूत्रपात किया था। उन्होंने स्वयं को कल्याण मार्ग का एक ऐसा पथिक बताया जो ऋषि दयानन्द के दिव्य जीवन से प्रेरणा लेकर निज के तथा संसार के कल्याण हेतु निरन्तर प्रगति पथ पर आगे बढ़ता ही रहा। स्वामी श्रद्धानन्द जहाँ एक निष्ठावान धर्म प्रचारक, समाज सुधारक, शिक्षा शास्त्री तथा स्वाधीनता संग्राम के अजेय सेनानी थे, वहाँ वे सरस्वती के वरद पुत्र भी थे। उन्होंने हिन्दी, उर्दू, तथा अंग्रेजी में विपुलकाय ग्रंथों का प्रणयन किया है। उनके सभी ग्रंथों का प्रामाणिक और अधिकृत संस्करण श्रद्धानन्द ग्रन्थावली के ग्यारह खण्डों में प्रथम बार प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें स्वामी जी की स्वलिखित आत्मकथा के अतिरिक्त उनका संस्मरणात्मक साहित्य (बंदी जीवन के विचित्र अनुभव तथा इनसाइड कांग्रेस), वेदाधारित धर्मोपदेश, स्वामी दयानन्द के जीवन और व्यक्तित्व का मूल्यांकन परक साहित्य तथा धर्म समाज के इतिहास की स्मरणीय घटनाओं को लिपिबद्ध करने वाली रचनाएं एक साथ ही उपलब्ध कराई गई हैं। 'आर्य समाज एण्ड इट्स डिट्रेक्टर्स ए विण्डिकेशन' जैसे दुर्लभ किन्तु महत्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रामाणिक अनुवाद को भी ग्रन्थावली में समाविष्ट किया गया है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के उर्दू में संकलित 'क़लियात संन्यासी' तथा सद्धर्म प्रचारक व अन्य पत्र पत्रिकाओं से उनके लेख व शास्त्रार्थों का संग्रह सम्पादन तथा अनुवाद भी ग्रन्थावली के दो खण्डों में समाया है।

R
0-29
122.8

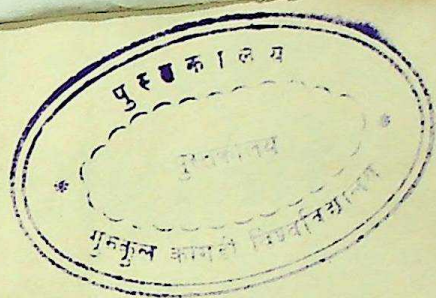
पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या.....

आगत संख्या 91483

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३०वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।



ओ३म्

91483

स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली

खण्ड चार

‘आर्यपथिक पण्डित लेखराम’
‘वन्दीघर के विचित्र अनुभव’
तथा कतिपय भूमिकाएँ

सम्पादक

डॉ० भवानीलाल भारतीय
एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, दयानन्द शोध पीठ,
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़



91483



गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली-६

R
०८१
१२२.४

प्रकाशक

विजय कुमार

गोविन्दराम हासानन्द

नई सड़क, दिल्ली-११०००६

संस्करण : १९८७

मूल्य : ६० रुपये

मुद्रक

अजय प्रिंटर्स,

नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

सम्पादकीय भूमिका

श्रद्धानन्द ग्रन्थावली के इस खण्ड को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। प्रस्तुत खण्ड में स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा लिखित दो अन्य ग्रन्थ तथा उनकी लिखी महत्त्वपूर्ण कतिपय भूमिकाएँ दी जा रही हैं। इनमें से प्रथम है आर्यपथिक पं० लेखराम का जीवनचरित। इसे स्वामी जी ने उस समय लिखा था जब वे “मुन्शीराम जिज्ञासु” के नाम से जाने जाते थे। इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण गुरुकुल कांगड़ी से जिज्ञासु उपहरण(उपहार)माला के अन्तर्गत १९७१ वि० (१९१४ ई०) में प्रकाशित हुआ था। इसका द्वितीय संस्करण गोविन्दराम हासानन्द कलकत्ता ने लेखक की भूमिका के साथ १९२४ ई० में छपा। एक अन्य संस्करण लक्ष्मी पुस्तकालय, बनारस सिटी ने फाल्गुन १९८६ वि० में प्रकाशित किया। आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब ने इसे २०२० वि० में पुनः प्रकाशित किया। इस प्रकार पं० लेखराम के इस महत्त्वपूर्ण जीवनचरित के अब तक पुस्तकाकार चार संस्करण निकल चुके हैं। सार्वदेशिक साप्ताहिक ने इसी पुस्तक को अपने विशेषांक के रूप में २०२५ वि० में अल्प मूल्य रखकर प्रकाशित किया था। प्रस्तुत ग्रन्थमाला में इसकी यह पाँचवीं आवृत्ति प्रकाशित हो रही है।

पं० लेखराम तथा स्वामी श्रद्धानन्द दोनों ही आर्यसमाज के हुतात्माओं की पंक्ति में मूर्धाभिषिक्त हैं। पं० लेखराम ने अपना स्वल्प जीवन वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज की विचारधारा के प्रचार-प्रसार-हेतु पूर्णतया समर्पित कर दिया था। उनका प्रथम सर्वांगीण मौलिक जीवनचरित महात्मा मुंशीराम की यशस्विनी लेखनी से ही लिखा गया था। जिस समय पं० लेखराम धर्म-प्रचार के क्षेत्र में अग्रतरित हुए, उस समय लाला मुंशीराम भी पंजाब की आर्यसमाजों के प्रतिनिधि संगठन आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रमुख नेताओं में परिगणित होने लगे थे। दोनों में उत्कट सौहार्द तथा मैत्रीभाव था। अनेक स्थानों की प्रचार-यात्राएँ दोनों ने साथ-साथ की थीं। इस प्रकार दोनों को ही एक-दूसरे के व्यक्तित्व, चरित्र, स्वभाव तथा विचारों को देखने-परखने का अवसर मिला था। वर्षों से पं० लेखराम का यह मौलिक जीवनचरित पाठकों को अप्राप्त था। इस ग्रन्थमाला में इसे पाकर पाठक निश्चय ही प्रसन्नता का अनुभव करेंगे। हमने इस संस्करण को तैयार करते समय ग्रन्थ के मूल पाठ को तृतीय संस्करण से आद्यन्त मिलाया है और अनेक जानकारीयुक्त पाद-टिप्पणियाँ भी दी हैं।

ग्रन्थावली के इस खण्ड में स्वामी श्रद्धानन्द की लेखनी से प्रसूत एक अन्य संस्मरणात्मक ग्रन्थ “बन्दीघर के विचित्र अनुभव” भी दिया जा रहा है। १९२२ ई० में अमृतसर के गुरुद्वारा ‘गुरु का वाग’ के समीप की भूमि को लेकर ब्रिटिश सरकार तथा सिखों में परस्पर विवाद उत्पन्न हुआ था। सिखों के विचार से यह जमीन गुरुद्वारे के अधिकार की थी, जबकि सरकार उसे अपनी बताती थी। अकालियों ने उस भूमि पर अपना अधिकार स्थापित करने के लिए सत्याग्रह का मार्ग अपनाया तथा २८ अगस्त को समस्त देशवासियों से अपील करते हुए कहा कि वे अमृतसर आकर इस अहिंसक सत्याग्रह को देखें। स्वामी श्रद्धानन्द ने सिख नेताओं के आह्वान को सुना और हकीम अजमल खाँ तथा पं० प्यारेलाल शर्मा आदि कांग्रेस के नेताओं के साथ वे १० सितम्बर को अमृतसर आये। स्वामी जी स्वयं ‘गुरु का वाग’ के परिसर में गए और वहाँ उपस्थित जनसमूह को सम्बोधित करते हुए उन्होंने सत्याग्रह में भाग लेनेवालों को आशीर्वाद दिया तथा इस धर्मयुद्ध में उनकी विजय की कामना की। जब वे अपना भाषण समाप्त कर वहाँ से प्रस्थान कर ही रहे थे कि उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और मुकद्दमा चलाकर कारावास का दण्ड दिया गया। कुछ दिन अमृतसर जेल में रखने के पश्चात् उन्हें मियाँवाली (पाकिस्तान) की जेल में स्थानान्तरित कर दिया। २६ दिसम्बर १९२२ को उन्हें अचानक मियाँवाली कारागार से मुक्त कर दिया गया, यद्यपि उन्हें एक वर्ष ४ मास की सजा सुनाई गई थी। प्रस्तुत ग्रन्थ में स्वामी जी ने अपने जेल-जीवन के अनुभवों का रोचक वर्णन लेखनीवद्ध किया है।

“बन्दीघर के विचित्र अनुभव” का प्रथम संस्करण १९२३ ई० में प्रकाशित हुआ था। यह पर्याप्त समय से अनुपलब्ध था। आर्यसमाज के प्रख्यात शोध विद्वान् प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु को इसकी एक जीर्ण प्रति गिदड़वाड़ा (जिला फरीदकोट) के श्री मदनलाल आर्य ने उपलब्ध कराई थी। इसी प्रति की सहायता से प्रो० जिज्ञासु ने १९८५ ई० में इस दुर्लभ पुस्तक का दूसरा संस्करण स्वयं सम्पादित कर स्वामी स्वतन्त्रानन्द शोध संस्थान, अवोहर (पंजाब) से प्रकाशित किया। हमने प्रस्तुत खण्ड में ‘बन्दीघर के विचित्र अनुभव’ का पाठ प्रो० जिज्ञासु जी के संस्करण से ही लिया है तथा उसे समुचित रीति से संशोधित भी कर दिया है। जो पादटिप्पणियाँ हमने आवश्यक समझीं उन्हें ग्रन्थान्त में दिया गया है।

ग्रन्थावली के इस खण्ड में हमने महात्मा मुंशीराम लिखित निम्न भूमिकाएँ भी समाविष्ट की हैं—

१. ऋषि दयानन्द के पत्र-व्यवहार की भूमिका

ध्यातव्य है कि ऋषि दयानन्द के पत्र-व्यवहार का धारावाही प्रकाशन सर्वप्रथम महात्मा मुंशीराम ने ही अपने पत्र ‘सद्धर्मप्रचारक’ में करना आरम्भ किया

था। कालान्तर में स्वामी दयानन्द के नाम लिखे गए पत्रों का प्रथम संग्रह उन्हीं के द्वारा सम्पादित होकर १९६६ वि० (१९१० ई०) में ग्रन्थाकार प्रकाशित हुआ था। इस पत्र-संग्रह की विस्तृत भूमिका स्वयं मुंशीराम जी ने लिखी थी। पाठक देखेंगे कि इस भूमिका के द्वारा ऋषि दयानन्द से पत्र-व्यवहार करनेवालों के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण जानकारीयाँ मिलती हैं तथा स्वामी जी के जीवन एवं व्यक्तित्व के भी अनेक अद्यतन अप्रकाशित पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है।

२. उपदेश-मंजरी के उर्दू अनुवाद की भूमिका

पुणे में दिये गए स्वामी दयानन्द के प्रसिद्ध १५ व्याख्यानों का उर्दू अनुवाद महात्मा मुंशीराम ने १८९८ ई० में प्रकाशित किया था। इसका द्वितीय संस्करण १९०१ ई० में छपा। दोनों संस्करणों की भूमिकाओं का हिन्दी रूपान्तर इस ग्रन्थावली में समाविष्ट किया गया है।

३. उर्दू ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की भूमिका

१८९८ ई० में महात्मा मुंशीराम ने ऋषि दयानन्द के विख्यात ग्रन्थ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के कतिपय अंशों का उर्दू में अनुवाद किया। यह भूमिका के लगभग तृतीयांश का अनुवाद था। महात्मा जी ने इस अनुवाद की जो भूमिका लिखी थी उसका नागरी रूपान्तर मुझे जालन्धर-निवासी पण्डित ओम्प्रकाश जी ने कई वर्ष पूर्व भेजा था। मैंने इसे हिन्दी में अनूदित किया है, जो इस ग्रन्थावली में सन्निविष्ट है।

४. पं० लेखराम लिखित महर्षि दयानन्द-जीवनचरित (उर्दू) की भूमिका

इससे ऋषि दयानन्द के विषय में अतिरिक्त जानकारी मिलेगी।

इस प्रकार पाठक देखेंगे कि ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों तथा पत्रों के सम्बन्ध में स्वामी श्रद्धानन्द ने जो अन्वेषणात्मक कार्य किया था, उसे ग्रन्थावली के इस खण्ड में एक ही स्थान पर प्रस्तुत कर दिया गया है। अनेक उपयोगी पादटिप्पणियाँ देकर विभिन्न विषयों को स्पष्ट किया गया है। निश्चय ही पाठक सम्पादक के श्रम को सराहेंगे और इसी में सम्पादकीय कर्म की कृतकार्यता भी है।

वैशाख शु० ८, २०४४ वि०

दयानन्द शोध संस्थान,

पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

—सवानीलाल भारतीय

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१. आर्यपथिक पण्डित लेखराम	७
२. बन्दीघर के विचित्र अनुभव	११६
३. ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार—भूमिका	१५३
४. उर्दू ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की भूमिका	१७५
५. उपदेश मंजरी (उर्दू अनुवाद) की भूमिका	१८१
६. महर्षि दयानन्द जीवनचरित (उर्दू) की भूमिका	१८४

आर्यपथिक पं० लेखराम

१

वंश

आर्यसमाज के परिमित चक्र में तो कोई ही ऐसा बेपरवा आलसी होगा जो आर्यपथिक के नाम तथा काम से परिचित न हो, किन्तु आर्यसमाज से बाहर भी करोड़ों मनुष्यों ने लेखराम का नाम सुना है। वीर लेखराम के जीवन की अन्तिम घटना यदि ऐसी क्षुब्ध न होती तो सम्भव था कि उनकी अर्थी के साथ ३० सहस्र के स्थान में तीन सहस्र जनसंख्या भी न होती। ऐसी अवस्था में सम्भव है कि आर्यसमाज की परिधि से बाहर उसको जाननेवाले भी कम होते; किन्तु फिर भी उसके जीवन में ऐसी विचित्र घटनाओं का प्रादुर्भाव हुआ है जिनसे उसका जीवन-वृत्तान्त सर्वसाधारण के लाभार्थ प्रकाशित करने की आवश्यकता होती है।

जन्मभूमि को जननी कहना कुछ अनुचित नहीं, क्योंकि जिस प्रकार गर्भ में स्थित सन्तान पर माता के गुण, कर्म तथा स्वभाव के संस्कार पड़ते हैं वैसे ही जन्मभूमि के जल, वायु तथा प्राकृतिक दृश्यों का भी आश्चर्यजनक प्रभाव मनुष्य के जीवन पर पड़ता है। लेखराम का जन्म एक ऐसे स्थान पर हुआ जहाँ का जलवायु पुष्टिकारक तथा जहाँ के बाह्य दृश्य मन को उत्साहित करनेवाले थे। पंजाब में जेहलम का जिला जानदार घोड़ियाँ उत्पन्न करनेवाले धन्नी प्रान्त वरली हद पर स्थित है; उसमें चकवाल की तहसील प्रसिद्ध है। खास चकवाल उपनगर से आठ कोस पूर्व की ओर ऊँची सतह पर सैदपुर (सय्यदपुर) नामी एक ग्राम है। इस ग्राम के तीनों ओर कस अर्थात् वरसाती नदियाँ बहती हैं। ग्राम की पूर्वी सीमावाली नदी का नाम काशी है। इस नदी का स्रोत रामहलावाँ नामी पहाड़ी से आरम्भ होता है, जिसके विषय में प्रसिद्ध लोकोक्ति है कि वन-वास के समय पाण्डव कुछ काल तक इस स्थान में खेती करके दिन बिताते रहे। रामहलावाँ पहाड़ी हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थ कटाक्षराज के पास ही है, इसी कारण नदी का नाम काशी पड़ा होगा। दूसरी नदी का नाम मुर है जिसे पण्डित लेखराम जी 'सरस्वती' का अपभ्रंश बतलाया करते थे। इस नदी का स्रोत 'करंगली' नामी पहाड़ी से निकलता है और सय्यदपुर के दो ओर होता हुआ काशी से जा मिलता

है। दक्षिण और पूरब के कोने की ओर बराबर एक हरी-भरी गिरिमाला जाती है जिसका नाम “दरगेश” और “दल जवा” है। इस ग्राम की आबादी ३०० घरों से अधिक नहीं, किन्तु ग्रामनिवासी प्रायः खाते-पीते खुशहाल थे। सिक्खों के राज्य में इस ग्राम की ऊँचाई पर एक पहाड़ी गढ़ भी था, जिसे सरदार उत्तम-सिंह ग्रहलूवालिया ने बनवाया था। उस गढ़ के एक-दो बुरुजों के अब चिह्नमात्र ही शेष रह गये हैं, बाकी सब-कुछ बरसाती नदियों की भेंट हो चुका है।

यद्यपि पण्डित लेखराम का जन्म सय्यदपुर में हुआ, तथापि उनका वंश पहले पोठोहार का निवासी था। रावलपिण्डी का जिला पोठोहार का गढ़ है। उसके कूटा नामी ग्राम में लेखराम के पुरखा निवास करते थे। कूटा भी प्राकृतिक दृश्यों से शून्य स्थान नहीं है, किन्तु उसका वर्णन इस समय करने की आवश्यकता नहीं। यहाँ इतना लिखना ही पर्याप्त है कि लेखराम के दादा महता नारायणसिंह के पिता पहले-पहल पोठोहार से अपने ससुराल के ग्राम सय्यदपुर में आ बसे थे। उनके दो पुत्र थे जिनमें एक नारायणसिंह थे। नारायणसिंह के दो पुत्र उत्पन्न हुए; बड़े का नाम महता तारासिंह और छोटे का नाम महता गण्डाराम, जो पेशावर पुलिस में डिप्टी इन्स्पेक्टर थे और अब पेन्शन लेकर रावलपिण्डी में निवास करते हैं। बड़े भ्राता तारासिंह के घर एक पुत्री तथा तीन पुत्र उत्पन्न हुए। सबसे बड़े का नाम लेखराम, दूसरे का तोताराम और तीसरे का नाम बालकराम रक्खा गया। पुत्री सबसे छोटी थी जिसका नाम मायावन्ती रक्खा गया। लेखराम वर्तमान जातिभेद के विचार से ब्राह्मण थे—इतना लिखना ही काफी है; इससे अधिक आन्दोलन की इस समय, जबकि वैदिक वर्णव्यवस्था को पुनर्जीवित करने का विचार हो रहा है, कुछ भी आवश्यकता नहीं, फिर भी इस विषय का विशेष वृत्त मनोरंजक होगा।

लेखराम के प्रपितामह का नाम “प्रधान” था। वह शाण्डिल्य गोत्रज सारस्वत ब्राह्मण-कुल में से एक साधारण पुरुष थे। इनके विषय में कुछ विशेष हाल मालूम नहीं हुए, परन्तु आर्यपथिक के दादा नारायणसिंह के जीवन पर एक दृष्टि डालने की आवश्यकता है, क्योंकि लेखराम के जीवन में बहुत-सी घटनाएँ ऐसी उपस्थित हुई हैं जिनका गुह्य रहस्य पैतृक संस्कारों के ज्ञान के बिना प्रकाशित नहीं किया जा सकता। नारायण के साथ सिंह का योग ही सिद्ध करता है कि परशुराम की तरह यह भी हर समय कहने को तैयार रहते थे कि—“केवल द्विज कर जानेस मोहीं। मैं जस विप्र सुनावहुँ तोहीं।” हम ऊपर लिख चुके हैं कि सय्यदपुर में सरदार उत्तमसिंह ने सबसे पहले गढ़ बनाया था। उसके पश्चात् यहाँ के हाकिम सरदार कान्हसिंह मजीठिया हुए, जिनके यहाँ नारायणसिंह ने घुड़चढ़ों (सवारों) में नौकरी कर ली। नारायणसिंह बड़े दृढ़ पुरुष थे। उनका शरीर बलिष्ठ तथा हाथ-पैर खुले थे। उनकी बहादुरी के कारण सरदार कान्ह-

सिंह इन्हें बहुत माननीय समझते थे और भी जन प्रायः अपने साथ ही कराया करते थे। पेशावर में एक बार सरदार कान्हिसिंह के साथ पठानों के सामने युद्ध में खड़े हुए थे, वहाँ इनको बड़ा प्रबल धाव लगा। बन्दूक की गोली मुँह में लगकर दाहिने कान के पास से होती हुई गर्दन में से बाहर निकल गई, किन्तु बहादुर नारायणसिंह ने मुख पर मलिनता तक न आने दी। जब नीरोग हुए तो सरदार साहब ने सोने के कड़ों की जोड़ी देकर उनका मान किया। इसके पश्चात् भी कई लड़ाइयों में हाथ दिखाकर इन्होंने सिक्खों की नौकरी छोड़ दी। इनके जीवन की एक और विचित्र घटना यहाँ वर्णन के योग्य है कि जब ब्रिटिश राज्य-शासन के स्थापन होने पर प्रजा से हथियार ले लिये गये तो नारायणसिंह ने अपने हाथ से हथियार रखने को अपमान समझा और “पुच्छ” के राज्य में जाकर अपने हथियारों को स्वयं बेच दिया। हम आगे चलकर लेखराम के जीवन में अपने पितामह के दृढ़ संकल्पों का प्रभाव देखेंगे। अपने बड़े पुत्र तारसिंह के विवाह के पश्चात् जो संवत् १६१२ में हुआ, नारायणसिंह कश्मीर के सरदार हाड़ासिंह जी के यहाँ कोठारी नियत होकर चले गये और वहाँ से लौटकर उनका देहान्त संवत् १६२५ में सय्यदपुर ग्राम के अन्दर हुआ।

नारायणसिंह के छोटे भाई श्यामसिंह थे। यह बालब्रह्मचारी ही रहे और सिक्खों के राज्य की समाप्ति पर साधु होकर विचरते रहे। इनका देहान्त संवत् १६२८ विक्रमी में हुआ; तब लेखराम कुमारावस्था से आगे पग धरने लगे थे और यदि हम यह अनुमान करें कि लेखराम के आगामी धार्मिक जीवन पर इनके दृष्टान्त का कुछ प्रभाव पड़ा तो कुछ अनुचित न होगा।

जन्म तथा बाल्यावस्था

लेखराम का जन्म = चैत्र सं० १९१५ वि० को शुक्र के दिन सय्यदपुर ग्राम में हुआ। छः वर्ष की आयु में ही इसको देहाती मदरसे में उर्दू-फारसी पढ़ने के लिए भेजा गया। पंजाब में चिरकाल से फारसी का राज्य हो चुका था। खालसा पन्थ के राज-शासन से पहले लाहौर मुसलमान राजप्रतिनिधियों का गढ़ था। कई समयों में दिल्ली के बादशाह स्वयं लाहौर में निवास किया करते थे। न्यायालयों का सब काम हिन्दू राजकर्मचारी भी फारसी में ही करते थे। देवनागरी अक्षरों का किञ्चिन्मात्र भी प्रचार न था, और होता कैसे जब सरकारी नौकरी से बढ़कर कोई मान का स्थान ही न समझा जाता था और सरकारी नौकरी में उन्नति प्राप्त करने के लिए आवश्यक था कि फारसी भाषा में उत्तम योग्यता सम्पादन की जावे। उन दिनों ५ रु० मासिक पानेवाला घाट का मुहरिर भी अपने-आपको “अहले कलम” कहकर उपजकी लेता था और लाखोंपति साहूकारों तथा सैकड़ों की मालगुजारी भुगतानेवाले जमींदारों को अपनी प्रजा समझता था। ऐसे समय में एक ब्राह्मण-कुलोत्पन्न बालक के लिए भी देवनागरी लिपि सिखाने और संस्कृत भाषा पढ़ाने का विचार किसके दिल में उत्पन्न हो सकता था? किन्तु फिर भी मालूम होता है कि लेखराम के हृदय में अपने धर्म के दृढ़ संस्कार छुटपन से स्थिर हो चुके थे। अपने धर्म की कथाएँ उन्होंने कहाँ से सुनीं और उन पर दृढ़ता कैसे हुई, इसका कुछ पता नहीं चलता; किन्तु यह स्पष्ट है कि लेखराम के चित्त पर धार्मिक घटनाओं का प्रभाव बहुत शीघ्र पड़ा करता था।

अभी अक्षराभ्यास ही हुआ था कि शिक्षा-विभाग का चीफ मुहरिर परीक्षा लेने को आया और लेखराम की हाजिरजवाबी से ऐसा प्रसन्न हुआ कि उसे विशेष पारितोषिक का पात्र समझा। सं० १९२६ में, जब लेखराम की आयु ११ वर्ष की थी, उसके चचा गण्डाराम पेशावर पुलिस में एक स्थिर स्थान पर नियत हो गए और उन्होंने लेखराम को अपने पास बुला लिया। इस स्थान में लेखराम को कई अध्यापकों के पास पढ़ने के लिए जाना पड़ा। अध्यापक यतः मुसलमान होते थे इसलिए मुसलमानी मत के अनुसार संस्कार लड़के के दिल पर बैठाने का प्रयत्न करते थे, परन्तु लेखराम की शंकाओं से इतने तंग आ जाते थे कि पढ़ाने से

जवाब देकर चल देते। फिर लेखराम के चचा पेशावर से बाहर के थानों में बदल गए; लेखराम भी उनके साथ गया। इस समय की एक घटना लेखराम के भविष्यत् जीवन का परिचय देती है। अपनी चाची को एकादशी का व्रत बड़ी श्रद्धा से रखते देखकर आपने भी उपवास करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। चाची ने यह कहकर समझाया कि बच्चे भूख को सहन नहीं कर सकते, हठ को छोड़ देना चाहिए। दृढ़-संकल्प लेखराम ने एक न मानी और नियमपूर्वक एकादशी के दिन उपवास करना आरम्भ कर दिया। जिनके पैतृक संस्कार ऐसे दृढ़ हों, उनको उत्तम शिक्षा किस उच्च अवस्था पर पहुँचा सकती है इसके सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

इस समय जब मनुष्य-शिक्षा-सम्बन्धी आन्दोलन में दिनों-दिन उन्नति हो रही है और जबकि शताब्दियों के पक्षपात छिन्न-भिन्न करके यूरोपियन शिक्षक आर्यों की प्राचीन विद्या से उपदेश ग्रहण करने में भी अपनी कुछ हतक नहीं समझते, यह कल्पना करना कठिन है कि आज से ३४ वर्ष पहले पंजाब देश में सारी शिक्षा की समाप्ति कुछ फारसी के लिखे हुए पत्रों के साथ ही हो जाती थी। लेखराम की शारीरिक शिक्षा, वर्तमान सरकारी शिक्षा विभाग के कृत्रिम नियमानुसार, कुछ मिली या नहीं इसका पता लगाना कठिन है; किन्तु उनका चौड़ा माथा, उनका खुला विशाल सीना, उनकी सिंह-ठवन इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण थी कि ईश्वरीय नियमों की गोद में पले हुए बच्चों की शारीरिक अवस्था वैसी ही स्वाभाविक होती है जैसे कि ईश्वर के ज्ञान, बल और क्रिया स्वाभाविक हैं। लेखराम को मानसिक शिक्षा क्या मिली? इस प्रश्न के उत्तर के लिए बड़े आन्दोलन की आवश्यकता नहीं। अपने चाचा महाशय गण्डाराम जी के पास यह चौदह वर्ष की आयु तक रहे, उसके पश्चात् सय्यदपुर चले गए और वहाँ के देहाती मदरसे में शिक्षा-लाभ करने लगे। इस देहाती मदरसे के मुख्याध्यापक मुंशी तुलसीदास थे। लेखराम ने जो कुछ भी किताबी तालीम हासिल की वह इन्हीं की बदौलत थी। मुंशी तुलसीदास पुराने ढर्रे के स्वतन्त्र विचारवाले आदमी थे। इनका स्वभाव मस्त फकीरों का-सा था, किन्तु साथ ही हृदय बड़ा ही पसीजनेवाला और दूसरों के दुःख को अनुभव करनेवाला था। मुंशी तुलसीदास आदमी को पहचानने की शक्ति रखते थे। कवि ने सच कहा है—

“आदमी-आदमी अन्तर, कोई हीरा कोई कंकर”—किन्तु यह पता लगाना, कि हीरा कौन है और कंकर कौन, साधारण पुरुषों का काम नहीं।

किसी पुरुषविशेष की मानसिक उन्नति का पता लगाने के लिए उसकी लड़कपन की अवस्था के निरीक्षण करनेवालों की सम्मति बहुत सहायता देती है। जहाँ लेखराम के प्रथम चौदह वर्ष के जीवन का ठीक वृत्तान्त उनके चचा महाशय गण्डाराम के लेखों से मिलता है, वहाँ उसके पश्चात् उनके शिक्षण-सम्बन्धी जीवन तथा उनके मानसिक विकास का पता चकवालनिवासी उमरा

खत्री वंशीय मुंशी तुलसीदास के लेखों से लगता है। मुंशी तुलसीदास का महाशय गण्डाराम के साथ बराबर पत्र-व्यवहार था। उनके पत्रों से लेखराम के विस्तृत होते हुए गुण, कर्म, स्वभाव का ठीक पता लगता है। किन्तु उन पत्रों में से लेखराम के जीवन-सम्बन्धी लेखों को उद्धृत करने से पहले मैं मुंशी तुलसीदास का उस समय का लेख इस स्थान में नकल करता हूँ जो लेखराम के महान् आत्म-समर्पण का समाचार सुनकर उन्होंने मुद्रणार्थ भेजा था। वह लिखते हैं :—

“स्वर्गवासी पण्डित जी अपने दोनों छोटे भाइयों (तोताराम और वालकराम) सहित मेरे पास तालीम पाते रहे। धर्म पर शहीद होनेवाले पण्डित जी का कद दमियाना, साँवला रंग, कुशादा (खुली) पेशानी, सियाह चश्म (पीछे एक आँख में कुछ विकार-सा बैठ गया था) हँसमुख थे। उस समय उनकी आयु १४ वा १५ वर्ष की होगी। बड़े सरल हृदय थे। कुरते की घुण्डी खुली है तो वैसी ही रही, पगड़ी का लड़ गले में है तो कुछ परवाह नहीं; किन्तु स्वभाव ऐसा तीक्ष्ण और स्मरण-शक्ति ऐसी पहुँचनेवाली कि कठिन-से-कठिन फारसी के पाठ को दोबारा उन्होंने कभी नहीं कहा था। जो पूछो नोके-जवान होता था। हिसाब में यकता, कसम-ए-हिन्द (भारत का इतिहास) उपस्थित इत्यादि। केवल गुलिस्ताँ पूरे बाब आठ और बोस्तान पूरे दस बाब नियमपूर्वक पण्डित साहिब ने मुझसे बातकीब पढ़े। फिर बहारदानिश आधा से अधिक, कुछ सिकन्दरनामा और मुन्तख्वात-ए-फारसी जिसमें अनवार सुहेली सिकन्दरनामा, शाहनामा का कुछ इन्तखाब था। मगर इन किताबों की शिक्षा में यह हाल था कि दो-दो पन्ने उलटने पर शायद ही कभी कोई शब्द मुझसे पूछा हो, खुद ही उनकी सैर में किशती धर-आब की तरह तैरते जाते थे।” मुंशी तुलसीदास जी के पत्र-व्यवहार से कुछ लेख तिथिवार उद्धृत करना इस स्थान में बड़ा उपयोगी होगा—“चिरञ्जीव लेखराम रात के दस बजे तक मेरी कुटिया में रहता है। बहारदानिश में नजरसानी (पुनरावृत्ति) करता है। इस मदर्स में अपना सानी (बराबरी का) नहीं रखता। बखुरदार है।” १६ फरवरी, सन् १८७३ ई०—“लेखराम मानीटर हो गया।”

१० अगस्त, १८७३ ई०—“मुंशी लेखराम मानीटर साहेब काम का तो नाम भी नहीं लेते, पढ़ाई का क्या जिक्र! अपनी जहूलत के शगल (कविता से मतलब है) से फुरसत नहीं पाते। खैर, अब पहले की निसबत कुछ सुधार पर आ गए हैं।”

८ सितम्बर, १८७३ ई०—“मुंशी साहेब लेखराम अब तक अपनी जिहालत पर कमरबस्ता हैं। और तो सब-कुछ रखते हैं मगर अकल (बुद्धि) ... हाय अफसोस! अगर यह भी होता तो अन्दर-बाहर आदमी होते।”

लेखराम के सम्बन्धी फकीरचन्द भी मुंशी तुलसीदास के पास ही पढ़ते थे। उनकी योग्यता की प्रशंसा करते हुए १८ फरवरी सन् १८७४ को उक्त मुंशी जी ने लिखा था—“लेखराम साहेब भी लेख तथा वक्तृत्वशक्ति में उनसे कम नहीं

किन्तु तनिक वृद्धि की कसर है।” यह बार-बार वृद्धि की कसर का जिक्र क्यों आता है और इससे अध्यापक का क्या मतलब है ? आगे चलकर कुछ स्पष्ट हो जाता है।

२४ अगस्त सन् १८७४ — “लेखराम की प्रकृति के बदलने की ओर ध्यान दीजिएगा। विद्या से विनय उत्तम है और अकल शक्ल से……” लेखराम की प्रकृति में दास-भाव पहले से ही न था, स्वतन्त्रता कूट-कूटकर बाल-बाल में भरी हुई थी। यही कारण था कि कई बार छात्रवृत्ति तथा पारितोषिक पाने पर भी वह कभी-कभी सरकारी शिक्षा-विभाग के बड़े कर्मचारियों को भी अप्रसन्न कर लिया करते थे।

इस समय से पहले ही लेखराम को कुछ तुकवन्दी का भी शौक हो चला था और फारसी तथा उर्दू के अतिरिक्त आप पञ्जाबी में भी तवीयत लड़ाया करते थे। यद्यपि एक महाशय के लेख से ज्ञात होता है कि रिवाजी शृंगार की कविता की ओर भी लेखराम के दिल का झुकाव था, परन्तु मुझे उनकी उस समय की लिखी हुई एक ही कविता मिली है, जिसका सदाचार के साथ सम्बन्ध है। आपने पंजाबी बैतुलवाजी हुक्के के विरुद्ध की है जो कवि के बल तथा निर्बलता दोनों का प्रकाश करती है—

“वे वांग हुक्का नहीं चीज भैड़ा
लख बंदियां दा इतदा हुक्का।
खंग गर्मी ते सौदा साह नाले
चारों रोग करे वरपा हुक्का।
जूठा चक्खना चंगयां - मन्दयां दा
कोई फायदा चा दस ला हुक्का।
शूम धूम वांघण चिलमकश जित्थे
बैठ करे ताजा जिस जा हुक्का।
गहर वांग सियाही सियाह करे
एही मुँह दे उत्ते मला हुक्का।
बू बदतर है वांग बोल थी भी
बोल बोल छड्डे सीना खा हुक्का।
नेकमाश नू हुक्का बदनाम करदा
बाव नेक दे बुरा कमा हुक्का।
एह ऐव मैंने दित्ते गिन सारे
कोई फायदा नहीं बस बसाय हुक्का।
लेखराम बस बैठके नाम जप लो
नड़ी भन्नके देओ उड़ाय हुक्का।”

३

नौकरी

लेखराम के परिवार में चिरकाल से उच्च शिक्षा प्राप्त करने की प्रणाली प्रचलित न थी। इनके दादा तो सर्वथा अशिक्षित ही थे, हाँ इनके चचा गण्डाराम जी ने कुछ फारसी-उर्दू में अभ्यास किया था जिसके अनुकरण में उन्होंने भी इन्हीं भाषाओं का अच्छा अभ्यास कर लिया। किन्तु समय के प्रचलित विचारों के अनुसार सत्रह (१७) वर्ष की आयुवाले युवक का कर्त्तव्य था कि वह कमाई करके माता-पिता को आर्थिक सहायता देवे, इसलिए इस आयु से पहले ही इनको सरकारी नौकरी दिलाने की फिक्र हो रही थी। उस समय “निकृष्ट चाकरी” को ही अत्युत्तम तथा मान-स्थानी समझा जाता था, “उत्तम खेती” को गिरा हुआ किसानों का काम कहा जाता था। तभी तो महाशय गण्डाराम जी, उस समय जब कि लेखराम की आयु पूरे १६ वर्ष की भी न हुई थी, अपने भतीजे के गुरु को प्रेरित करते हैं कि वह इन्स्पेक्टर मदारिस के पास लेखराम की नौकरी के लिए सिफारिश करे जिसके उत्तर में मुंशी तुलसीदास लिखते हैं “अगर साहेब इन्स्पेक्टर बहादुर तशरीफ लाए और इम्तिहान भी अच्छा हुआ, तो मैं जरूर लेखराम की निस्वत जवानी अर्ज करूँगा। आइन्दा उसकी किस्मत के तअल्लुक है।” सत्रहवाँ वर्ष अभी समाप्त नहीं हुआ था कि लेखराम को उनके चचा ने पेशावर पुलिस में भर्ती करा दिया। उस समय कृस्टी साहब वहाँ की जिला पुलिस के सुपरिण्टेण्डेण्ट थे। कैसी विचित्र घटना है कि जिन कृस्टी साहब ने लेखराम को पुलिस में भरती किया था, लेखराम के मारे जाने पर उन्हीं से मुझे घातक का पता लगाने के लिए विशेष प्रार्थना करनी पड़ी। कृस्टी साहेब ने मुझे बताया था कि जहाँ उन्हें मालूम था कि लेखराम अपनी निर्भयता तथा स्पष्ट वक्तृत्व के कारण कभी-न-कभी मारा जाएगा, वहाँ उसकी दृढ़ता के लिए उनके हृदय में सदा मान-भाव रहा करता था।

संवत् १९३२ के पौष मास में २१ दिसम्बर सन् १८७५ ई० के दिन, लेखराम पेशावर पुलिस में भरती किये गए। पुलिस की नौकरी का वृत्तान्त न तो मनोरंजक और न शिक्षादायक ही हो सकता है। ढाई साल पीछे १ रु० मासिक की उन्नति और फिर प्रत्येक वर्ष के पीछे सारजण्टी के एक-एक दर्जे की उपलब्धि का विस्तारपूर्वक वृत्तान्त भी हमारे पल्ले कुछ नहीं डाल सकता। संवत् १९३७ तक

बराबर बेतनोन्नति होती रही, किन्तु उस संवत् की समाप्ति के लगभग लेखराम के आत्मा में कुछ विचित्र परिवर्तन होने लगा। पुलिस में नौकर होने से पहले ही जब लेखराम अपने चचा के पास “सुआबी” में थे, एक धार्मिक सिक्ख सिपाही के सत्संग से उन्हें परमात्मा की उपासना का अभ्यास हो गया था। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में ही स्नान करके समाधि लगा बैठ जाते और दिन को गुरुमुखी अक्षरों में लिखी हुई गीता का पाठ करते। महाशय गण्डाराम जी लिखते हैं कि एक रात्रि को खटिया पर समाधि लगाए बैठे थे कि सबके देखते-देखते खटिया से नीचे आ रहे। सिर नीचे और पाँव खटिया के ऊपर हो गए, किन्तु इस अवस्था में भी वह अपने ध्यान में मस्त थे।

लेखराम के इस आरम्भिक ईश्वर-प्रेम की अवस्था पर पुलिस की नौकरी भी अपना कुछ असर न डाल सकी। संवत् १९३७ में फिर से वैराग्य की लहर उठी जिसने पुलिस की हुकूमत और सांसारिक ऐश्वर्य का नशा हिरन कर दिया। इस समय लेखराम के विचार सर्वथा नवीन वेदान्तियों के साथ मिलते थे। अद्वैत में निश्चय रखते हुए भी इन्होंने उपासना को जवाब नहीं दिया था और इसीलिए आजकल के वेदान्तियों की तरह वह अद्वैत मत को सांसारिक विषयों के भोग का साधन बनाने का प्रयत्न नहीं करते थे। गीता पढ़ने का परिणाम यह हुआ कि कृष्ण-भक्ति में अधिक श्रद्धा हो गई और रासलीला देखने की ओर रुचि बढ़ी; टीके लगाकर ‘कृष्ण-कृष्ण’ का जप करते रहते। कृष्ण-भक्ति में प्रेम इतना बढ़ा कि नौकरी छोड़कर वृन्दावन-निवास के लिए जाने को तैयार हो गए। इस समय लेखराम की आयु २१ वर्ष की थी। माता ने विवाह की तैयारी कर दी परन्तु उस वैराग्य से प्रेरित हरिभक्त ने विवाह से सर्वथा इन्कार कर दिया। महाशय गण्डाराम जी इस विषय पर लिखते हैं कि जब पत्र द्वारा मना करने से कुछ न बना तो वह स्वयं लेखराम को समझाने के लिए गए। उस समय उत्तर में लेखराम ने जो दृष्टान्त दिया उसे महाशय गण्डाराम जी इस प्रकार वर्णन करते हैं—“एक मिसाल सुनाई वह यह है—एक राजा के सामने नट तमाशा करनेवाले आए। उनको राजा ने ५०० रु० इनाम देने की प्रतिज्ञा करके कहा कि योगी की नकल उतारो। एक नट ने इनाम के लालच से योगी की ठीक ज्यों-की-त्यों नकल उतारी, किन्तु समाधि छोड़ते ही हाथ इनाम पाने के लिए पसार दिया। मतलब इस मिसाल से यह था कि गृहस्थ में रहकर दो काम नहीं हो सकते हैं। तब हम सब निराश हो गए और जिस देवी का नाता लेखराम के साथ हुआ था उसका विवाह उनके छोटे भाई तोताराम के साथ कर दिया।”

इन्हीं दिनों पण्डित लेखराम के पुराने उस्ताद तुलसीदास जी उन्हें मिलने के लिए पेशावर गए तो उनसे भी नौकरी छोड़कर संस्कृत पढ़ने के लिए देशान्तर जाने की इच्छा प्रकट की थी।

आर्यसमाज में प्रवेश और ऋषि दयानन्द का सत्संग

यह लिखा जा चुका है कि पहले-पहल वैराग्य की लहर दृढ़संकल्प लेखराम के हृदय में एक नवीन वेदान्ती सिक्ख सिपाही के सत्संग से उठी थी। उसी लहर ने मनरूपी समुद्र के जलतरंग को विविध रूपों में बदलकर लेखराम को कहीं रासलीला के भँवर में घुमाया और कहीं गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों से घृणा दिलाई। किन्तु लेखराम की बुद्धि एक जागृत शक्ति थी; उसकी दृष्टि में यह भ्रम ठहर नहीं सकता था कि जीवात्मा ही ब्रह्म है और इसलिए वह कभी भी अपने उस समय के धार्मिक विचारों से सन्तुष्ट नहीं हो सकता था। इस समय की दो घटनाएँ लेखराम के उस स्वभाव को, जो उसे पैतृक दाय में मिला था, बहुत स्पष्ट करती हैं, इसलिए उनका वर्णन लाभदायक होगा।

पेशावर में नौकरी के दिनों अकेले होने के कारण आटा लेकर रोटी बनवाने तन्दूरवाले की दुकान पर जाया करते थे। एक दिन शहर में किसी आदमी को एक बैल या गाय ने सींगों से घायल कर दिया जिसकी चर्चा सारे बाजार में फैल गई। तन्दूरवाले की दुकान पर भी यही चर्चा थी। पण्डित लेखराम तत्काल ही बोल उठे—“क्यों न गाय के सींग पकड़ लिये? और नहीं तो लाठी मारकर हटा देना चाहिए था।” लोगों ने कहा—“महाराज, गोमाता पर कैसे हाथ उठाता?” इस पर अक्खड़ लेखराम के होंठ फड़कने लगे, आँखें लाल हो गईं और अधिक अटक-अटककर बोले—“अगर मेरे सामने गाय या बैल आवे और मुझे मारने लगे और जान का खतरा हो तो मैं तलवार से उसका सिर उड़ा दूँ।” इतना कहना था कि लोगों ने ‘दुष्ट! हत्यारा?’ इत्यादि दुर्वचनों का तूफान मचा दिया और तन्दूरवाले ने लोगों के जोश से डरकर आटा ज्यों-का-त्यों लौटा दिया।

एक ओर तो रुकावट सामने आने पर इतना अक्खड़पन और दूसरी ओर एक और घटना सुनाता हूँ जिससे पता लगता है कि धर्म की जिज्ञासा ने उस तंग जमाने में भी लेखराम को उदार सार्वभौम हृदय का स्वामी बना दिया था। पेशावर से एक महाशय लिखते हैं कि पण्डित लेखराम के मित्र महता कृपाराम जी ने उन्हें मुहम्मदी मत की पुस्तकों का अधिकतर पाठ करते देखकर एक दिन

पूछा कि आप मुसलमानी मजहब की पुस्तकों को इतना क्यों पढ़ते हैं ? यदि मुहम्मदी मत आपको सच्चा लगे तो क्या आप मुसलमान हो जाएंगे ?” वहाँ उत्तर के लिए कुछ सोचने की आवश्यकता न थी; उत्तर मिला—“वेशक ! अगर दस घड़े रखे हों और यह मालूम न हो कि ठण्डा पानी किसमें है तो जब तक थोड़ा-थोड़ा पानी सबमें से न पिया जाए तब तक कैसे पता लग सकता है कि किस घड़े का पानी ठण्डा और मीठा है ? इसी तरह सब मतों की पुस्तकों की पड़ताल करके पता लगाना चाहिए कि सच्चा धर्म कौन-सा है।”

इन दो उक्तियों से ही पण्डित लेखराम के स्वभाव के उतराव-चढ़ाव का कुछ पता लग जाता है।

इन्हीं दिनों जब गीता की सटीका पुस्तक काशी से मँगाकर उसे व्याख्यासहित पढ़ रहे थे, पण्डित लेखराम को मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी की पुस्तकों के देखने की उत्कण्ठा हुई। तत्काल ही धर्म के प्यासे ने अलखधारी के सब प्रसिद्ध ग्रन्थ मँगा लिये जो पेशावर में आर्यसमाज-स्थापना करते ही अपने अन्य ग्रन्थों सहित, उसकी भेंट कर दिये। पेशावर आर्यसमाज के पुस्तकालय की सूची भी पण्डित लेखराम की ही लिखी हुई है, जिसमें ऋषि दयानन्द से मिली हुई अष्टाध्यायी के साथ-साथ “तोहफतुल-इस्लाम” और “पादाशुल-इस्लाम” इत्यादि के नाम भी दर्ज हैं।^१

पंजाब में मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी^२ के लेखों ने वैदिक धर्म के पुनर्जीवित करने में वही काम किया जो ईसाई मत की स्थापना से पहले “यहुन्ना” (John the Baptist) के व्याख्यानों ने किया था। यदि कृश्चियन चर्च को ईसा का उपदेश समझाने के लिए यहुन्ना के व्याख्यानों की आवश्यकता थी तो आर्यसमाज को भी ऋषि दयानन्द का उद्देश्य समझाने के लिए अलखधारी की प्रचण्ड चोटों की जरूरत अवश्य थी। उस समय के नवशिक्षित पंजाबी, और कुछ-कुछ संयुक्त-प्रान्ती भी, अलखधारी को अपना “पैगम्बर” और “राहबर” मानते थे। अलखधारी के खुले स्पष्ट शब्द कुरीतियों से पीड़ित आर्य-सन्तान को उत्साहित करने और उन्हें अन्ध परम्परा की कड़ी साँकलों को तोड़ने का बल प्रदान करने में बिजली का काम देते थे; किन्तु फिर भी पुराने ढर्रे के पौराणिकों पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था। पौराणिक गढ़ को तोड़ने के लिए वेदशास्त्ररूपी प्रबल शस्त्रों की आवश्यकता थी, जिनके चलाने में निपुण एक कोपीनधारी संन्यासी

१. ये दोनों पुस्तकें मुंशी इन्द्रमणि ने इस्लाम की समीक्षा में लिखी थीं।

—सम्पादक

२. विशेष परिचय के लिए द्रष्टव्य—‘ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी’—डॉ० भवानीलाल भारतीय कृत

शताब्दियों के पश्चात् दिखाई दिया था। अलखधारी ने उसी अखण्ड शस्त्रधारी बालब्रह्मचारी की शरण ली, और अपने लेखों की पुष्टि में स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्याख्यानों और लेखों का प्रमाण दिया। यही कारण था कि मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी के सब चेले अन्त में ऋषि दयानन्द की पवित्र शरण में आए और आर्यसमाज के उत्साही सभासद बने। इसी प्रकार के सुशिक्षित युवक वीरों में से लेखराम एक था।

अलखधारी की पुस्तकों को पढ़ने से ही लेखराम को ऋषि दयानन्द के नाम और काम का पता लगा। तब इन्होंने अपने माने हुए अद्वैत मत की पड़ताल की और जब तक पूरी छान-बीन करके अपने-आपको परमात्मा का सेवक, पुत्र, भक्त न समझ लिया तब तक दम न लिया। इन्हीं दिनों समाचारपत्रों में ऋषि दयानन्द के धर्म-प्रचार के काम की धूम मची हुई थी। लेखराम ने पत्र-व्यवहार आरम्भ करके ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों को मँगाया और संवत् १९३७ के अन्तिम भाग में ही पेशावर में आर्यसमाज स्थापित कर दिया।

आर्यसमाज की स्थापना तो हुई किन्तु उसकी सीमा लेखराम से बाहर न थी। जिनको मृत्यु के समय धर्म की मूर्ति माना गया और जिनके नाम के साथ लगकर पण्डित शब्द अपने-आपको स्वयं सम्मानित समझता था, उन्हें उस समय “लेखू” कहकर पुकारा जाता था। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—“माया तेरे तीन नाम—परसू, परसा, परसराम।” इसी प्रकार कहा जा सकता है कि आत्मसमर्पण करनेवाले लेखराम भी लेखू से लेखराम और फिर “धर्मवीर पण्डित लेखराम” बन गए। लेखू महाशय उस समय पेशावर नगर में ‘माई रज्जी की धर्मशाला’ के अन्दर रहते थे। उसी स्थान में आर्यसमाज के साप्ताहिक नहीं प्रत्युत दैनिक अधिवेशन होने लगे। न कोई नोटिस लगाया जाता और न ढिंढोरा पिटवाया जाता; वैदिक धर्म का सिपाही लेखू अपने तीन-चार मित्रों को समझाने बैठता। पाँच में चार मित्रों को तो समझा लिया और वे “खुद खुदा” कहलाने से लज्जित होकर परमपिता की शरण में आ गए, किन्तु पाँचवाँ कट्टर नवीन वेदान्ती था जिसने लेखू को भी अद्वैत का पहला पाठ पढ़ाया था। जब वह किसी प्रकार भी काबू न आया तो लेखू से “लेखराम” बने हुए मित्र ने कहा—“कमबख्त ! तेरी समझ में कुछ नहीं आता तब भी हमारी खातिर से ही आर्य बन जा। मित्रमण्डल तो न टूटेगा !” यह युक्ति प्रबल थी, काट कर गई। पाँचों ने मिलकर काम करना आरम्भ किया। कहते हैं कि ‘एक और एक ग्यारह’ होते हैं। यहाँ तो ‘पाँच पंच मिल कीजे काज, हारे-जीते न आवै लाज’ वाला मामला हो गया।

धर्मजिज्ञासु लेखराम ने आर्यसमाज तो स्थापित कर लिया और नियमपूर्वक नित्यकर्मों का पालन भी आरम्भ कर दिया, किन्तु दूसरों को समझाने में कभी-कभी स्वयं डाँवाडोल हो जाते। अन्य सर्व सिद्धान्तों का तो बड़ी प्रबल युक्तियों से

मण्डन करते, किन्तु जब अपने नवीन वेदान्ती मित्रों से बातचीत होती तो कभी-कभी निरुत्तर हो जाते। फिर थे भी तो अभी तक मुन्नी आर्य ! एक लोकोक्ति है कि मुसलमानी मत सब रास्ते साफ करता और तलवार के जोर से लोगों को मुहम्मदी बनाता-बनाता जब अटक नदी के किनारे पहुँचा तब गुरु नानक ने कहा—‘अब तो अटक !’ गुरु महाराज के इस आदेशानुसार असली मुसलमानी मत अटक के उस पार ही रह गया; तब मुल्लाओं ने अपनी बाँग देनी शुरू की जिसको सुनकर अटक के इस पारवाले हिन्दू भी मुसलमान होने लगे। इसीलिए हिन्दुस्तान के मुसलमान मुन्नी कहलाते हैं।

उपर्युक्त लोकोक्ति के अनुसार लेखराम भी अब तक मुन्नी आर्य ही थे। उन्होंने मन में ठान लिया कि आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द से संशय-निवृत्ति करने, और उनसे आशीर्वाद लेने के लिए उनकी सेवा में अवश्य जाना चाहिए। ऐसा दृढ़ निश्चय करते ही साढ़े चार वर्षों की नौकरी के पश्चात् एक मास की पहली छुट्टी (५ मई सन् १८८० ई० से) लेकर ११ मई को ऋषि दयानन्द के दर्शनार्थ अजमेर नगर की ओर चल दिये। लाहौर, अमृतसर, मेरठ आदि नगरों के प्रसिद्ध आर्यसमाजों में ठहरते हुए १६ मई की रात को अजमेर जा पहुँचे और १७ मई को सेठ फतेहमल जी की वाटिका में पहुँचकर ऋषि दयानन्द के प्रथम और अन्तिम बार दर्शन किये। इस समागम का हाल आर्यपथिक ने अपने शब्दों में इस प्रकार दिया है—

“स्वामी दयानन्द के दर्शन से यात्रा के सब कष्ट विस्मृत हो गए और उनके सत्य उपदेशों से सर्व संशय निवृत्त हो गए। जयपुर में मुझसे एक बंगाली ने प्रश्न किया था कि आकाश भी व्यापक है और ब्रह्म भी व्यापक है; दो व्यापक किस प्रकार एक स्थान में इकट्ठे रह सकते हैं? मुझसे इसका कुछ उत्तर बन न आया। मैंने यही प्रश्न स्वामी जी से पूछा। उन्होंने एक पत्थर उठाकर कहा—‘इसमें अग्नि व्यापक है वा नहीं?’ मैंने कहा कि व्यापक है। फिर पूछा—‘मट्टी?’ मैंने कहा कि व्यापक है। फिर पूछा—‘परमात्मा?’ मैंने कहा कि वह भी व्यापक है। तब कहा—‘देखो ! कितने पदार्थ हैं, परन्तु सब इसमें व्यापक हैं। असल बात यह है कि जो (वस्तु) जिससे सूक्ष्म होती है वही उसमें व्यापक हो सकती है। ब्रह्म यतः सबसे अति सूक्ष्म है अतः सर्वव्यापक है।’ इससे मेरी शान्ति हो गई।

मुझे उन्होंने आज्ञा दी कि जो संशय मुझे हों उनकी निवारण कर लूँ। मैंने बहुत सोच-समझकर दस प्रश्न लिखे जिनमें से तीन मुझे याद हैं, शेष सब भूल गए—

प्रश्न—जीव-ब्रह्म की भिन्नता में कोई वेद का प्रमाण बतलाइए।

उत्तर—यजुर्वेद का चालीमवाँ अध्याय सारा जीव-ब्रह्म का भेद बतलाता

है।

प्रश्न—अन्य मतों के मनुष्यों को शुद्ध करना चाहिए वा नहीं ?

उत्तर—अवश्य शुद्ध करना चाहिए ।

प्रश्न—विजली क्या वस्तु है और कैसे उत्पन्न होती है ?

उत्तर—विद्युत् सर्व स्थानों में है और रगड़ से उत्पन्न होती है । बादलों की विद्युत् भी बादलों और वायु की रगड़ से उत्पन्न होती है ।

• अन्त में मुझे आदेश दिया कि २५ वर्ष (की आयु) से पहले विवाह न करना ।

ऋषि दयानन्द जी के थोड़े ही सत्संग ने लेखराम के धार्मिक विचारों को दृढ़ कर दिया और इसीलिए उसके पश्चात् हम वैदिक धर्म पर उनका विश्वास चट्टान की तरह दृढ़ पाते हैं ।

R
०८१
722.8

91483

५

दासत्व से मुक्ति

अजमेर से लौटते ही पण्डित लेखराम का पहला कारनामा उनके सारे शेष जीवन के पुरुषार्थ का एक दृष्टान्त मात्र है। एक दिन आप अपने पुराने परिचित संत दामोदरदास वेदान्ती के पास गए। संत जी ने कहा कि सब ब्रह्म-ही-ब्रह्म है। लेखराम ने पूछा—‘महाराज ! आप भी ब्रह्म हैं, मैं भी ब्रह्म हूँ और यह पुस्तक भी ब्रह्म है ?’ उत्तर हाँ में मिलते ही पण्डित लेखराम ने पुस्तक (जिसमें उपनिषदों का गुटका था) उठा ली और वेदान्ती जी के माँगने पर फिर उनको न लौटाई। वह पुस्तक १९५२ वि० तक पेशावर आर्यसमाज के पुस्तकालय में ग्रन्थकर्ता ने स्वयं देखी थी। ऋषि दयानन्द के प्रत्यक्ष सत्संग ने हमारे चरित्रनायक के मन पर स्वतन्त्रता तथा धर्मभक्ति का रंग अधिक गाढ़ा कर दिया था, इसलिए अजमेर से लौटकर उन्हें दिन-रात धर्म-प्रचार की ही धुन लगी रहती थी। पेशावर आर्य-समाज की ओर से उर्दू का मासिक पत्र ‘धर्मोपदेश’ नामी जारी कराया जिसके सम्पादन का भार भी स्वयं ही उठाया।^१ इसके साथ ही जनसाधारण में निडर होकर मौखिक धर्मोपदेश आरम्भ कर दिये। एक दिन विज्ञापन दिया कि मद्यपान-निवारणार्थ व्याख्यान देंगे। व्याख्यान अंजुमन के हॉल में था जिस कारण जिले के डिप्टी कमिश्नर अन्य अंग्रेजों सहित पधारे। बहुत-से सेनाधिकारी भी उपस्थित थे। लेखराम का व्याख्यान युक्तियुक्त तथा प्रभावशाली हुआ। एक फौजी कप्तान ने उसका समर्थन किया और बतलाया कि उसने भी अपनी सेना में मद्यपान को बन्द करा दिया है।

इस समय के पुलिस सुपरिटेण्डेण्ट को जब पता लगा कि उनका नक्शानवीस साजेंण्ट लेखराम बहस-मुवाहसे में बहुत ताक है तो प्रायः अपने डिप्टी रीडर वजीर अली के साथ उनका मुवाहसा (शास्त्रार्थ) कराकर स्वयं आनन्द लूटा करते। मुझे बतलाया गया है कि यह साहेब बहादुर प्रायः लेखराम के कथन का ही समर्थन किया करते थे।

किन्तु ‘सब दिन जात न एक समाना’, अपनी धुन में मस्त लेखराम को उस

१. यह पत्र १८८० से १८८३ तक प्रकाशित होता रहा।

गहरी नींद से जागना पड़ा क्योंकि नये पुलिस सुपरिटेण्डेण्ट के आने पर बहुत-सी तब्दीलियाँ हुईं। इसी चक्र में लेखराम को पेशावर शहर से थाना 'सुआबा' में बदला गया। बाहर जाकर भी अपने प्रिय मासिक पत्र 'धर्मोपदेश' के लिए यथा-शक्ति लेख भेजते रहे और समाज का मासिक चन्दा १ रु० सैकड़ा के स्थान में बराबर ५ रु० सैकड़ा देते रहे। जाने को पेशावर से बाहर चले तो गए, किन्तु धर्म-प्रचार की इच्छारूपी प्रचण्ड अग्नि कहीं थोड़ा ही मन्द पड़ गई थी? वहाँ पर भी मुहम्मदियों से बहस-मुवाहसा जारी रहा। एक दिन पुलिस इन्स्पेक्टर ने, जो थाने का मुलाहिजा करने आया था, लेखराम को मुवाहिसे में फँसा लिया। लेखराम भला धर्म के मामले में कब लिहाज करनेवाले थे? उत्तर मुंहतोड़ दिये। उस समय तो इन्स्पेक्टर साहब अपना-सा मुँह लेकर चुप हो गए, किन्तु दूसरे दिन ही 'अदूल हुक्मी' (आज्ञा-भंग) के अपराध में रिपोर्ट कर दी। तब १२ जून १८८३ को सदर से हुकुम आया कि 'छः मास के लिए लेखराम का एक दर्जा तोड़ दिया जावे और वह थाना कालूखाँ में बदला जावे।'।

सुआबी के थाने में रहते हुए जो भारत-दण्ड-संग्रह की उर्दू पुस्तक लेखराम के पास थी, उसके पहले पृष्ठ पर एक लण्टम-पण्टम-सा चित्र खींचकर आपने उसके ऊपरले भाग में 'ओ३म्' लिखा था और उससे ऊपर एक झण्डे की शकल बनाई; अर्थात् उसी समय से यह निश्चय दृढ़ कर लिया था कि ओ३म् का झण्डा किसी दिन सारे भूमण्डल पर फहरायेगा और सर्व-मतों का शिरोमणि बनेगा।

थाना सुआबी में होते हुए भी लेखराम के साथ मुहम्मदियों का द्वेष बहुत-कुछ बढ़ चुका था; उसको अपने धर्मकार्यों के लिए समय भी कम मिलने लगा। 'धर्मोपदेश' के जीवन का सारा निर्भर केवल अकेले लेखराम की लेखनी पर ही न था, प्रत्युत उसकी आर्थिक दशा को ठीक रखने का बोझ उठानेवाला भी कोई और न था। जब पेशावर आर्यसमाज ने अधिक घाटा देखकर 'धर्मोपदेश' को बन्द करने की ठान ली तो एक मास के घाटे के लिए ५ रु० लेखराम ने ही भेज दिये। इसपर भी जब मासिक पत्र की इतिश्री का ही निश्चय हुआ तो पण्डित लेखराम ने अपने चचा को लिखा—'जो निश्चय आपने तथा आर्यसमाज (पेशावर) के सर्व सभासदों ने 'धर्मोपदेश' को बन्द करने के विषय में किया है वह तो शिरोधार्य है, परन्तु यह वाक्य कि हमारी समाज की उन्नति नजर नहीं आती, यह पाँच-छः रुपये मासिक समाज की उन्नति में व्यय करना चाहिए, इत्यादि मुझे चिन्ता (में डालते हैं).....मजमून रिसाला धर्मोपदेश, जो मैंने भेजा था, लौटा दीजिए, ताकि उसको आर्य समाचार मेरठ में छपवाया जावे, (मेरे) मौजूदा पाँच रुपयों में से ३ रु० मुहम्मद मालिक मतवाशरीफी को दे दें और २ रु० अपने हिसाब में जमा फरमावें।'। ये शब्द स्वयं बोल रहे हैं, इनपर किसी टीका-टिप्पणी की आवश्यकता नहीं।

फिर सिवाय इसके और क्या हो सकता था कि रिसाला धर्मोपदेश को बन्द कर दिया जाए ! लेखराम के इसके पहले मानसिक वच्चे का अन्त्येष्टि संस्कार मार्च, सन् १८८३ ई० को हो गया। थाना कालूखाँ में पहुँचने से पहले ही लेखराम के कट्टरपन की धूम मुहम्मदियों में मची हुई थी, किन्तु इस दुष्कीर्ति के होते हुए भी वह अन्य मतावलम्बियों को अपने धर्म के सिद्धान्त समझाने के उद्देश्य से ऐसा प्यार करते थे कि पक्षपातियों से न भड़काये हुए सर्वसाधारण मुसलमान उनके साथ प्रेम करने के लिए बाधित हो जाते। थाना कालूखाँ के विषय में मुझे केवल पेशावर की पुलिस-आज्ञा-पुस्तक से दो आज्ञाओं की नकल मिली है, जिनसे पता लगता है कि वहाँ के मुसलमान सब-इन्स्पेक्टर और सार-जण्ट लेखराम का एक दर्जा, किसी 'हजरत—शाह चौकीदार' के मुकद्दमे में गफलत (असावधानी) दिखाने के कारण तोड़ दिया गया था। ये दोनों आज्ञाएँ ६ जून सन् १८८४ ई० को निकलीं, किन्तु इनके निकलने से पहले ही लेखराम सारजण्ट को दफ्तर पुलिस में तब्दील कर दिया था और वहाँ से उसे साहब असिस्टेंट मजिस्ट्रेट की पेशी में लगाया गया। यह बात प्रसिद्ध थी कि अपराध तो थाना कालूखाँ के मुसलमान सब-इन्स्पेक्टर अकेले का था, किन्तु लेखराम अपनी निडर हाजिरजवाबी के कारण बिना अपराध के ही दण्डनीय समझा गया; मुसलमान पुलिस अफसरों ने समझा कि पेशावर में बुलवाकर वे लेखराम का मुँह बन्द कर देंगे, किन्तु इस अत्याचार ने दासत्व की बेड़ियों को काटने और लेखराम का मुँह स्वतन्त्रता से खुलवाने में प्रबल सहायता दी, और २४ जुलाई सन् १८८४ ई० को सदा के लिए स्मरणीय दिन लेखराम ने पुलिस की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और लिख दिया कि दो महीने की कानूनी मियाद के पीछे उसे रोकने का किसी को भी अधिकार न होगा। दो मास के पश्चात् २४ सितम्बर १८८४ ई० को यह त्यागपत्र फिर पेश हुआ। लेखराम को त्यागपत्र लौटाने के लिए अंग्रेज हाकिमों ने बहुतेरा समझाया, किन्तु वहाँ तो लगन और ही लग चुकी थी; हमारे वीर चरित्र-नायक ने किसी की न सुनी और ३० सितम्बर १८८४ ई० से त्यागपत्र की मंजूरी का हुकुम २४ सितम्बर को ही अपने हाथ से लिख और निकलसन साहब के उसपर हस्ताक्षर कराके मनुष्यों के दासत्व से स्वयं सदा के लिए मुक्त हो गए। इस दासत्व की साँकल के कटते ही पुलिस सारजण्ट लेखराम 'पण्डित लेखराम' बन गए।

यह बात प्रसिद्ध है कि यवनों के संसर्ग से पंजाब प्रान्त में मांस-भक्षण का प्रचार आर्य जाति में भी बहुत था और सीमाप्रान्त के जिलों में से पेशावर तो उस समय भी मांसाशियों का गढ़ समझा जाता था। यही कारण था कि पंजाब के पहले आर्यसमाजियों ने अहिंसा धर्म के पालन की ओर अधिक रुचि नहीं दिखाई थी। मूर्तिपूजा और मृतकश्राद्ध के खण्डन में जो बड़े अग्रणी थे वे सन्ध्या,

अग्निहोत्र के अभ्यास और मद्य-मांसादि के वैराग्य को आवश्यक नहीं समझते थे, कारण यह था कि पहले-पहल बहुधा नकली और असली आर्य बहुत थे। किन्तु पण्डित लेखराम असली आर्यों में एक ऊँचा पद रखते थे। मद्य तो पहले से ही उनके लिए वृणित वस्तु थी, किन्तु मांसभक्षण को भी पापों में से एक समझते थे। सन्ध्या में अनध्याय को वह सबसे बढ़कर पाप मानने लगे थे। मुझे यह पता नहीं लगा कि उन्हीं दिनों नित्य हवन का प्रारम्भ किया था या नहीं, किन्तु उनके अन्य चरित्रों से यही अनुमान होता है कि वैदिक धर्म की शरण में आते हुए उन्होंने सच्चे धर्म की प्राप्ति को जीवन और मृत्यु का अंश समझा था।

यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—‘होनहार बिरवान के चिकने चिकने पात।’ पण्डित लेखराम पर यह लोकोक्ति सर्वांग में चरितार्थ थी। जिस आर्यपथिक को धर्म-प्रचार के लिए यात्रा करते हुए दिन-रात को एक कर देना था, जिस लेखवीर को सत्य धर्म की रक्षा के लिए अपूर्व ग्रन्थ लिखने थे और जिस शास्त्रार्थ के धनी को वैदिक धर्म के विरोधियों को स्थान-स्थान पर निरुत्तर करना था, उसको आर्य-समाज में प्रवेश करते ही शास्त्रार्थ तथा लेख का अभ्यास हो चला था।

पेशावर आर्यसमाज के भाइयों की कृपा से मुझे लेखराम की सभासदी के समय के सब रजिस्टर मिल गए हैं। एक ओर तो समाज का सारा आय-व्यय का हिसाब लेखराम के हाथ का लिखा हुआ है और दूसरी ओर आए-गए पत्रों की प्रतिलिपि लगभग उन्हीं के हाथ की है; आए हुए पत्रों की नकल तो किसी अन्य के हाथ की है, किन्तु जो पत्र भेजे गए उनका सारांश प्रायः पण्डित जी का अपना लिखा हुआ है। ८ फरवरी १८८२ ई० को आपने पादरी एम० बेरी साहब से इञ्जील के ईश्वरीय ज्ञान तथा मुक्ति के लिए ईसा पर ईमान लाने की जरूरत पर शास्त्रार्थ का घोषणापत्र भेजा। इसका जो उत्तर पादरी साहब की ओर से आया वह बड़ा गोल-माल है। इस समय समाज के मन्त्री होते हुए भी पण्डित लेखराम अपने-आपको “मैनेजर पेशावर आर्यसमाज” लिखा करते थे और थे भी तो सर्व प्रकार के प्रबन्धकर्त्ता ही।

पेशावर शहर से जब पुलिस की नौकरी में बाहर बदल गए थे, तब भी मासिक चन्दा देते हुए आर्यसमाज पेशावर के सभासद बराबर बने रहे। एक बार किसी काम के लिए पेशावर आए तो साप्ताहिक अधिवेशन में, जो एक तहसीलदार की धर्मशाला में हो रहा था, सम्मिलित हुए। साप्ताहिक अधिवेशन की समाप्ति पर अन्तरंग सभा के सभासद बैठे रहे और विचार यह होने लगा कि जिन तहसीलदार महाशय की धर्मशाला अधिवेशनों के लिए मिली है उनको ही समाज का प्रधान बनाया जाए। तहसीलदार साहब भी विराजमान थे। पण्डित लेखराम ने बिना संकोच के कहा—“यह मांस खाते और शराब पीते हैं। ऐसा आदमी प्रधान नहीं होना चाहिए।” अन्य सब सभासद तहसीलदार साहब को

प्रधान बनाने पर तुल गए। तब पण्डित लेखराम अप्रसन्न होकर उठ गए, क्योंकि ऐसे विचार को सुनना भी वह पाप समझते थे।

सन् १८८२ ई० में जब पण्डित लेखराम अभी पेशावर में ही थे, ऋषि दयानन्द की ओर से उन्हें दो पत्र मिले। एक के साथ गोरक्षक-विषयक प्रार्थना-पत्र प्रजा के हस्ताक्षरों के लिए था और दूसरे में पंजाब में हिन्दी-प्रचार के लिए शिक्षा-कमीशन को मेमोरियल भेजने की प्रेरणा थी। दोनों कार्य पण्डित लेखराम ने बड़े उत्साह से कराए।

अभी पण्डित लेखराम पेशावर से बाहर थानों में ही घूम रहे थे कि उनके पास कादियाँ के “मिर्जा गुलाम अहमद” की बनाई पुस्तक “बुराहीन अहमदिया” पहुँच गयी, जिसमें मिर्जा जी ने पहले-पहल पैगम्बरी का दावा किया था, साथ ही यह पता लगा कि मिर्जा गुलाम अहमद के बड़े चेले हकीम नूरुद्दीन की संगत से जम्मू में एक ठाकुरदास नामी हिन्दू मुहम्मदी मत स्वीकार करने को तैयार हैं। पण्डित लेखराम तीन-चार बार छुट्टी ले-लेकर उसे समझाने के लिए जम्मू गए और इनका पुरुषार्थ इतना फलदायक हुआ कि ठाकुरदास कादियानी का गुलाम बनने से बच गया।

इन्हीं दिनों पण्डित लेखराम ने मिर्जा की “बुराहीन” के चारों हिस्से पढ़ डाले और जब चौथे भाग में आर्यसमाज और आर्यसिद्धान्तों पर विषमय आक्रमण देखे तो तत्काल ही उस पुस्तक का उत्तर लिखना आरम्भ कर दिया। आर्यपथिक को जिस बात की धुन लगती उसके आरम्भ करने में एक पल की देर करना भी उन्हें दुश्पर हो जाता था। वहाँ नया कागज मँगाने का समय कहाँ था! आर्यसमाज पेशावर के रजिस्टर पर ही उत्तर घसीटने लग गए।

जम्मू में पण्डित लेखराम पण्डित नारायण कौल के यहाँ ठहरे जो प्रसिद्ध ‘पण्डित मनफूल’ के भाई थे। यह महाशय अरबी तथा फारसी के बड़े विद्वान् थे। इनसे पण्डित लेखराम को “बुराहीन अहमदिया” के खण्डन में बड़ी सहायता मिली।

धर्मान्दोलन तथा धार्मिक विषयों में तो लगन पहले से ही लग चुकी थी, ऋषि दयानन्द की धर्म तथा देश के लिए शोकजनक मृत्यु ने और भी अधीर कर दिया और सारे संसार को वैदिक धर्म के झण्डे के नीचे लाने का कर्तव्य भी लेख-वीर ने अपना ही समझकर धर्म-वीर का पद प्राप्त करने की ओर पग उठाया। कोई आर्य जाति में से ईसाई या मुसलमानी मतों की ओर झुके तो उसे बचाने का बीड़ा लेखराम उठाते थे; जन्म के ईसाई और मुसलमान को वैदिक धर्म की शरण में लाने का अपना कर्तव्य बतलाते थे; वैदिक धर्म पर कोई भी आक्षेप

१, पंजाब सरकार के भूतपूर्व मीर मुंशी (मुख्य सचिव)। — सम्पादक

हो, उसका उत्तर देना उनका कर्तव्य था और प्रत्येक प्रकार के नास्तिकत्व का खण्डन इनका ही धर्म था ।

इन्हीं दिनों यह समाचार गरम था कि मुजफ्फरनगर के रईस चौधरी घासी-राम जी मुहम्मदी मत की ओर झुके हुए हैं । ऐसा भी अनुमान होता है कि शायद उस अवसर पर छुट्टी न मिलने के कारण ही पण्डित लेखराम ने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया हो । मेरे चचा उन दिनों मुजफ्फरपुर में पुलिस इन्स्पेक्टर थे । उनसे मुझे पता लगा कि आर्य उपदेशकों ने मुहम्मदी मौलवियों को लाजवाब कर दिया था ।

कुछ ही हो, पण्डित लेखराम ने अपना त्यागपत्र स्वीकार होने तक कदियानी मिर्जा के जवाब में “तकजीब बुराहीन अहमदिया का प्रथम भाग” तैयार करके लिख लिया था ।

६

धर्म-प्रचार में अनुराग

दासत्व से मुक्त होते ही वे सबसे पहले आर्यसमाज रावलपिण्डी के वार्षिकोत्सव पर पहुँचे। उन दिनों वे बड़े वक्ता न थे कि बिना लिखे कोई विषय निभा सकें, किन्तु फिर भी एक लेखबद्ध व्याख्यान उस उत्सव में पढ़ा। उसका शीर्षक था—“आर्यधर्म के आलमगीर होने के सबूत और उसके आइन्दा तरक्की के निशान मजबूत।” काफिया^१ मिलाने का पहले से ही शौक था। यह व्याख्यान लाला गंगाराम धम ने मेरे पास रावलपिण्डी आर्यसमाज के कार्यालय से निकालकर भेजा था जो २१ तथा २८ आषाढ़, संवत् १९५४ के ‘सद्धर्म प्रचारक’ में छप चुका है। इस व्याख्यान में पण्डित लेखराम ने यह बड़ा उदार भाव प्रकट किया था कि—

“स्वामी दयानन्द और बाबा नानक जी के खयालात वाहिद थे। मेरे खयाल में वह (बाबा नानक जी) वेदोक्त धर्म की तरक्की देनेवाले थे और हत्तलबसा (यथाशक्ति) उन्होंने आर्य धर्म फैलाने में बहुत कोशिश की।” रावलपिण्डी से गुरुदासपुर पहुँचकर एक ओर तो मिर्जा साहब को शास्त्रार्थ के लिए चैलेञ्ज भेजा और दूसरी ओर १ अक्टूबर १८८४ को विज्ञापन देकर बड़ी जनता की उपस्थिति में उनके आक्षेपों के उत्तर पढ़े गए। मिर्जा गुलाम अहमद को तो आना ही क्या था, हाँ आर्यजगत् में जो खलबली मिर्जा के ग्रन्थ ने मचाई थी वह दूर हो गई। पण्डित लेखराम की यह पहली पुस्तक ऐसी जबरदस्त समझी गई कि बहुत लोगों ने इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ बड़ा व्यय करके प्राप्त कीं।

गुरुदासपुर में व्याख्यान देने के पश्चात् पण्डित लेखराम लाहौर लौट गए और वहाँ कुछ दिनों, उपदेश का कार्य भी जारी रखते हुए, संस्कृत व्याकरण का अभ्यास करते रहे। पण्डित लेखराम इस समय दृढ़ता से संस्कृत साहित्य, विशेषतः वैदिक साहित्य का स्वाध्याय नियमपूर्वक गुरुमुख से करना चाहते थे, किन्तु यह काम प्रथम आश्रम की शान्त व्यवस्था में ही हो सकता है। पण्डित लेखराम के अन्दर, संसार में अविद्या का राज्य देखकर बड़ी भारी हलचल मच चुकी थी।

१. तुक

ऋषि दयानन्द की अकाल मृत्यु ने उनका उत्तरदातृत्व बहुत बढ़ा दिया था, इस-लिए जब उस कादियानी मिर्जा की ओर से, जिसके “भूटे दावों का तरदीद” यह ग्रन्थरूप में कर चुके थे, एक विज्ञापन देखा जिसमें उसने मुहम्मदी मत की पुष्टि में चमत्कार (Miracle) दिखाने की प्रतिज्ञा की थी, तो इनसे न रहा गया।

मिर्जा जी ने अपने इश्तिहार में चौमुखी लड़ाई की घोषणा कर दी थी। उन्होंने सर्व मतस्थ पुरुषों को इस्लाम की दावत दी थी और अपने-आपको “खुदा का पैगम्बर” सिद्ध करने के लिए प्रतिज्ञा की थी कि यदि कादियाँ में एक वर्ष तक रखकर कोई दैवी चमत्कार (आसमानी निशान) न दिखा सके तो इस प्रकार एक वर्ष रहे हुए मनुष्य को २०० रु० मासिक के हिसाब से २४०० रु० देंगे। पण्डित लेखराम ने जब यह इश्तिहार पढ़ा, उस समय वह अमृतसर में थे। विज्ञापन पढ़ते ही उन्होंने ३ एप्रिल १८८५ ई० को मिर्जा जी के नाम पत्र लिखा जिसमें उनकी शर्तों को स्वीकार करके प्रतिज्ञा की कि जिस समय वह २४०० रु० सरकारी कोष में दाखिल करने की सूचना देंगे, उसी समय लेखराम जी स्वयं कादियाँ में पहुँच जायेंगे। इसके उत्तर में मिर्जा ने एक नई अड़चन लगाई कि वह साधारण पुरुषों से वाद-विवाद नहीं करना चाहता, उसके साथ कोई अपने सम्प्रदाय का प्रामाणिक और प्रसिद्ध आदमी ही जुटे तो वह तैयार होगा। यह पत्र पण्डित लेखराम के पास लाहौर में ६ एप्रिल १८८५ को पहुँचा और उसी दिन उन्होंने इसका उत्तर दे दिया, जिसमें पहले मिर्जा की नयी अड़चन का खण्डन किया और लिखा कि उन्हें धन का लालच इस अमली मुबाहसे के लिए नहीं खींच रहा, प्रत्युत सत्यासत्य के निर्णय के लिए वह तैयार होकर मैदान में आना चाहते हैं। इसके पश्चात् मिर्जा जी ने नयी बाधा खड़ी की। उन्होंने पण्डित लेखराम से भी २४०० रु० जमा कराने की नयी याचना की। इसी प्रकार प्रत्येक नए पत्र में मिर्जा जी ने नए-नए अड़ंगे लगाए, जिनके मुंहतोड़ परन्तु सभ्यतामय उत्तर पण्डित लेखराम ने दिये। यह पत्र-व्यवहार ५ अगस्त १८८५ तक बराबर जारी रहा, किन्तु परिणाम कुछ भी न निकला।

इसी अन्तर में पण्डित लेखराम ने अमृतसर और लाहौर में प्रचार करने के पश्चात् १८ एप्रिल को पेशावर को प्रस्थान किया। आर्यसमाज पेशावर के वे पहले भी प्रधान थे। २५-२६ एप्रिल को अपने प्रिय आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए और उस अवसर पर व्याख्यान देने के अतिरिक्त २६ एप्रिल तक धर्म-प्रचार किया। आगामी वर्ष के चुनाव में पण्डित लेखराम ही प्रधान नियत हुए और पंजाब की ओर लौट आये। इस ओर भी बराबर धर्म-प्रचार करते हुए २० जुलाई से ५ अगस्त तक अमृतसर में निवास किया। इस स्थान में उन्हें मिर्जा गुलाम अहमद के उत्तरों की प्रतीक्षा रही।

जब मिर्जा जी की ओर से कोई उत्तर न मिला और तीन मास व्यतीत हो

गये (जिस अन्तर में पण्डित लेखराम धर्म-प्रचार का कार्य करते और साथ-साथ पुस्तकें लिखने का काम भी जारी रखते गए) तो आर्यमुसाफिर ने मिर्जा जी को स्मरणार्थ एक पोस्टकार्ड भेजा जिसके उत्तर में मिर्जा जी ने लिखा—“कादियाँ कोई दूर तो नहीं हैं, आकर के मुलाकात कर जाओ। उम्मीद कि यहाँ पर बाहमी (परस्पर) मिलने से शरायत^१ तै हो जावेंगी।” धर्मवीर आर्यमुसाफिर को तो केवल हाथ अटकाने को स्थान चाहिए था, वह उसी समय मिर्जा जी की परीक्षा के लिए तैयार हो गए और जिस चालबाज बाध के पास जाने से बड़े-बड़े मतवादी डरते थे, निःशंक उसके साथ उस ही मकान में “दस्तपंजा” लेने के लिए जा पहुँचे।

पण्डित लेखराम जी पूरे दो मास कादियाँ में रहे। एक ओर तो उन्होंने मिर्जा जी के “इस्लामी कोठे” पर जा-जाकर उनका नाक में दम कर दिया। तीन बार कई भद्र पुरुषों को साथ लेकर गए और तीनों बार मिर्जा जी को निरुत्तर करके लौटे। दूसरी ओर खुले व्याख्यानों में न केवल मिर्जा जी के “बुराहीन” की ही कलई खोली, बल्कि उनकी इलहामी चालवाजियों का भी भण्डा फोड़ दिया, जिससे मिर्जा की आमदनी में बड़ी बाधा पड़ गई। इन्हीं दिनों कादियाँ में आर्य-समाज भी स्थापित हो गया जिसमें मिर्जा जी के फाँसे हुए बहुत-से भोले हिन्दू भी सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य की शरण में आए।

मिर्जा गुलाम अहमद का नाक में दम कर और कादियाँ में एक जबरदस्त आर्यसमाज स्थापित करके पण्डित लेखराम फिर अन्य स्थानों में वैदिक धर्म का प्रचार करने चले गए। बटाला आदि नगरों में धर्मोपदेश देकर तृपित आत्माओं को सद्धर्मरूपी शीतल जल पिलाते हुए आर्यपथिक अम्बाला पहुँचकर अपना कर्त्तव्यपालन कर रहे थे जब उन्होंने सुना कि कादियाँ के “विष्णुदास” नामी हिन्दू को बुलाकर मिर्जा जी ने कहा है कि वह एक साल के अन्दर मुसलमान न हो जाएगा तो उनके “इलहाम के मुताबिक” वह मर जाएगा। २ दिसम्बर १८८५ को विष्णुदास को मिर्जा जी ने यह धमकी दी और तार पहुँचते ही ४ दिसम्बर को पण्डित लेखराम विजली की तरह कादियाँ में आ चमके। उसी दिन विष्णुदास को बुलाकर समझाया और खुले व्याख्यान में मिर्जा जी की फिर से वह कलई खोली गई कि भूला-भटका भाई सचमुच व्यापक विष्णु भगवान् का दास बनकर आर्य-समाज का सभासद बन गया और उसी दिन से मिर्जा जी की कुटिल नीतियों का खण्डन होने लगा।

क्रियात्मक आर्यमुसाफिर बनना

सन् १८८६ ई० के आरम्भ में पण्डित लेखराम की योग्यता की आर्य जगत् में धूम मच गई थी। 'तकजीब बुराहीन अहमदिया' का प्रथम भाग ठीक प्रबन्ध न होने से अभी छप नहीं सका था परन्तु उसकी नकलें होकर दूर-दूर पहुँच चुकी थीं। मुहम्मदियों के मुकाबिले पर आर्यसमाजियों ने उस पुस्तक की युक्तियों से काम लेना आरम्भ कर दिया था। जहाँ कहीं मुसलमानों से मुवाहिसे की छेड़छाड़ होती वा उनका कुछ भी जोर होता, वहीं से पण्डित लेखराम को निमन्त्रण पहुँच जाता।

इस ईसवी सन् के मार्च मास में मिर्जा गुलाम अहमद होशियारपुर में गए। वहाँ आर्यसमाज के प्रसिद्ध सभासद मास्टर मुरलीधर जी गवर्नमेंट स्कूल में ड्राइंग-मास्टर (आलेख्याध्यापक) थे। मास्टर जी उन आर्यों में से थे जो वेद-विरुद्ध मतों की पोल खोलने के लिए हर समय तैयार रहते हैं। मिर्जा जी की डींगों को सुनकर मास्टर जी से रहान गया और ११ मार्च १८८६ की रात को उन्होंने मिर्जा जी के डेरे पर पहुँचकर मुहम्मद साहब के चाँद के टुकड़े करनेवाले चमत्कार (मोजजे) पर लेखबद्ध आक्षेप किये। अनुमानतः ५ वा ६ घण्टों तक प्रश्नोत्तर होते रहे। फिर १४ मार्च १८८६ के दिन मिर्जा जी ने यह प्रतिज्ञा स्थापन की कि रूह (जीवात्मा) अनादि नहीं, पैदा की हुई (हादिस) है। इस प्रश्न के सुनाने और बातें बनाने में ही मिर्जा जी ने दो-ढाई घण्टे समाप्त कर दिये और फिर ५-६ घण्टों तक प्रश्नोत्तर होते रहे। मिर्जा जी को इस समय रुपये बटोरने की सूझ रही थी और गम्भीर विषय की पुस्तकों की अपेक्षा बटेरबाजी वाली पुस्तकें अधिक बिकती हैं, इसलिए इस मुवाहिसे पर अपने ढंग का नमक-मिर्च-मसाला चढ़ाकर उन्होंने एक २६० पृष्ठों की पुस्तक 'सुरमा चश्म आरिया' (अर्थात् आर्यों की आँखों के खोलने के लिए सुरमा) शीर्षक देकर छपवा दी।

पण्डित लेखराम के दिल पर चोट तो इस पुस्तक के छपने से बहुत लगी परन्तु अभी पहली तैयार की हुई पुस्तक ही नहीं छपी थी; इसलिए उसकी छपाई में लगकर इस बात की भी प्रतीक्षा करते रहे कि मास्टर मुरलीधर जी ही दूसरी पुस्तक का उत्तर छपवावें। किन्तु जब जुलाई सन् १८८७ को 'तकजीब बुराहीन अहमदिया' का प्रथम भाग छप करके हाथों-हाथ बिक गया और आर्यपथिक को

पता लगा कि मास्टर मुरलीधर जी को सरकारी नौकरी के कारण उत्तर लिखकर छपवाने का अवकाश नहीं है तो उन्होंने स्वयं ही मिर्जा के दूसरे आक्रमण का उत्तर भी तैयार किया, और उसका नाम रक्खा 'नुस्खा खन्त अहमदिया'। इस नामकरण का हेतु स्वयं आर्यमुसाफिर ने इस प्रकार दिया है—“असल में यह मिर्जा के एतराज माकूलियत से कोसों दूर हैं और साथ ही बेजा शेखी और लगवीयत (भूठ) से तमाम किताब भरपूर है जो रास्ती नहीं बल्कि इलहामी खन्त (पागलपन) मालूम होता है, पस, जरूर हुआ कि हम वैदिक हिकमत से उनके खन्त का इलाज करें, ताकि खुदा सेहत दे; बिना बराँ इस रिसाले का नाम 'नुस्खा खन्त अहमदिया' रखा गया।”

सन् १८८६ के प्रथम भाग में विविध स्थानों में प्रचार करके पण्डित लेखराम फिर एप्रिल के अन्तिम सप्ताह में पेशावर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर पहुँचे और अपने व्याख्यानों से अपने प्रथम स्थापन किये हुए आर्यसमाज को लाभ पहुँचाया। फिर स्थान-स्थान पर व्याख्यान देने के साथ-साथ ही पादरी खड़कसिंह के छः व्याख्यानों के उत्तर लिखकर भी छपवाये और बहुत-सी छोटी-छोटी पुस्तकें अवैदिक सिद्धान्तों के खण्डन में निकालीं।

पण्डित लेखराम के इस वर्ष के काम के विषय में १९ अक्टूबर १८८६ की आर्य-पत्रिका में एक महाशय ने इस प्रकार लिखा था—

“लेखराम आर्यसमाज लाहौर का एक कट्टर सभासद है। इसने अपना जीवन समाज के लिए बलिदान कर दिया है। यह अरबी और फारसी का बड़ा विद्वान् तथा वेत्ता है। अमृतसर आर्यसमाज के गत वार्षिकोत्सव में इसने विरोधी मतों की समीक्षा पर एक उत्तम व्याख्यान दिया। इसके प्रयत्न से कहुटा के लोगों ने आर्यसमाज स्थापित कर दी है। इसने मियानी, पिण्डदादन खाँ, भेरा आदि में अत्युत्तम व्याख्यान दिये; मजीठा में लाला गण्डामल असिस्टेण्ट इंजीनियर को आर्यसमाज की सचाइयों पर विश्वास दिलाया और कश्मीर में धार्मिक शास्त्रार्थ के लिए जा रहा है।” ऊपर के उद्धृत लेख से एक तो यह पता लगता है कि अपने निवास-स्थान कहुटे में भी आर्यसमाज की स्थापना के यहाँ साधन बने थे, और दूसरे यह ज्ञात होता है कि इनके अर्थ-त्याग का सम्मान करना आर्य जाति ने आरम्भ कर दिया था। लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—“घर के जोगी जोगिना, आन गाँव के सिद्ध।” परन्तु ज्ञात होता है कि लेखराम उन थोड़े-से आदमियों में से थे जिनका अपने ग्राम में भी मान होता है।

सन् १८८७ के आरम्भ में पण्डित लेखराम को 'आर्य गजट फीरोजपुर' का सम्पादक बनाया गया। उस समय पंजाब के आर्यसमाजों के हाथ में अंग्रेजी की

‘आर्य पत्रिका’ के अतिरिक्त अपने विचार तत्काल सर्वसाधारण तक पहुँचाने का एकमात्र साधन ‘आर्य गजट’ नामी उर्दू का साप्ताहिक ही था। पण्डित लेखराम के प्रबल हाथों में आकर वह एकदम से चमक उठा। अनुमानतः दो वर्षों तक पण्डित लेखराम इस समाचारपत्र का सम्पादन करते रहे। उन दिनों के लेख पन्थाइयों के दिलों को हिला देनेवाले निकला करते थे।

यद्यपि सम्पादकी वोभ उठाए हुए भी लेखराम जी आर्यसमाजों के जलसों पर जाते रहे और धर्मप्रचार करते रहे, किन्तु एक स्थान में टिक जाने से प्रमाणों को ढूँढ़कर हवाले देने और अपनी पुस्तकों को छपवाने की उनको बड़ी सुगमता मिल गई। इन्हीं दिनों ‘तकजीव बुराहीन अहमदिया’ का प्रथम भाग छपा और ‘नुस्खा खन्त अहमदिया’ भी तैयार हो गया। इसी अन्तर में दस-बारह अन्य छोटी-छोटी पुस्तकें तैयार हुई और कुछ छप भी गई, और अन्य बहुत-सी बड़ी पुस्तकों के लिए मसाला इकट्ठा होता रहा।

ऋषि-जीवन का अन्वेषण

अब तक यद्यपि नाम 'आर्य मुसाफिर' था परन्तु यात्रा की परिधि संकुचित-सी ही थी। पंजाब से बाहर आर्यपथिक ने पाँव नहीं रक्खा था। तब यात्रा की परिधि में विस्तार के सामान पैदा होने लगे।

ऋषि दयानन्द का अन्त्येष्टि संस्कार हुए साढ़े चार वर्ष व्यतीत हो चुके थे। विभिन्न आर्य जनता की ओर से भी ऋषि के जीवनचरित्र की माँग-पर-माँग आ रही थी। टका सीधा करनेवालों ने साधारण लेख छापकर ऋषि के जीवन को सन्दिग्ध बनाना भी आरम्भ कर दिया था। सांसारिक विभूतियों पर लात मारने-वाले योगी को सिद्धियों का साधक बताना और मनुष्य-पूजा की जड़ पर कुल्हाड़ी रखनेवाले ईश्वरभक्त को पूज्य अवतार बतलाना आरम्भ हो गया था, और आर्यसमाजियों के कानों पर जूँ भी नहीं रेंगती थी।^१ ऐसे समय में मुल्तान आर्य-समाज ने अपने १२ एप्रिल सन् १८८८ के अधिवेशन में सम्मति दी कि पण्डित लेखराम को स्वामी दयानन्द के जीवन-सम्बन्धी वृत्तांत इकट्ठा करने के लिए नियत किया जाय। मुल्तान आर्यसमाज का यह प्रस्ताव आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के १ जुलाई सन् १८८८ के अधिवेशन में पेश होकर स्वीकार हुआ। तब पण्डित लेखराम जी से इसके विषय में पत्र-व्यवहार शुरू हुआ और नवम्बर १८८८ में 'आर्य गजट' के सम्पादन को छोड़कर पण्डित लेखराम सचमुच आर्य-मुसाफिर बन गए।

इस समय तक यद्यपि पण्डित लेखराम का नाम मैं सुन चुका था और अमृतसर के व्याख्यान का भी आनन्द ले चुका था, परन्तु अधिक परिचय मेरा आर्य-पथिक के साथ नहीं हुआ था। नवम्बर के मध्य में पण्डित लेखराम ऋषि-जीवन-सम्बन्धी घटनाओं का वृत्तान्त जमा करने निकले और लाहौर से कार्य आरम्भ किया। इस वर्ष के लाहौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में पण्डित लेखराम ने २८ नवम्बर को-धर्म-चर्चा के समय शंका-समाधान में बड़ा प्रसिद्ध भाग लिया,

१. इससे ज्ञात होता है कि ऋषि दयानन्द के जीवन को विकृत करने के प्रयास गत शताब्दी से ही होने लगे थे।

जिसके कारण उपदेशकों में उनका पद ऊँचा समझा जाने लगा। उसके पश्चात् १२ दिसम्बर की शाम को रेल से पण्डित लेखराम जी जालन्धर नगर में पधारे। १३ को प्रातःकाल मेरे साथ पण्डित जी का वार्तालाप होता रहा, जिससे हम दोनों एक-दूसरे के अधिक समीप हुए। उसी सायंकाल पण्डित जी का 'वेद-ईश्वर-ज्ञान' विषय पर आर्यमन्दिर जालन्धर शहर में व्याख्यान हुआ। मेरी 'दैनिक वृत्तान्त पंजिका' में लिखा है, फिर पण्डित लेखराम का व्याख्यान सुनने गया। जनसंख्या ५०० थी जिसमें सुशिक्षित सभ्य अधिक सम्मिलित थे। पण्डित जी की स्मरण-शक्ति आश्चर्यजनक है।

जालन्धर नगर से चलकर शायद मार्ग में एक-दो स्थानों पर ठहरते हुए पण्डित लेखराम सीधे मथुरा पहुँचे। वहाँ सारा दिसम्बर मास स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी के शिष्य-गण पण्डित युगलकिशोर, पण्डित दामोदर चौबे, पण्डित हरिकृष्णादि से ऋषि दयानन्द और उनके गुरु-सम्बन्धी वृत्तान्त पूछते और लिखते रहे।

सन् १८८६ के प्रथम भाग में पण्डित लेखराम जी बराबर संयुक्त प्रान्त में ही काम करते रहे। जहाँ ऋषि-जीवन-सम्बन्धी अन्वेषण के लिए पहुँचते वहाँ व्याख्यान भी अवश्य देते, और यह व्याख्यान वेदमत-मण्डन तथा मुहम्मदी-मत-खण्डन में ही होते। मथुरादि से ऋषि-जीवन का मसाला इकट्ठा करते हुए आर्य-पथिक अजमेर पहुँचे। उस समय अजमेर नगर में बड़ा भारी भूचाल आया हुआ था। आर्यसमाज की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति देखकर पौराणिकों, ईसाइयों, मुसलमानों और जीव-रक्षा का दम भरनेवाले जैनियों तक ने विरोध का भण्डा खड़ा कर दिया था। इसका विशेष कारण यह भी था कि उन्हीं दिनों पण्डित लेखराम की 'तकजीव' और 'नुस्खा खन्त' पढ़कर अजमेर का एक अब्दुलरहमान नामी व्यक्ति मुहम्मदी मत को तिलांजलि देकर वैदिक धर्म की शरण में आया था। आर्यसमाज की ओर से इसे सोमदत्त का सौम्य नाम दिया गया था। इससे मुसलमान बहुत ही दुःखी थे और इन्होंने ही पौराणिक मण्डल को उत्तेजना देकर पहले उनका उत्सव रचवाया। आर्य बेचारे छेड़छाड़ से किनारा किये बैठे थे कि पौराणिकों के दूत उनके घरों में पहुँच-पहुँचकर ललकारने लगे। वृद्धों ने तो इसकी कुछ परवाह न की, किन्तु १० वा १२ युवकों से न सहन हो सका और वे प्रश्नोत्तर के लिए पौराणिकों के निमन्त्रणानुसार पहुँच ही गए। जब प्रश्नोत्तर का समय आया और एक आर्य युवक ने पहला ही प्रश्न किया तो पौराणिक दल घबरा गया और कुछ बदमाशों ने शोर मचाकर, कि आर्यों ने एक मूर्ति को खण्डित कर दिया है, आर्यों पर लात, घूँसा और लाठी से आक्रमण कर दिया। इस समय सोमदत्त ने बड़ी बहादुरी दिखाई और पटे के हाथ से भीड़ को हटाता हुआ आर्य युवकों को बचा लाया।

जब इधर कुछ पेश न गई तो मुसलमानों की बारी आई। उन्होंने न केवल आर्यसमाज के विरुद्ध खुले व्याख्यानों में ही आक्रमण शुरू किये बल्कि सहस्रों ने इकट्ठे होकर यह धमकी दी कि यदि कोई आर्य बोला तो जान से मारा जाएगा। 'रहनुमा' नामी एक मासिक पत्र भी मुसलमानों ने उसी समय निकाला था।

यह समय था जब पण्डित लेखराम अजमेर नगर में पधारे। पण्डित लेखराम के पहुँचने पर आर्य पुरुषों को अपनी चिन्ता तो भूल गई, उल्टी इनकी रक्षा की चिन्ता जाग उठी। विचार किया गया कि पण्डित जी की रक्षा के लिए चार पहरे-वाले उनके पास रहें। जब धर्मवीर ने इस घुसफुस को सुना तो झिड़ककर कहा—“मुझे कोई जरूरत नहीं, तुम लोग बड़े डरपोक हो। कोई क्या कर सकता है?” दूसरे दिन ही मुसलमानों की ओर से आदमी आने लगे जिनसे पण्डित जी बराबर बातचीत करते रहे। व्याख्यानों की धूम मच गई। एक मौलवी ने पण्डित जी से हिन्दी पढ़ने की इच्छा प्रकट की। आर्यसमाजियों के गुप्त रीति से मना करने पर उनको झिड़क दिया और मौलवी को पढ़ाने लग गए। अन्त को वहाँ के आर्यों से एक नया मासिक 'वैदिक विजय पत्र' निकलवाकर उसकी सहायता अपने लेखों से करते रहे। जो 'जिहाद' नामी प्रसिद्ध पुस्तक पण्डित लेखराम की मिलती है वह पहले इसी 'वैदिक विजय पत्र' में क्रमशः निकली थी।

इन्हीं दिनों अजमेर से बाहर भी राजपूताने के कुछ स्थानों में ऋषि-जीवन-सम्बन्धी अन्वेषण करते हुए नसीराबाद छावनी में पहुँचे। वहाँ मुहम्मदियों से शास्त्रार्थ छिड़ गया। शहर कोतवाल शराबी कायस्थ था, जिसने शास्त्रार्थ को मध्य में ही बन्द कर दिया। उसी रात शराबी कोतवाल को लकवा मार गया और दूसरे दिन वह मर गया। सर्व-साधारण में प्रसिद्ध हो गया कि उस दुष्ट को पण्डित जी का शास्त्रार्थ बन्द करने का फल मिला। अन्य उपदेशक शायद सर्व-साधारण के इस मिथ्या विश्वास से अनुचित लाभ उठाते, किन्तु आर्यपथिक ने लोगों के इस भ्रम को दूर करने का बहुत ही प्रयत्न किया।

इसके पश्चात् पता लगता है कि पण्डित जी छुट्टी लेकर अपने गृह पर आए। थोड़े दिनों ही घर पर ठहरकर भादों के आरम्भ में फिर अपने काम पर चले गए। २४ अगस्त सन् १८८६ के सद्धर्म-प्रचारक में छपा था—“पण्डित लेखराम जी ने सवानह उमरी (जीवन-चरित्र) का काम फिर शुरू कर दिया है। चन्द रोज हुए वह मेरठ की तरफ रवाना हुए। अब पहले मुमालिक मगरबी व शिमाली (पश्चिमोत्तर देश) में दौरा लगायेंगे।”

मालूम होता है कि मेरठ में आर्यपथिक बहुत दिनों तक ठहरे, क्योंकि “निषेद

१. १८८६ ई० में प्रकाशित इस पत्र की कुछ फाइलें आर्यसमाज पानीपत में विद्यमान हैं। —सम्पादक

वेवगांन" नामी पुस्तक मेरठ के रामचन्द्र वैश्य से छपवाकर माघ १९४६ के आरम्भ में ही सद्वर्ग प्रचारक के कार्यालय में पहुँच गयी थी। उस लघु पुस्तक की समालोचना मेरी लिखी हुई १ फरवरी १८६० के सद्वर्ग-प्रचारक में छपी है। इस पुस्तक में शास्त्रीय प्रमाणों से भी विधवा-विवाह का ही समर्थन किया गया था। इसीलिए मुझे पहले-पहल उस समय यह सन्देह हुआ था कि आर्यपथिक नियोग की आपत्-काल का धर्म कदाचित् नहीं मानते हैं। समालोचना करते हुए मैंने लिखा था—“तर्जतहरीर से वाजह होता है कि पण्डित साहब नियोग को वेदानुकूल नहीं मानते, बल्कि पुनर्विवाह हर बेवा का जायज समझते हैं। हमारी राय में बेहतर हो अगर पण्डित साहब इस बहस को छोड़ें ताकि इस अमर मुत-नाजिया का कुछ फैसला हो और आर्यसमाज एक खास नियम का पाबन्द हो जावे।” इस विषय को इसी स्थान में समाप्त करने के लिए इतना लिखने की आवश्यकता है कि संवत् १९५० वि० तक पण्डित लेखराम नियोग के विषय में कुछ संदिग्ध-सी सम्मति रखते थे और प्रायः प्रसिद्ध आर्यसमाजियों के साथ इस विषय में बातचीत करते रहते थे। जब संवत् १९५१ में मेरे साथ अधिक परिचय हुआ और खुली बातचीत होने लगी, उस समय मेरे साथ विचार करने पर ही उन्होंने इस विषय में अपनी सम्मति बदल ली थी और इसीलिए उन्होंने पादरी टी० विलियम्स और पण्डित शिवनारायण अग्निहोत्री (वर्तमान देवसमाजी गुरु) की शंकाओं का समाधान करने के लिए “मसला नियोग” नामी ट्रैक्ट लिखा जो “कुलियात आर्य मुसाफिर” के २७६ पृष्ठों से आरम्भ होता है। मुझे भली प्रकार विदित है कि अपनी मृत्यु से एक वर्ष पहले वह द्विजों के लिए नियोग का ही विधान ठीक समझते थे, परन्तु शूद्रों के लिए पुनर्विवाह को ही शास्त्रसम्मत मानते थे। मेरठ से चलकर आर्यपथिक कौल (अलीगढ़) में पहुँचे। उपनगर बरौठा में उन्हीं दिनों आर्यसमाज स्थापित हुआ था। वहाँ १९ जनवरी १८६० को व्याख्यान दिया जिसमें प्रायः राजपूत अधिक सम्मिलित हुए और आर्यसमाज को २० नये सभासद मिले। फिर २१ और २२ जनवरी को खास अलीगढ़ में दो व्याख्यान देकर आगे चल दिये।

इसके पश्चात् आर्यपथिक संयुक्त प्रान्त और पंजाब के नगरों में सद्वर्ग का प्रचार करते हुए ऋषि दयानन्द के जीवन-सम्बन्धी घटनाएँ लिखते रहे, और भ्रमण करते हुए बीमार होकर अगस्त सन् १८६० के मध्य भाग में जालन्धर पहुँचे। यहाँ पहुँचकर उनको ज्वर बड़े जोर से चढ़ा। लाला देवराज के शान्त सरोवर पर एकान्त में उनका डेरा कराया गया।

एक दिन कचहरी से ३ बजे ही लौटकर मैं पण्डित लेखराम जी को देखने चला गया। पण्डित जी चारपाई पर बैठे हाँप रहे थे और आँखों से ज्वर १०५ दर्जे से बढ़ा हुआ मालूम होता था। मैंने नमस्ते की, उत्तर न मिला; मैंने पीठ के

पीछे हाथ डालकर लेटाना चाहा, मेरी बाँह जोर से झटक दी और क्रोध में भरे हुए बोले—“बस साहब! मैं यहाँ नहीं ठहरूँगा। यह आर्यगृह नहीं है।” मैंने पूछा “पण्डित जी क्या हुआ?” क्रोध में रुक-रुककर बोले—“पहले लाला देवराज को बुलाओ। मैं पीछे पीछे बात करना पाप समझता हूँ।” लाला देवराज जी के लिए आदमी दौड़ाया गया। वह शीघ्र ही पहुँच गए। धर्मवीर के होंठ फड़कने लगे और बोले—“आप काहे के आर्य हो, इस तरह ‘ओ३म्’ भगवान् की हतक कराते हो?” इतने में मैंने वहाँ नियत हुए भूत्य को अलग ले-जाकर पूछा तो पता लगा कि मामला है क्या? पण्डित लेखराम ज्वर से पीड़ित होकर चारपाई पर पड़े “ओ३म्”-“ओ३म्” बोल रहे थे कि एक जन्म के ब्राह्मण का लड़का वहाँ आ पहुँचा। चारपाई के सामने कुछ दूर गमले पड़े थे। तीन-चार गमलों के ऊपर “ओ३म्” शब्द लिखा हुआ था। ब्राह्मण के लड़के ने जूता उतारकर कुछ गाली बक, गमले पर लिखे “ओ३म्” पर जूते लगाने शुरू किये। पण्डित जी से सहन न हुआ, दुष्ट की ओर लपके। लड़का भागा, पीछे स्वयं भी भागे। भला नटखट लड़के को ज्वर से पीड़ित लेखराम कैसे पकड़ सकते? जब वह आँखों से ओझल हो गया, तो हाँपते हुए लौटे और चारपाई पर बैठ गए।

मैंने लौटकर पण्डित जी को शान्त करना चाहा और कहा—“पण्डित जी, भला देवराज जी का क्या अपराध है? उस शैतान को क्या उन्होंने बुलाया था?” उत्तर मिला—“क्यों नहीं गमले को ऊँची जगह पर रक्खा जहाँ लड़के का हाथ न पहुँच सकता? ईश्वर जानता है मैं यहाँ नहीं ठहरूँगा।”

देवराज जी के नम्र उत्तर पर और भी विगड़ने लगे। तब मैंने उनको भेजकर पण्डित जी को लेटा दिया और मुट्ठी-चापा करके सुलाया। यह घटना जहाँ आर्यपथिक की निर्बलता को प्रकट करती है, वहाँ साथ ही यह भी जतलाती है कि अपने सिद्धान्तों के लिए उनके हृदय में कैसी भक्ति थी।

दो सप्ताह तक पण्डित लेखराम ज्वर से पीड़ित रहे। ज्वर उतरते ही निर्बलता को सर्वथा भुलाकर उन्होंने २६ अगस्त १८७० के दिन पहला व्याख्यान दिया। फिर ३१ अगस्त को दूसरा व्याख्यान सद्धर्म विषय पर स्थानीय आर्य-समाज के साप्ताहिक अधिवेशन में दिया। उसी समय नकोदर से समाचार आया कि वहाँ का गिरदावर कानूनगो, जो कुछ काल से मुहम्मदी हो गया था, अपने संशय निवृत्त करना चाहता है। दूसरे दिन ही पण्डित जी निर्बलता की परवाह न करते हुए, इसके की सवारी से बहुत-से आर्य भाइयों के सहित नकोदर पहुँचे। चार दिन बराबर धूमधाम से व्याख्यान होते रहे। एक साधु और एक पौराणिक पण्डित के साथ मूर्तिपूजा विषय पर शास्त्रार्थ भी होता रहा, जिसमें दोनों

निरुत्तर हो गए। अन्तिम दिवस २५ सभासद बनाकर आर्यसमाज स्थापित किया।

जालन्धर से लाहौर पहुँचकर आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान को मिले और फिर सीधे सहारनपुर पहुँचे। वहाँ से १२ सितम्बर को कानपुर में ऋषि-जीवन-सम्बन्धी अन्वेषण करते रहे और वहाँ बड़ी जन-उपस्थिति में कई व्याख्यान दिये। सृष्टि-उत्पत्ति विषय पर जो अन्तिम व्याख्यान था उसकी बहुत ही प्रशंसा हुई।

कानपुर से पण्डित लेखराम सीधे प्रयाग पहुँचे। प्रयाग में ही उन दिनों श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज का स्थापन किया हुआ वैदिक-यन्त्रालय भी था और पण्डित भीमसेन और पण्डित ज्वालादत्त भी उसमें काम करते थे। यहाँ पण्डित लेखराम एक मास तक पत्र-व्यवहार देखते रहे। इसी समय कुछ प्रूफ देखते हुए आर्यपथिक को पण्डितों की पोपलीला का पता लगा; वेदभाष्य का एक छपा हुआ अंक जलवा दिया और उसका संशोधन कराकर फिर से छपवाया। अपने पाठकों के समझाने के लिए यह आवश्यक है कि वेदभाष्य का संस्कृत-भाग ऋषि दयानन्द का अपना लिखवाया हुआ है। जिन पण्डितों ने मूल संस्कृत भाष्य में भी हस्तक्षेप करने से संकोच नहीं किया था वे भला भाषार्थ में कब चूकनेवाले थे, जहाँ सारा काम ही उनके हाथों में था।^१ यह पण्डित लेखराम के हलचल डालने का परिणाम था कि वेदभाष्य के अंकों के अवलोकन का भार कुछ प्रसिद्ध आर्य पुरुषों पर डाला गया।

मिर्जापुर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव का समाचार सुनकर पं० लेखराम २४ अक्टूबर १८६० ई० को उधर चल दिये। पहले दिन हवन के पश्चात् उसी विषय पर पण्डित लेखराम का युक्ति-युक्त सारगर्भित व्याख्यान हुआ। मेरे संवाददाता लिखते हैं कि ऐसा जबरदस्त व्याख्यान मिर्जापुर-निवासियों ने पहले कभी नहीं सुना था। उसी दिन शाम को धर्म विषय पर व्याख्यान हुआ। दूसरे दिन आर्य-समाज के दस नियमों पर अपना प्रसिद्ध व्याख्यान दिया जिसको सुनकर बाल, वृद्ध सभी आर्यसमाज के गुण गाने लगे।

आर्यसमाज के सभासद एक कलवार थे। पण्डित जी ने उन्हें समझाया कि जब वैश्य का काम करते हो तो यज्ञोपवीत से क्यों वंचित हो? सभासद ने उत्तर दिया—“महाराज ! मेरा यज्ञोपवीत कौन करायेगा?” वहाँ उत्तर में क्या देर थी—“मैं कराऊँगा; देखूँ कौन-सा आर्यसमाजी पण्डित है जो सम्मिलित न होगा!” बस फिर क्या था ! यज्ञोपवीत का समय नियत किया गया। न केवल नगर के प्रसिद्ध लोग ही सम्मिलित हुए, प्रत्युत पण्डित घनश्याम और रामप्रकाश आदि जन्म के ब्राह्मण पण्डितों ने स्वयं संस्कार कराया और धर्मवीर लेखराम के

१ इस स्पष्ट प्रमाण के होते हुए भी कतिपय विद्वान् दुराग्रहवश वेदभाष्य के भाषार्थ को ऋषिकृत ही मानते हैं।

धैर्य देने पर विरादरी आदि की धमकियों की कुछ भी परवाह न की।

मिर्जापुर के एक वकील बड़े कट्टर मौलवी थे और साथ ही शहर के गुण्डों के सरदार। मिर्जापुर अपने गुण्डों के लिए प्रसिद्ध है। काशी तो गुण्डों के लिए जगत् विख्यात है, किन्तु मिर्जापुर का लोहा भी उसने माना हुआ है। काशी की कजरी का एक पद है :

“कासीजी में सोंटा चलेगा मिरजापुर तलवार।”

मिर्जापुर के गुण्डों के सरदार मौलवी वकील एक दिन पण्डित लेखराम के साथ मजहबी छेड़छाड़ के लिए पहुँचे। भला आर्यमुसाफिर के सामने ठहरना कुछ हँसी-ठट्ठा था ? थोड़ी देर में निरुत्तर होकर चले गए। दूसरे दिन मुवाहसे की तैयारी करके आए आर्यसमाज के प्रधानादि ने उनकी नीयत बंद देखकर अस्वीकार किया, किन्तु धर्मवीर ने निर्भय होकर शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया। शहर में हुल्लड़ मच गया। आर्य भाइयों ने पण्डित जी को बाहर जाने से मना किया, किन्तु उन सबने सायंकाल को आश्चर्य के साथ देखा कि धर्मवीर अकेले डण्डा हाथ में लिये, पगड़ी का शमला छोड़े, घूमने जा रहे हैं।

मिर्जापुर से पण्डित लेखराम काशी को गए और मालूम होता है कि दो मास तक वहाँ ही आन्दोलन करते रहे। काशी के पण्डितों के यहाँ आर्यपथिक ने बड़े चक्कर लगाए और पौराणिक पण्डितों के विरोध का बराबर हाजिरजवाबी से मुकाबिला किया।

सन् १८९१ ई० के जनवरी मास में पण्डित लेखराम काशी से चल दिये। दो दिन रास्ते में डुमराँव राज में निवास करके १७ जनवरी १८९१ के दिन दानापुर पहुँचे।

१७ जनवरी से १२ फरवरी तक दानापुर, बाँकीपुर और पटना में ही काम किया। इन स्थानों में व्याख्यान भी हुए किन्तु बड़ी मनोरंजक वह वृत्तान्त-पत्रिका है, जो डाक्टर मुन्नीलाल शाह पटना आर्यसमाज के सामयिक प्रधान ने मेरे पास भेजी थी। यतः यह पत्रिका बहुत समाचारपत्रों तथा धर्मवीर आर्यपथिक के जीवन-वृत्तान्तों में छप चुकी है और यतः मुझे भी आगे चलकर इसमें लिखित विषयों पर अधिक प्रकाश डालना है, अतएव उस वृत्तान्त-पत्रिका को डॉक्टर शाह के शब्दों में ही मुद्रित कर देता हूँ। डॉक्टर शाह लिखते हैं—

“जिन दिनों श्रीमान् पण्डित लेखराम जी श्री १०८ श्रीमद्भयानन्द सरस्वती जी महाराज का जीवन-वृत्तान्त संग्रह करते हुए दानापुर से बाँकीपुर पधारे थे और इस दीन पुरुष के निज गृह पर आ विराजे, उस समय यह पुरुष मेडिकल क्लास का विद्यार्थी और बाँकीपुर आर्यसमाज (बादशाही गञ्ज) का मन्त्री था। श्रीमान् पण्डित जी बाँकीपुर में लगभग ६ दिन ठहरे, इस बीच उनके मकान से एक तड़ित्-समाचार समाज के नाम अनायास पहुँचा। तार द्वारा समाज से

जिज्ञासा की गई थी कि पण्डित जी जीवित हैं वा नहीं ? किसी दुर्जन यवन ने खबर भेजी थी कि पण्डित लेखराम मारे गए ! !

“इस अपूर्व घटना का कारण मैंने पण्डित जी से पूछा । पण्डित जी ने उत्तर में यही कहा कि प्रायः यवन लोग ऐसा ही अमंगल समाचार भेजा करते हैं । अस्तु, तार का जवाब, श्रीमान् पण्डित जी के जीवित रहने का, उसी क्षण भेजा गया, परन्तु मुझको उस दिन से यवनों के कुटिल वर्तव्य का अशुभ खयाल खटकने लगा । दूसरे दिन, पण्डित जी ने मुझको अधिक चिन्तित और उदासीन पाकर पूछा कि आप आज मलिन देख पड़ते हैं ? उत्तर में मैंने यही निवेदन किया कि महाराज ! ऐसा न हो कि किसी समय में आपके ऊपर यवनों का आघात पहुँच जावे ! आप-को उचित है कि इस असभ्य मूर्ख कौम के लोगों से सोच-विचार के वर्तव्य रखना । पण्डित जी हँसकर कहने लगे—‘मन्त्री जी ! मृत्यु एक दिन अवश्य ही है, किन्तु सच्चे धर्म के लिए शहीद होने के बराबर कोई दूसरी मृत्यु नहीं । तवारीख पढ़ो और देखो कि इस जमाने के पर्दे पर जिन-जिन लोगों ने अपने धर्म के लिए गला दिया है, उस कर्म का कैसा प्रभावशाली उत्तम परिणाम निकला है ! वस, इन यवनों के विषयों में अधिक उद्विग्न होने की आवश्यकता नहीं । ऐसे तो ये लोग मुझको गालियाँ देते, पत्थर फेंकते, हमारी तसनीफ की हुई किताबें जलवाते, जगह-व-जगह यवन मत के पोल इन दो किताबों (तकजीव-बुराहीन-अहमदिया वा नुस्खे-खत-अहमदिया) के द्वारा खुल जाने से अभियोग खड़ा करवाने और नाना प्रकार के कुटिल वर्तव्य बराबर उत्पन्न करने की कुचेष्टा किया करते हैं परन्तु मैं इनपर कुछ ध्यान नहीं देता । हम लोगों को उचित है कि अपना कर्तव्य-कर्म पालन करने में किसी प्रकार की त्रुटि न दिखलावें ।

मैंने पुनः पूछा—“पण्डित जी, सत्यार्थ-प्रकाश का फारसी अनुवाद क्यों नहीं करते ?”

उत्तर में पण्डित जी ने यह कहा—“सोच तो रहा हूँ कि स्वामी जी महाराज का जीवन-चरित्र समाप्त कर सत्यार्थ-प्रकाश का फारसी तर्जुमा कर यवन लोगों के मुख्य प्रदेशों की ओर प्रस्थान करूँ ।”

मैंने पुनः पूछा कि “मुख्य प्रदेशों से आपका क्या अभिप्राय है ?”

पण्डित जी ने जवाब दिया कि “अफगानिस्तान, पश्चिम, अरेबिया, मिश्र, तुर्किस्तानादि देशों में भ्रमण कर वैदिक धर्म का प्रचार करना ही हमारा मुख्य अभिप्राय है ।”

मैंने पूछा—“क्यों पण्डित जी ! बिना प्रतिनिधि की आज्ञा आप कैसे जाएंगे ?”

“मन्त्री जी, मैं प्रतिनिधि के आधीन होकर जाने की इच्छा नहीं करता, वरन् स्वतन्त्रता के साथ उपदेश करना चाहता हूँ ।”

“पण्डित जी ! इन यवन देशों में आप बिना प्रतिनिधि की सहायता के अपनी आजीविका किस प्रकार करेंगे ?”

“मन्त्री जी ! मैं चिकित्सा द्वारा अपनी जीवन-वृत्ति धारण करूँगा ।”

“पण्डित जी ! क्या आपने इसमें कुछ परिश्रम किया है ?”

“मन्त्री जी ! कुछ तो किया है और शनैः-शनैः कर रहा हूँ । देखो, हमारे पास बहुत-से मुफ़्तीद नुस्खे जमा हैं । जब मैं एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता हूँ तो चिकित्साशास्त्र के जाननेवालों से प्रायः मुलाकात किया करता हूँ और जो-जो मुफ़्तीद नुस्खे उनके पास होते हैं चन्द उनमें से नोट कर लेता हूँ ।”

इसी अवसर में पण्डित जी ने नोटबुक निकालकर मुझको भी (प्रार्थना करने पर) दो से चार नुस्खे धातु आदि के विषय में लिखवा दिये ।

“पण्डित जी ! कल दिन एक सनातनी पौराणिक के यहाँ जलसा है । इसमें अनेक पण्डितगण दूर-दूर देश से आए हैं, उन्होंने मुझको सूचना भेजी । आप भी अपने पण्डित के सहित आइए, सो इस विषय में आपकी क्या सम्मति है ?” श्रीमान् पण्डित जी ने उत्तर दिया कि अवश्य चलना चाहिए । तदनुसार हम लोग दूसरे दिन पौराणिकों के जलसे में शरीक हुए । पण्डित जी का एक व्याख्यान अवतारादि कल्पित विषय के खण्डन पर ऐसा प्रभावशाली उत्तमता से हुआ कि पौराणिकों को चकाचौंध लग गया । उनमें से कोई निरक्षर लंठ कषाय-वस्त्रधारी स्वामी दयानन्द के विरुद्ध अण्ड-वण्ड बकने लगा । पर पण्डित जी ने थोड़े ही समय में उसका मुँह बन्द कर दिया । तत्पश्चात् सन्ध्या को हम लोग अपने स्थान पर लौट आए ।

“प्रतिदिन स्वर्गवासी पण्डित लेखराम जी से धर्म-सम्बन्धी विषयों के ऊपर बातचीत होते-होते एक दिन उन्होंने पूछा कि मन्त्री जी ! चालीस पारे का कुरान आपने देखा वा नहीं ? मैंने उत्तर दिया—नहीं । पण्डित जी कहने लगे कि मैं इस पुस्तक की खोज में बहुत दिनों से हूँ, पर अद्यावधि प्राप्त नहीं हुई । मैंने उनसे निवेदन किया कि इस स्थान पर एक बृहत् कुतुबखाना (Library) मौलवी खुदाबक्श खाँ बहादुर का है । इस कुतुबखाने के बराबर कोई दूसरा धधर-उधर नहीं है; प्रायः पुस्तकें उनके नवियों के और अरब मुल्क के प्राचीन मौलानों के तसनीफ़ किये हुए हैं; सो इसको आप चलके मुलाहिजा कीजिए, शायद वह किताब मिल जाए । पण्डित जी समाचार सुनते ही बड़ी प्रसन्नता और हर्षपूर्वक उसी समय मुझको लेकर कुतुबखाने को आए और किताबें देखना आरम्भ किया; ईश्वर की कृपा से वही ४० पारे का कुरान जिसकी खोज में इतने दिनों से इच्छुक हो रहे थे, प्राप्त भया । पण्डित जी ने प्रायः सब मुख्य-मुख्य विषयों को पिछले १० पारों में से नोट कर लिया; और भी बहुत-सी बातें अपनी डेली डायरी (रोजनामचे) में दर्ज कीं । इस कार्यवाही को देखकर चन्द यवन लोगों ने जो वहाँ बैठे थे, पण्डित जी का नाम व तारीफ़ मुझसे पूछा, पर मैंने किसी कारणवश नाम नहीं बतलाया ।

इसी क्षण में कुतुबखाने के मालिक भी पहुँच गए। उन्होंने अपने मौलवियों से सुना कि अमुक पण्डित ने कुरान (४० पारे) से बहुत-से विषय नोट किये हैं। मालिक-कुतुबखाना उस ४० पारे के कुरान के विषय में यों कहने लगे कि यह किताब बड़ी कठिनता से प्राप्त भया है, अर्थात् जब वह पेशावर गये थे तब एक प्रतिष्ठित मौलवी ने कई सहस्र रुपये लेकर बेचा था। उन मौलवी ने मालिक कुतुबखाने से यों बयान किया था कि यह कुरान परशिया (ईरान) के बादशाह के दीवान ने अफगानिस्तान (काबुल) में भेजा था, उस आदमी से मुझको प्राप्त हुआ। अस्तु, पण्डित जी से और भी बातें होने लगीं। पण्डित जी कार्य समाप्त होने पर अधिक न ठहरे और हम लोग अपने डेरे पर बातचीत करते हुए लौट आए।

“दूसरे दिन हम लोग खड्गविलास नामक यन्त्रालय में पहुँचे। समाचार मिला था कि उस प्रेस में ‘कवि-वचन-सुधा’ का, जिसको बाबू हरिश्चन्द्र काशी से प्रकाशित करते थे, पूरा-पूरा फाइल है। सुतराँ पण्डित जी ने फाइल को माँगा और उन लोगों ने भी कृपया दे दिया। पण्डित जी को जो कुछ नोट करना था सो सब लिख लिये; इस पत्र में स्वामी जी के विषय में अनेक उत्तम-उत्तम विषय प्रकाशित हुए थे। हुगली-शास्त्रार्थ इसी पत्र में प्रथम-प्रथम ज्यों-का-त्यों छपा था।

“स्वामी जी का भ्रमण-वृत्तान्त जब पण्डित जी पटने का संग्रह कर चुके, तब कलकत्ता प्रस्थान करने की तैयारी की। जब तक पण्डित जी यहाँ ठहरे तब तक सभासदों को पूर्णरूप से उत्साह देते रहे। आपके कई व्याख्यान पब्लिक में हुए जिनका असर बहुत ही लाभकारी हुआ। पण्डित जी जब कोई ऐसी बात सुनते थे जो उनकी आत्मा को प्रिय न होती थी तो उस पुरुष से बहुत शीघ्र रंज हो जाते थे, परन्तु साथ ही यह रंज बहुत क्षणिक रहता था। कलकत्ता में बराबर पण्डित जी के साथ रहा और बहुत-सी शिक्षा उनसे प्राप्त की। आपको तवारीख का बड़ा शौक था, अतएव बहुत-से विषय का विस्तृत ज्ञान आप हासिल किये हुए थे।”

१३ फरवरी सन् १८९१ के दिन आर्यपथिक बाँकीपुर से हावड़ा जानेवाली गाड़ी में सवार हुए और १४ फरवरी को कलकत्ते पहुँचकर ‘आर्यावर्त्त’ समाचार-पत्र के कार्यालय में डेरा किया।

इसी वर्ष १२ एप्रिल को हरिद्वार के कुम्भ का नहान और एक मास पहले ही बड़ा भारी मेला लगनेवाला था। ऋषि दयानन्द के परलोक-गमन के पश्चात् यह पहला ही कुम्भ था और मैंने इस अवसर पर प्रचार के लिए बड़ा बल दिया था। मेरे लेखों को कलकत्ते में पढ़कर आर्यपथिक को भी बहुत जोश आया। उन्होंने ७ मार्च १८९१ के आर्यावर्त्त में मेरे लेख के साथ सर्वथा सहमत होकर मुझे आज्ञा

१. इस मासिक पत्र में ऋषि दयानन्द लिखित ‘अद्वैतमत खण्डन’ शीर्षक ग्रन्थ भी छपा था। —सम्पादक

दी कि उनके हिसाब में से ५/- आर्यसमाज जालन्धर के कोषाध्यक्ष से लेकर कुम्भ-प्रचार फण्ड में दाखिल कर दूँ। पण्डित लेखराम के लेख पर पंजाब और संयुक्त-प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभाएँ भी जाग उठीं और मुझे आज्ञा हुई कि प्रचार का प्रबन्ध करने के लिए हरद्वार चला जाऊँ। मेरे हरद्वार पहुँचने के तीन दिनों के पश्चात् ही पण्डित लेखराम जी भी कलकत्ते से ५०/- चन्दा करके साथ लिये हुए पहुँच गए थे और जब कार्यवशात् मुझे प्रचार के बीच में से ही जालन्धर लौटना पड़ा तो मेरे निवेदन पर पण्डित जी ने राजकुमार जनमेजय को प्रबन्ध के काम में बड़ी सहायता दी थी। पण्डित जी इससे पहले मुझे साधारण परिचित आदमियों में समझा करते थे, परन्तु कुम्भ-प्रचार के लिए मेरी अपीलों को पढ़कर वह मुझसे अधिक प्रेम करने लग गए थे। वह ऋषि दयानन्द के बड़े भक्त थे और ऋषि के चरणों में मेरी भक्ति देखकर ही आर्यपथिक मेरे अधिकतर समीप हो गए।

कुम्भ प्रचार समिति पर पण्डित लेखराम मेरे पास जालन्धर आए और आर्य प्रतिनिधि सभा की आज्ञानुसार कुम्भ-प्रचार का हाल एक उर्दू ट्रैक्ट की शकल में छपवाया।

लाहौर में पहुँचते ही समाचार मिला कि सिन्ध हैदराबाद में आर्यजाति के कुछ भूषण मुहम्मदो तथा ईसाई मतों की ओर झुक रहे हैं। इसपर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान की आज्ञा पाकर पण्डित लेखराम ने उधर को प्रस्थान किया।

सककर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए पण्डित लेखराम वैशाख १९४८ के अन्त में चले गए। स्वामी (वर्तमान पण्डित) पूर्णानन्द जी भी 'द्वावा गुहदासपुर उपदेशक मंडली' की ओर से उक्त उत्सव में सम्मिलित थे। वहाँ विस्तृत समाचार मिला कि मुहम्मदी मत का (सिन्ध) हैदराबाद में जोर है और साथ ही यह भी पता लगा कि एक आमिल रईस अपने दो लड़कों सहित मुहम्मदी मत स्वीकार करने को तैयार है। इससे बढ़कर यह प्रसिद्ध था कि कई युवक ईसाई मत की ओर अधिक झुक रहे हैं।

आर्यपथिक यह समाचार सुनकर चुपके से कैसे लौट सकते थे? श्री पूर्णानन्द जी सिन्धी भाषा जानते थे, इसलिए उन्हें साथ लेकर पण्डित लेखराम ने हैदराबाद का रास्ता पकड़ा। ज्येष्ठ १९४८ के आरम्भ में ही ईसाई और मुहम्मदी मतों के खण्डन की हैदराबाद में धूम मच गई। ईसाई मत से युवकों को हिलाने के लिए आर्यपथिक ने उसी स्थान में एक लघु पुस्तक तैयार की जिसका शीर्षक रक्खा — "क्या आदम और हवा हमारे बालदैन (माता-पिता) थे?" इस लेख में युक्ति तथा प्रमाण द्वारा सिद्ध किया कि एक माँ-बाप की सन्तान सारी मनुष्य-सृष्टि

सिद्ध नहीं होती। इसी प्रबल लेख का सारा अपने व्याख्यान में देकर पण्डित लेखराम ने ८ वा १० आर्य जाति के युवकों को ईसाई मत के गढ़े से गिरते-गिरते खींच लिया।

सिन्धी रईस, जो मुहम्मदी मत की ओर झुक रहे थे, दीवान सूर्यमल जी थे। आर्यपथिक के हैदराबाद पहुँचने पर वह स्वयं तो अपने इलाके अलीपुर की ओर चले गए, किन्तु उनके दोनों पुत्रों को पण्डित लेखराम ने जा घेरा। मेरे पास उस समय का सारा पत्रव्यवहार मौजूद है जिससे पण्डित जी की हिम्मत और उनके धर्मरक्षा में उत्साह का पता लगता है। हैदराबाद पहुँचते ही हमारे धर्मवीर दीवान सूर्यमल के पुत्रों के पास गए। बड़े का नाम दीवान मेवाराम था। ये युवक पण्डित लेखराम को टालना चाहते थे; किन्तु लेखराम भला कोई टलनेवाले आसामी थे? दूसरी, तीसरी, चौथी बार फिर गए और आग्रह किया कि जिस मौलवी पर उन्हें पूर्ण विश्वास हो उसके साथ मुवाहसा कराके सत्यासत्य का निर्णय कर लें। फिर पत्रों की भरमार कर दी। तब मजबूर होकर मौलवियों को सामने आना पड़ा। मौलवी सय्यद मुहम्मदअली शाह के साथ सबसे पहला मुवाहसा हुआ। विवादास्पद विषय यह था कि मुहम्मद साहब के पास मोजे (करामात) थे वा नहीं। मौलवी साहब तंग आ गए और कुछ उत्तर न दे सके। तब दूसरे मौलवियों ने पत्रव्यवहार शुरू किया। मौलवी मुहम्मद सहीक, हाजी सय्यद गुलाम मुहम्मद, मुपती सय्यद फाजिलशाह, सय्यद हैदरअली शाह—इन चार महाशयों की ओर से उर्दू के पत्रों के उत्तर फारसी भाषा में दिये। इस पत्र-व्यवहार के पढ़ने से पण्डित लेखराम की योग्यता का बड़ा उत्तम प्रमाण मिलता है। इस बड़े प्रयत्न का परिणाम यह हुआ कि दीवान सूर्यमल के दोनों पुत्रों को मुहम्मदी मत से घृणा हो गई और एक कुलीन आर्य परिवार की रक्षा का भार आर्यपथिक को प्राप्त हुआ। यह जानना इस स्थान में मनोरंजक होगा कि प्रसिद्ध ब्राह्मसमाजी वक्ता श्री प्रिन्सिपल वासवानी एम० ए०^१ उन दिनों हैदराबाद में विद्यार्थी थे और उनके दिल में अपने धर्मशास्त्रों का गौरव पण्डित लेखराम से बातचीत करने और व्याख्यान सुनने से बैठा था।

* लाडकाना के कुछ बलात्कार से मुसलमान किये हुएों का प्रार्थनापत्र पण्डित जी के पास हैदराबाद में ही पहुँचा था। उन लोगों ने शुद्ध होकर आर्यसमाज में प्रविष्ट होने की प्रार्थना की थी। बीमार हो जाने के कारण उस समय पण्डित लेखराम उनकी प्रार्थना को स्वीकार न कर सके। परन्तु लेखराम का शुभ संकल्प फिर फलीभूत हुआ और अनेक कष्ट सहन करके उनमें सैकड़ों भाई वैदिक धर्म

१. कालान्तर में साधु टी० एल० वास्वानी के नाम से प्रसिद्ध महापुरुष तथा स्वामी दयानन्द के प्रशंसक।

की शरण में आकर परमार्थ-रूपी धन का संचय कर रहे हैं। हैदराबाद (सिन्ध) में ही पण्डित लेखराम ने 'क्रिश्चियन मत दर्पण' की तैयारी शुरू कर दी थी और सृष्टि-उत्पत्ति तथा उसके इतिहास पर जो गवेषणापूर्वक व्याख्यान उक्त पण्डित जी दिया करते थे, उस सबका विस्तारपूर्वक वर्णन 'तारीख-ए-दुनिया' नामी ट्रैक्ट-रूप में उन्हीं दिनों तैयार किया गया था। सितम्बर (१८९१ ई०) मास में पिछला ट्रैक्ट छप चुका था, जिसकी समालोचना २९ भाद्रपद, सं० १९४८ के 'प्रचारक' में प्रकाशित हुई थी।

मालूम होता है कि सिन्ध हैदराबाद से लौटकर पण्डित लेखराम अधिकतर पंजाब में ही काम करते रहे। माण्टगुमरी आदि समाजों में व्याख्यान देकर लाहौर पहुँचे और वहाँ पौराणिक मतखण्डन के व्याख्यानों की झड़ी लगा दी। फिर ११ अक्तूबर को अमृतसर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के समय 'आर्य धर्म' पर ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा सारगर्भित व्याख्यान दिया। इसी व्याख्यान की प्रशंसा 'सद्धर्म-प्रचारक' में काम करते हुए मैंने देशभाषा के शॉर्टहैंड की आवश्यकता जतलाई थी।

नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में पण्डित लेखराम लाहौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित रहे जहाँ २९ नवम्बर को अन्तिम व्याख्यान उनका हुआ। उसमें उन्होंने सारे संसार के मतों का मुकाबिला करके सिद्ध किया कि केवल वैदिक धर्म ही मनुष्यों को शान्ति दे सकता है।

दिसम्बर के दूसरे सप्ताह में साधु केशवानन्द उदासी के शोर मचाने पर पण्डित लेखराम जी को तार देकर आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री जी ने बुलाया और नाहन राज में भेजा। साधु केशवानन्द के साथ महाराजा साहव के सामने बातचीत भी हुई और फिर आर्यपथिक के चार व्याख्यान हुए जिसके पश्चात् नाहन में आर्यसमाज की स्थापना हुई।

राजपूताना के साथ विशेष सम्बन्ध

ऐसा मालूम होता है कि नाहन के शास्त्रार्थ और वहाँ आर्यसमाज स्थापित करने के पश्चात् पण्डित लेखराम कुछ दिन और पंजाब में काम करते रहे, क्योंकि २१ मार्च १८६२ को उन्होंने मियानी (जिला शाहपुर) में नवीन समाज स्थापित किया था, और फिर राजपूताने की ओर चले गये। पहली बार जो सम्बन्ध बाबू रामविलास शारदा जी तथा अंजमेर के अन्य आर्य पुरुषों से हुआ था, वह इस बार अधिक दृढ़ किया। विशेषतः स्वर्गवासी वजीरचन्द्र जी के वहाँ होने से आर्यपथिक को उस प्रान्त से बड़ा प्रेम हो गया था। इस बार (जून १८६२ ई०) पण्डित लेखराम बराबर राजपूताने में ही ऋषि-जीवन की घटनाओं का पता लगाता रहे। राजपूताने के सर्वप्रसिद्ध रईसों, ठाकुरों और प्रतिष्ठित पुरुषों से मिलकर जो वृत्तान्त आर्यपथिक ने लिखा था वह सब जीवन-चरित्र में छप चुका है।

इन दिनों की दो घटनाएँ पण्डित जी के स्वभाव को दो भ्रंशों में स्पष्टता से प्रकट करती हैं। बूंदी राज्य में जाकर ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी तथा स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी ने शास्त्रार्थ की धूम मचा दी थी। आर्यपुरुषों को जब यह पता लगा तो उन्होंने दोनों संन्यासी महात्माओं की सहायता के लिए आर्यपथिक को भेजा। कुछ लोगों ने डराया भी कि रियासत का मामला है, कहीं कण्ट न मिले; परन्तु धर्म-युद्ध का नरसिंहा जब बज गया तो लेखराम को रोकनेवाली कोई भी शक्ति नहीं थी। अकेले सिंह की न्याईं सीधे बूंदी में पहुँचे। वहाँ जाकर पता लगा कि महाराजा साहब के विशेष शास्त्रार्थ से इन्कार कर देने पर दोनों संन्यासी महात्मा लौट गए हैं। पण्डित लेखराम भी जहाजपुर में लौट आए, जहाँ सायंकाल को पहुँचते ही इनके व्याख्यान का विज्ञापन जहाजपुर के हाकिम ने (जो आर्यसामाजिक थे) घुमा दिया। रात को व्याख्यान में सर्वसाधारण के साथ फौज के सिपाही और अफसर भी आए; उनमें से पैदल का सूबेदार मुसलमान था। आर्यपथिक ने अन्य विषयों के साथ मुहम्मदी मत का भी कुछ तो खण्डन किया। इसपर मुसलमान सूबेदार ने दिल्लगी में कहा—“ऐसे ही तीसमारखाँ थे तो बूंदी से क्यों भाग आए?” हाजिरजवाब लेखराम को सोचने की जरूरत न थी; तुरन्त

उत्तर दिया—“विपक्षी शास्त्रार्थ से भाग गया और हम लौट आए; कुछ आं हजरत (अर्थात् मुहम्मद साहब) की तरह हिजरत करके (भागकर) तो नहीं आए।” इसपर मुसलमान सूबेदार की आँखें लाल हो गईं और उसने तलवार के कब्जे पर हाथ रक्खा। वीर लेखराम ने गरजते हुए कहा—“मुझे तलवार की धमकी दिखाता है? अगर पठान का है तो तलवार निकालकर मजा देख!” हाकिम ने मुसलमान सूबेदार को अलग बैठा दिया और फिर किसी ने चूँ तक न की।

अजमेर के सम्बन्ध में यहाँ बाबू रामविलास शारदा जी के पत्रों से कुछ भाग उद्धृत करता हूँ जिससे आर्यपथिक के स्वभाव और काम पर बड़ा प्रकाश पड़ता है—

“स्वामी दयानन्द सरस्वती को छोड़कर, जिनके विषय में कुछ नहीं जानता क्योंकि मैं उन दिनों कॉलेज में पढ़ता था, और आर्यसमाज का सभासद नहीं था, मैंने जितने संन्यासी तथा उपदेशक देखे हैं ऐसा सच्चा दृढ़ मोहकिक, निर्लोभी, परिश्रमी, जितेन्द्रिय, अपने समय को व्यर्थ न खोनेवाला एक भी मनुष्य नहीं देखा। व्याख्यान देने तथा लोगों की शंका समाधान करने के अलावा जो समय उनको मिलता था वह प्रायः पुस्तक देखने तथा वैदिक धर्म के विरोधियों को उत्तर देने में लगाया करते थे।

“आर्यसमाजों की अन्दरूनी हालत पर निहायत अफसोस किया करते थे कि तुम्हारे लोगों में पोप घुसे हुए हैं जो मौका पाकर समाजों का सत्यानाश कर डालेंगे और वे पं० भीमसेन का नाम अक्सर इस सिलसिले में लिया करते थे और उनकी हेर-फेरवाली इबारत पर अक्सर अत्यन्त क्रोधित होते थे। लोग इस विषय में पण्डित जी को कट्टर बतलाकर टाल दिया करते थे, परन्तु जो लोग उनसे भले प्रकार विज्ञ थे वे जानते थे कि धर्मवीर आर्यपथिक का एक-एक शब्द शीक था। पण्डित जी से देश-मुधार व वैदिक धर्म के प्रचार के विषय पर जब-जब बातें होती तो आप फरमाया करते थे कि आर्यावर्त का उद्धार उस समय तक नहीं होगा जब तक कि लोग वेदों पर पूरा-पूरा विश्वास नहीं करेंगे। नवीन वेदान्तियों व अन्य लोगों की दूरदर्शिता से यह खयाल आम तौर से फँस रहा है कि उपनिषद् वेदों से आता है। भोले लोग यह नहीं जानते कि ये वेदों से ही निकले हैं। कई तो उनके सूक्त के सूक्त ही हैं। मेरा विचार उपनिषदों का तरजुमा करने का है जिसकी भूमिका में यह सब मसले हल करूँगा और लोगों के दिलों में वेदों की बुजुर्गी बिठलाने का यत्न करूँगा! शोक यह है कि पण्डित जी के दिल की दिल ही में रही।

२. पैगम्बर साहब के मक्का से मदीना चले आने की घटना से अभिप्राय है।

—सम्पादक

“इस बात का विचार मुद्दत से था कि आर्य पुरुषों के पढ़ने योग्य पोप-लीला से रहित निष्प्रान्त मनु-भाषा-टीका छपवाई जावे। मैंने इस विचार को पण्डित जी के सामने पेश किया तो आपने इसका भाषान्तर करना मंजूर किया। आप फरमाते थे कि मैंने २६ मनुस्मृतियाँ इकट्ठी की हैं और जो कश्मीर से मनुस्मृति हाथ लगी है वह बहुत नायाब है। आप पण्डित गुरुदत्त जी के नोटों के विषय में भी कहते थे और फरमाते थे कि श्रीमान् शाहपुराधीशों ने भी, जिन्होंने तीन महीने तक मनुस्मृति को श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती जी से पढ़ा था, बहुत-कुछ बातें बतलाई हैं। छपाई आदि के विषय में सब शर्तें निश्चित होने पर आपने कार्य आरम्भ कर दिया था और एक अध्याय का भाषान्तर भी कर दिया था जो उनके कागजों में मौजूद है और मेरे नाम से एक विज्ञापन भी लिख रक्खा था। इसके पश्चात् मैंने अपने शास्त्रोद्धार की स्कीम पेश की जिसमें वेदों, उपनिषदों, छः शास्त्रों का भाषान्तर और महाभारत और वाल्मीकि रामायण के सार व सूर्य-सिद्धान्त, चरक, सुश्रुत आदि का छपवाना, वाद निकालने परिक्षिप्त श्लोकों के, किया। आपने फरमाया कि मनुभाष्य के पश्चात् वे वाल्मीकीय रामायण को लेवेंगे जिसके लिए उन्होंने मसाला तैयार कर रक्खा था। आपका विचार एक प्राचीन इतिहास लिखने का भी था और अंग्रेजी की Nineteenth Century के मुआफिक एक मासिक रिसाला निकालने का इरादा रखते थे जिसमें आर्यावर्त्त के सब विद्वान् आर्य भ्राता मजमून भेजा करें। अजमेर से भी दो-एक नाम आपने लिखे थे। आपने यहाँ स्वामी जी के जीवन-चरित्र के मुताल्लिक बहुत दिनों तक काम किया था और वहाँ के मशहूर हुकीम पीर जी से थोड़ा-सा मुबाहसा भी हुआ था जोकि पीछे इनकी बड़ी तारीफ किया करते थे। आप पादरी ग्रे, मौलवी मुराद-अली पण्डित शिवनारायण जी शास्त्री आदि बहुत-से लोगों से मिले थे जिसका पूरा-पूरा हाल स्वामी जी के जीवन-चरित्र के लेखों से मिल रहा है। आपके अजमेर में कम-से-कम १५ व्याख्यान हुए होंगे जिनमें वावजूद लस्सानिय (Oratory) न होने के लोग बहुत संख्या में जमा होते थे और बहुत ही सन्तुष्ट होकर घर को जाते थे। इतिहास व प्राचीन तहकीकात से भरे हुए ऐसे व्याख्यान लोगों ने कभी न सुने और अब तर्कतारीफ करते हैं।”

इन्हीं दिनों पण्डित लेखराम जी ने “वंदिक विजय पत्र” से जिहाद-विषयक लेखों को इकट्ठा करके “रिसाला जिहाद” छपवाया था क्योंकि उसकी समा-लोचना १४ मई, १८९२ के ‘सद्धर्म-प्रचारक’ में निकली थी।

ऐसा मालूम होता है कि पण्डित लेखराम जून के अन्तिम सप्ताह वा जुलाई के आरम्भ में फिर राजपूताने से लौट आये थे क्योंकि उनके लिखे हुए “कस्तूरी की प्राप्ति” विषयक दो लेख १३ जुलाई और २७ अगस्त के प्रचारक में दर्ज हुए हैं। पहला लेख भेजते समय पण्डित लेखराम जी लाहौर में थे और दूसरा लेख

उन्होंने मुजफ्फरगढ़ आर्यसमाज से भेजा था। २३ जुलाई १८९२ के प्रचारक में बख्शी सोहनलाल (वर्तमान ऑनरेबल तथा रायबहादुर) के मांस-भक्षण-समर्थक लेखों का उत्तर भी आर्यपथिक का लाहौर से भेजा हुआ ही छपा है। फिर ३ और १० सितम्बर के प्रचारक में वृक्षों में जीव-सम्बन्धी विचारपूर्ण दो लेख पण्डित लेखराम के लहिथ्या (जिला डेरा इस्माइलखाँ) से भेजे हुए छपे हैं। मालूम होता है कि डेराजात के जिलों में धर्मप्रचार करने के पश्चात् पण्डित लेखराम सीवी (विलोचिस्तान) में स्वामी नित्यानन्द सरस्वती जी सहित पण्डित प्रीतम शर्मा पौराणिक के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए गए थे क्योंकि उनका वहाँ २२ जुलाई १८९२ को पहुँचना प्रचारक में छपा है।

प्रीतमदेव ने तो शास्त्रार्थ से पीछा छुड़ाना चाहा किन्तु उसी शाम को उससे १०० गज दूरी पर पण्डित लेखराम का सिंहनाद सुनाई देने लग गया। पण्डित प्रीतम शर्मा ने तो स्वामी नित्यानन्द जी के सामने आकर शास्त्रार्थ को क्वेटे के लिए मुलतवी किया और २४ जुलाई को चल दिया। परन्तु पण्डित लेखराम जी चार-पाँच दिनों तक स्वामी नित्यानन्द जी के साथ सीवी में ही व्याख्यान देते रहे। फिर क्वेटे से होते हुए ११ सितम्बर को कसूर (जि० लाहौर) आर्यसमाज में जाकर एक व्याख्यान दिया। २८, २९ सितम्बर को हम पण्डित लेखराम को अमृतसर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित पाते हैं। अक्टूबर मास के आरम्भ में पण्डित लेखराम जी जालन्धर पहुँचे। उन दिनों छावनी में जाटों का रिसाला नम्बर १४ था जिसका अधिक भाग आर्यसमाजी था। पण्डित लेखराम जी का एक व्याख्यान सदर बाजार में हुआ और फिर दो व्याख्यान चौदहवें रिसाले में हुए। वह दृश्य भूलने योग्य नहीं, क्योंकि मैंने भी आर्यपथिक के साथ-साथ वहीं व्याख्यान दिये थे। रिसाले का अपना बड़ा शामियाना लगाकर मण्डप खूब सजाया गया। छावनी के तीन-चार सौ श्रोताओं के मध्य चार-पाँच सौ सवार बर्दी पहनकर अपने सरदारों सहित उपस्थित रहते थे। अंग्रेज आफिसर भी दोनों दिन व्याख्यानों में आते रहे और व्याख्यान सुनकर बड़े प्रसन्न होते रहे।

जालन्धर से पण्डित लेखराम पोठोहार (पंजाब प्रान्त) में प्रचार के लिए गए। १६ अक्टूबर को उनका व्याख्यान आर्यसमाज भवन (जिला जेहलम) में होना समाचारपत्रों में छपा है।

इसके पश्चात् पता लगता है कि ऋषि दयानन्द के जन्म-स्थान की तलाश में पण्डित लेखराम फिर राजपूताने की ओर चल दिये। बहुत-से विश्वस्त पुरुषों से पता लगा कि स्वामी जी का जन्म-स्थान मोरवी राज में है, इसलिए अजमेर से आर्यपथिक अहमदाबाद को चल दिये। मैं बतला चुका हूँ कि बाबू रामविलास शारदा जी पर आर्यपथिक का बड़ा विश्वास था, इसलिए काठियावाड़ से उन्होंने के नाम पत्र लिखते रहे। उस समय के लिखे हुए तीन पोस्टकार्ड मुझे मिले हैं,

पहला ३० अक्टूबर १८६२ को मोरवी से भेजा हुआ है। उसमें बाँकानेर के मार्ग से मोरवी पहुँचने का हाल लिखकर अपनी डाक महाशय काशीराम दुबे एम० ए०, हेडमास्टर मोरवी हाईस्कूल द्वारा मँगाई है और साथ ही याचना की है कि पण्ड्या मोहनलालादि से, स्वामी दयानन्द महाराज के जन्म-स्थान के विषय में पूछकर जो कुछ पता लग सके जाननेवालों से लिखवा भेजें।

दूसरा पोस्टकार्ड १५ नवम्बर को मोरवी की डाक में डाला गया। इसका अनुवाद यह है—“एक पत्र आपका, एक बनवारीलाल जी का, एक श्रीस्वामी आत्मानन्द जी महाराज का, एक मास्टर वजीरचन्द्र जी का पहुँचकर समाचार ज्ञात हुए। टिनकारा में मैंने (ऋषि दयानन्द जी के जन्म-स्थान की) बहुत ढूँढ की, पता न मिला।^१ लोग मोरवी खास का बहुत खयाल करते हैं। अब वहाँ अन्वेषण कर रहा हूँ। १४ वा १५ ग्रामों में ढूँढ चुका हूँ।……मुझे १०, ११, १२ (नवम्बर १८६२) को ज्वर हुआ, बड़े जोर से; परन्तु अब सर्वथा नीरोग हूँ।……”

“पण्ड्या जी का कोई पत्र नहीं आया। वेद भाष्य-भूमिका के विषय में मैंने एक पत्र श्यामसुन्दर जी को लिखा था, फिर आप भी (उनको) स्मरण करावें। जब से आया हूँ कोई (ग्रंथ) सद्धर्मप्रचारक पत्र (का) नहीं आया। यदि हो सके तो चार (पिछले) ग्रंथ भेज दें……इस ओर छुआछात का बड़ा भगड़ा और ज्वर का जोर है; आर्यसमाज से लोग सर्वथा अभिन्न हैं……” तीसरा कार्ड ६ दिसम्बर को राजकोट से चला। इसमें लिखा है—“मैं २ दिसम्बर, १८६२ से राजकोट में आया था। यहाँ आठ दिन रहा। यहाँ का हाल मालूम किया, परन्तु कोई हाल स्वामी जी की जन्म-भूमि के सम्बन्ध में न मिला। आज फिर बाँकानेर जाता हूँ और कई दिन वहाँ रहूँगा।……बाँकानेर प्रान्त के विषय में ही लोगों को सन्देह है कि शायद स्वामी उसी प्रान्त के हों। दूसरे मोरवी और बाँकानेर (एक-दूसरे से) बहुत समीप हैं।……यहाँ पहले आर्यसमाज था, परन्तु अब चिरकाल से दूर हुआ है। कोई भी आर्यपुरुष यहाँ नहीं है। लोगों से बातचीत होती रहती है; उपदेशकों की बहुत जरूरत है।”

पिछले दो कार्डों में एक और परिवर्तन देखा जाता है। जहाँ पहले पत्र और लिफाफा दोनों फारसी अक्षरों में होते थे वहाँ इनमें लिफाफा देवनागरी-अक्षरों में लिखा हुआ है और कुछ काल के पश्चात् देखा जाता है कि संस्कृत वा आर्य-भाषा जाननेवालों के नाम आर्यपथिक के पत्र आर्य भाषा में ही जाने लग गए थे।

इसी वर्ष “*क्रिश्चियन मतदर्पण*” मेरठ के विद्यादर्पण प्रेस में छपकर तैयार

१. अन्ततः पं० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने स्व-अन्वेषण से टंकारा को ही स्वामी दयानन्द का जन्म-स्थान निर्धारित किया।

हुआ जिसकी समालोचना १२ नवम्बर १८९२ के 'सद्धर्म प्रचारक' में छपी है।

सन् १८९२ ई० के आरम्भ में ही पण्डित लेखराम ने स्वामी दयानन्द के जन्म-स्थान के अन्वेषण का काम समाप्त कर लिया था। यद्यपि इस समय 'टिनकारा' के समीप ही जन्म-स्थान का नया निश्चय नये आन्दोलन कर तो रहे हैं, तथापि आर्यपथिक ने जो निश्चय करना था उसे दृढ़ कर लिया और अजमेर लौटकर अन्तिम व्याख्यान दे कुछ और आन्दोलन करते हुए आगरे में पहुँचे। वहाँ २५ फरवरी से १ मार्च सन् १८९३ ई० तक स्थानीय आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर तथा मित्र-सभा में उनके व्याख्यान होते रहे। आगरा आर्यसमाज के उत्सव में धर्म-चर्चा के समय आर्यपथिक ने ऐसे सन्तोषजनक उत्तर दिये कि प्रश्न-कर्ताओं को भी मानना पड़ा कि उनकी तसल्ली हो गई है।

आगरा से मालूम होता है कि पण्डित लेखराम जी फिर राजपूताने की ओर अपने पुरुषार्थ का फल प्राप्त करने अर्थात् ऋषि-जीवन के अन्वेषण का सारांश निश्चय करने के लिए चले गए क्योंकि २५, २६ मार्च १८९३ को उन्होंने जयपुर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर दो बड़े ही जनप्रिय व्याख्यान दिये।

इस समय पंजाब में घरू-युद्ध की अग्नि बड़े वेग से भड़क उठी थी और जिस आर्य प्रतिनिधि सभा और आर्यसमाजों की संस्था के साथ पण्डित लेखराम आर्य-पथिक आर्यसमाजों में नाम लिखाने के दिन से काम करते आए, उसकी अवस्था बड़ी ड़ाँवाडोल हो चली थी। यह निश्चय करना कि वास्तविक अपराध किस दल का था, और इस बात की मीमांसा करना कि द्वेषाग्नि का पहला पत्नीता किसने छोड़ा, इस समय अनावश्यक है। इस विषय के पाप-पुण्य का ठीक गलों में मढ़ना उस समय होगा, जब किसी निष्पक्ष लेखनी से आर्यसमाज का इतिहास लिखा जाएगा, परन्तु यहाँ केवल इतना बतलाना है कि घरू-युद्ध के कारण एक ओर तो सर्वसाधारण आर्यजनता का समूह और संस्था का बल था और दूसरी ओर यद्यपि जनसंख्या बहुत कम थी तथापि धन-बल, राज-बल तथा नीति-बल अधिक था। सम्मति-भेद के सब कारणों में से उस समय भक्ष्याभक्ष्य का प्रश्न बहुत-कुछ आगे बढ़ा हुआ था। स्त्रियों को उच्च शिक्षा देने का भी यद्यपि विरोध होता था, वैदिक साहित्य की शिक्षा की मात्रा पर भी यद्यपि मतभेद था, तथापि मांसभक्षण वेद-विरुद्ध पाप है वा नहीं, इस विषय पर बड़ा भारी युद्ध था।

ऐसी विपत्ति के समय में पण्डित लेखराम की पंजाब में बड़ी भारी आवश्यकता प्रतीत हुई। प्रबल सांसारिक नीति का मुकाबिला ढिलमुल विश्वासी केवल शान्ति का पाठ करनेवाले स्वार्थी कैसे कर सकते ? जिस प्रकार राजर्षि गोविन्द-सिंह महाराज अपने विश्वासपात्र खालसों के विषय में कह सकते थे कि—'सवा

लाख से एक लड़ाऊँ' और जिस प्रकार अकेले नैपोलियन की रण-भूमि में उपस्थिति एक लाख सेना के तुल्य समझी जाती थी, उसी प्रकार मानो ब्रह्मर्षि दयानन्द का आत्मा अदृश्य वाणी द्वारा आर्यजनता से कह रहा था कि आर्यसमाज की परिधि में यदि सर्व प्रलोभनों से वचकर कोई धर्म की सेवा कर सकता है तो वह लेखराम है। धन, मान, प्रतिष्ठा, प्रशंसा के वशीभूत होकर कई प्रचारकों तथा प्रतिष्ठित पुरुषों को गिरते देख आर्य प्रतिनिधि सभा के सामयिक प्रधान ने आर्यपथिक पण्डित लेखराम को पंजाब में बुला लिया।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान^१ का निवास-स्थान जालन्धर शहर था, इसलिए राजपूताने से पण्डित लेखराम सीधे जालन्धर नगर में पधारे। १८ एप्रिल को स्थानीय आर्य-मन्दिर में ऋषि दयानन्द के जीवन पर व्याख्यान दिया और इस व्याख्यान में ही पहली बार बतलाया कि आर्यसमाज के प्रवर्तक के गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती का जन्म-स्थान कर्तारपुर (जिला जालन्धर) के समीप एक ग्राम में है।^२ इसी समाचार को २१ एप्रिल १८९३ के प्रचारक में जतलाकर मैंने लिखा था, "सचमुच एक महात्मा का स्वदेशी होना एक गौरव की बात है परन्तु जालन्धरियों को भली प्रकार याद रखना चाहिए कि यदि वे अपने-आपको स्वामी विरजानन्द के स्वदेशी सिद्ध करना चाहते हैं तो उनको शम और दम की दृढ़ शिक्षा लेना होगी।"

उसी समय आर्यपथिक पण्डित लेखराम ने, प्रसिद्ध योगराज गूगल के बनाने-वाले राय मूलराज बहादुर उप-प्रधान परोपकारिणी सभा से, सत्यार्थप्रकाश के उर्दू अनुवाद की आज्ञा माँगी थी, किन्तु मांसभक्षण के विरोधी पण्डित लेखराम जी की, इस विषय में, अकृतकार्यता पर बड़ा शोक है, क्योंकि यदि उक्त पण्डितजी सत्यार्थप्रकाश का अनुवाद उर्दू में कर जाते तो जो अशुद्धियाँ अब आर्यसमाजियों को निरर्थक शास्त्रार्थ में फँसाती हैं उनसे वह अनुवाद विमुक्त होता।

२८ एप्रिल, १८९३ के प्रचारक से, "आर्यसमाज की जरूरत" पर एक लेखमाला आर्यपथिक की ओर से आरम्भ हुई है। इस लेखमाला में ऐतिहासिक दृष्टि से आर्यसमाज की आवश्यकता बतलाई गई है।

जालन्धर से लाहौर होते हुए पण्डित लेखराम जेहलम आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए और शंकासमाधान में भाग लेने के अतिरिक्त उन्होंने वैदिक धर्म की श्रेष्ठता पर एक सारगर्भित व्याख्यान दिया। उससे पहले पण्डित लेखराम औरंगाबाद और मियानी काला में व्याख्यान दे चुके थे।

१. इस ग्रन्थ के लेखक लाला मुंशीराम ही उस समय इस सभा के प्रधान थे।

—सम्पादक

२. इस ग्राम का नाम गंगापुर है।

जेहलम से छुट्टी लेकर पण्डित लेखराम अपने निवासस्थान कहुटा में पहुँचे। वहाँ एक मास तक रहे, परन्तु वहाँ से भी लेख बराबर समाचारपत्रों में (विशेषतः प्रचारक में) भेजते रहे। उसी स्थान में उनके पास दीवान टेकचन्द्र (वर्तमान कमिश्नर) का पत्र इंग्लैण्ड से आया था। उसपर जो नोट आर्य-मुसाफिर ने कहुटे से लिखकर भेजा था वह जतलाता है कि आर्योपदेशक का आदर्श वह क्या समझते थे। पण्डित लेखराम लिखते हैं—“विविध भाषाओं में सच्चे धर्म की पुस्तकों का अभाव, विविध भाषाओं द्वारा आर्य-धर्म के उपदेश करनेवालों की कमी, देशान्तरों में आर्यसमाज का अस्तित्व अभाव के बराबर, धर्म पर जान न्यूछावर करनेवालों की आवश्यकता में प्रति सैकड़ा एक सौ की कमी और उसपर घर की फूट—वाहि माँ ! वाहि माँ ! प्यारे भाइयो ! विचारो और समझो ! (अंग्रेज) लोग सिविल-सर्विस पास करके जब देखते हैं कि धर्म के प्रचार की जरूरत है तो भट उससे अलग हो धर्म के उपदेशक बनने के लिए प्रार्थनाएँ करते हैं, फिर ईश्वर जाने स्वीकार हो वा न। इधर हमारे यहाँ की हालत वर्णन करने योग्य नहीं है...हमारे उपदेशकों में, थोड़े विद्वानों के अतिरिक्त, कई ऐसे भी हैं जो भोजनभट्टों की सूची में जाने योग्य हैं। क्षमा कीजिए, मैं या अन्य कोई समाजों को भली प्रकार जाननेवाला उन्हें उपदेशक नहीं मानता, क्योंकि वे तो खाकियों में खाकी, उदासियों में उदासी, निर्मलों में निर्मल और संन्यासियों में स्वामी।”

‘आर्यसमाज की जरूरत’ का शीर्षक देकर जो लेखमाला पण्डित लेखराम ने इन दिनों सद्धर्मप्रचारक में छपवाई थी, उसमें कहते हैं—“मई सन् १८८१ में जब लेखक (पं० लेखराम) ऋषि दयानन्द की सेवा में अजमेर उपस्थित हुआ, तब उन्होंने (ऋषि दयानन्द) कहा था कि आर्यसमाज की ओर से एक अंग्रेजी मासिक वा समाचारपत्र निकालना चाहिए, जिसमें वेदों के मन्त्रों का अनुवाद देने के अतिरिक्त सार्वजनिक लाभ की बातें भी दर्ज हों।”

गृहस्थाश्रम में प्रवेश

वैशाख सं० १९५० विक्रमी के आरम्भ में पण्डित लेखराम पूरे ३५ वर्ष के हो चुके थे। उसी वर्ष के ज्येष्ठ मास में छुट्टी लेकर अपने निवास-स्थान ग्राम कहुटा में गए और अपनी आयु के ३६वें वर्ष के आरम्भ में मरी पर्वतान्तर्गत भन्त ग्राम-निवासिनी कुमारी लक्ष्मी देवी के साथ उनका विवाह संस्कार हुआ। ऋषि-आज्ञा को शिरोधार्य समझते हुए पण्डित लेखराम ने विवाह तो किया परन्तु जहाँ तक उनसे हो सका वसु^१ ब्रह्मचारी पद से ऊपर उठने का प्रयत्न करते रहे।

१. ऋषि दयानन्द की सम्मति में प्रथम कोटि का ब्रह्मचारी वसु कहलाता है।

—सम्पादक

ऐसा ज्ञात होता है कि पौराणिक पूजादि तो कहाँ, साधारण जातीय रिवाजों की जंजीरों को भी पण्डित लेखराम ने इस विवाह पर तोड़ डाला था। हमारे चरित्र-नायक के चचा श्री गण्डाराम जी लिखते हैं कि पण्डित लेखराम ने अपने विवाह पर पंजाब के रिवाजानुसार तम्बोल इत्यादि नहीं लिया था।

मुझे पण्डित लेखराम बतलाया करते थे कि विवाह होते ही उन्होंने अपनी धर्मपत्नी को पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। देवी लक्ष्मी की अपने पति में अनन्य भक्ति थी और इसलिए वह उन्हें प्रसन्न करने का सदा प्रयत्न किया करतीं।

विवाह के पश्चात् पण्डित लेखराम कुछ दिनों और अपने ग्राम में रहकर अपनी धर्मपत्नी को धार्मिक शिक्षा देना चाहते थे परन्तु जब उस समय के धर्म-युद्ध में सहायता की आवश्यकता होने पर मैंने उन्हें बुलाया तो गृहस्थ के सर्व विचारों को शिथिल करके वह तत्काल ही मेरे पास आ पहुँचे।

जोधपुर में मांस का झगड़ा और आर्यपथिक का आक्रमण

लाहौर में जो मांस-भक्षण-विषयक झगड़ा चला था उसको बहुत पुष्टि जोधपुर से मिली थी। जोधपुर राज के मुख्य प्रबन्धक तीन पीढ़ियों से अब तक महाराज मेजर जनरल सर प्रतापसिंह चले आते हैं। (इस समय उनका देहान्त हो चुका है)^१ महाराज प्रतापसिंह थे तो ऋषि दयानन्द और वैदिक धर्म के दृढ़ भक्त, परन्तु उनके मन में यह बात बैठ गई थी कि मांस-भक्षण के बिना राजपूत जाति की वीरता स्थिर नहीं रह सकती। लाहौर में आर्यसमाज के दो दल हो जाने के पश्चात् स्वामी प्रकाशानन्द मांस-दल की ओर से जोधपुर पहुँचे। वहाँ उन्होंने यह लीला रची कि समाचारपत्रों के सम्पादकों तथा धर्मोपदेशकों से मांस-भक्षण के समर्थन में व्यवस्था दिलायी जावे। इसी लीला की पुष्टि में 'आर्य-गजट' तथा 'भारत सुधार' नामी मांस-भक्षण का समर्थन करनेवाले समाचारपत्रों के सम्पादकों को पारितोषिक मिले। एक-दो प्रसिद्ध आर्यपुरुषों ने भी महाराजा प्रतापसिंह की हाँ में हाँ मिलाकर 'रूप्योऽसौ भगवान् स्वयम्' के साक्षात् दर्शन किये। कुछ आर्यसमाजी पण्डितों को भी भूखी दक्षिणा बाँटी गई। तब सोचा गया कि कोई बड़ी चोट लगानी चाहिए। उस समय पण्डित भीमसेन ऋषि दयानन्द के निज शिष्य समझे जाते थे, और मेरठ के पण्डित गंगाप्रसाद एम० ए० स्वर्गवासी पण्डित गुरुदत्त के पीछे उनके सदृश्य विद्वान् माने गए थे। इन दोनों महानुभावों को महाराजा साहब की ओर से निमन्त्रण गया। पण्डित भीमसेन फिसलनेवाले प्रसिद्ध थे इसलिए उनको ठीक अवस्था में रखने के लिए वीर पथिक को भेजा गया।

पण्डित भीमसेन और पण्डित गंगाप्रसाद एम० ए० दोनों २ अगस्त १८६३ ई० के प्रातः जोधपुर पहुँचे। पण्डित गंगाप्रसाद को बहुत-से लालच दिये गए

-
१. महाराजा प्रतापसिंह के विषय में अधिक जानकारी के लिए द्रष्टव्य—'ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी'।
 २. आर्य जगत् में पण्डित गंगाप्रसाद जज के नाम से जाने जाते हैं।—सम्पादक

परन्तु उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि धन व प्रतिष्ठा का लालच उन्हें धर्म से च्युत नहीं कर सकता। ४ अगस्त को पण्डित भीमसेन जी की पहली भेंट महाराजा प्रतापसिंह से हुई। पण्डित भीमसेन ने यह तो कहा कि वेद में मांसभक्षण का प्रत्यक्ष खण्डन है परन्तु यह मानकर कि हिंसक पशुओं का वध पाप नहीं, उन्होंने दबे दाँतों ऐसे पशुओं के मांस के भक्षण का विधान कर दिया।

५ अगस्त को प्रातःकाल ही पण्डित लेखराम जी जोधपुर में पहुँचे और सारा हाल सुना। वीर आर्यपथिक ने पण्डित भीमसेन की खूब खबर ली, क्योंकि स्वामी प्रकाशानन्द ने झूठा समाचार फैलाया था कि पण्डित भीमसेन मांसभक्षण का समर्थन कर आए हैं। बेचारा भीमसेन बहुत गिड़गिड़ाया, परन्तु धर्मवीर बिना ठीक प्रतिज्ञा कराए कब छोड़ते थे ! “ईश्वर जानता है अगर तूने महाराजा के पास स्पष्ट जाकर न कहा कि वेद में मांसभक्षण का सर्वथा निषेध है तो तुझे किसी धार्मिक संस्था में पैर रखने के काबिल नहीं छोड़ूँगा।” पण्डित भीमसेन दूसरे दिन ही विदा होने गये और बिना पूछे ही महाराजा प्रतापसिंह से स्पष्ट शब्दों में कह दिया—“मांसभक्षण पाप है, और वेदों में हानिकारक पशुओं को दण्ड देने और आर्थिक हानि पहुँचाये तो मार डालने की भी आज्ञा है, परन्तु मांस उनका भी अभक्ष्य ही है। और मैंने जो कहा था कि उनके मांस खाने में अधिक दोष नहीं है, (सो) उसका आशय यह नहीं लिया जा सकता कि हानिकारक पशुओं का मांस खाना चाहिए, वा उससे कोई दोष नहीं है। मेरा तात्पर्य यह था कि ऐसे पशुओं के मारने में संसार की कुछ हानि नहीं है और उपकारी पशुओं के मांस खाने की अपेक्षा कम दोष है, परन्तु दोष अवश्य है। इसलिए हानिकारक पशुओं का मांस भी नहीं खाना चाहिए, वह भी सर्वथा अभक्ष्य है।” आर्यपथिक की धमकी ने इतना असर किया कि पण्डित भीमसेन के लिए जो (१०००) भेंट स्वीकार हुआ था वह आधा ही रह गया और पण्डित भीमसेन की आर्यपथिक पर इतनी श्रद्धा बढ़ गई कि उन्होंने जोधपुर से लौटते ही पण्डित लेखराम की ‘तारीख-ए-दुनिया’ का आर्यभाषा में अनुवाद करके ‘ऐतिहासिक निरीक्षण’ नाम से मुद्रित कर दिया और शायद इस प्रकार जोधपुर के (५००) की कमी पूरी की।^१

जोधपुर में मांसप्रचारकों का भण्डा फोड़कर कुछ दिन ऋषि-जीवन-सम्बन्धी मसाला वहीं एकत्र करते रहे, परन्तु विरोधी उनके आक्रमण से ऐसे तंग आ गए थे कि उन्हें अधिक दिनों तक जोधपुर ठहरने में अपनी बड़ी हानि समझते थे। जहाँ कहीं आर्यपथिक आन्दोलन करने जाते, महाराजा प्रतापसिंह का गुप्तचर साथ जाता। पहले हल्ले में जो कुछ घटनाएँ लिखी गईं वे तो ठीक रहीं, परन्तु उसके

१. विस्तार के लिए द्रष्टव्य—‘पण्डित भीमसेन शर्मा का मत-परिवर्तन’—वेद-वाणी (जनवरी, फरवरी १९६८) में प्रकाशित लेख।

पश्चात् लोगों ने डर के मारे ऋषि-जीवन-सम्बन्धी घटनाएँ ही बतलानी बन्द कर दीं। तब पण्डित लेखराम जी फिर पंजाब की ओर लौट आए।

जो पत्र जोधपुर से पण्डित लेखराम जी ने लिखे थे, उनसे ज्ञात होता है कि प्रकाशनन्द जी के घोर विरोध पर भी आर्यपथिक अपने काम पर डटे रहे और अन्त में सारा आन्दोलन करके ही लौटे।

इन्हीं दिनों अमेरिका के चिकागो नगर में प्रदर्शनी की तैयारियाँ हो रही थीं और आर्यसमाजों की ओर से कोई विशेष प्रतिनिधि भेजने का विचार छिड़ रहा था। जोधपुर में ही रावराजा तेजसिंह से आर्यपथिक को पता लगा कि भास्करानन्द (जो महाराजा प्रतापसिंह का भेजा हुआ उन दिनों अमेरिका में था) चाहता है कि आर्यसमाज उसे अपना प्रतिनिधि चुन ले। पण्डित लेखराम जानते थे कि वह धूर्त है, अतएव उन्होंने आर्य जनता को सचेत कर दिया। दूसरी ओर साधु शुगनचन्द भी आशागतों में थे और अपनी वक्तृता के नमूने आर्य पब्लिक को दिखाते फिरते थे। पण्डित लेखराम ने स्वयं तैयार करके एक अपील बाबू राम-विलास शारदा जी को दी जो उन्होंने 'आर्य पब्लिक' में मुद्रित कर दी। इस अपील में २०००) तो प्रचारक के मार्ग-व्ययादि के लिए माँगा गया था और सुयोग्य अंग्रेजी के विद्वान् की सेवा माँगी थी। यह दूसरी बात है कि कोई भी आर्य पुरुष जाने को तैयार न हुआ, परन्तु आर्यपथिक के धर्मानुराग में इससे कोई क्षति नहीं हुई। यदि स्वयं अंग्रेजी पढ़े होते तो अवश्य स्टीमर में बैठकर चिकागो चल देते।

जोधपुर से लौटकर पंजाब में स्थान-स्थान से पण्डित लेखराम की माँग आने लगी। जहाँ कहीं भी विरोधियों की ओर से आर्यसमाज पर आक्रमण होता, रक्षा के लिए आर्यपथिक को कष्ट देना पड़ता।

पंजाब में लौटते ही पहला धावा पण्डित लेखराम का श्री गोविन्दपुर (जिला गुरुदासपुर) पर हुआ। २३, २४ सितम्बर सन् १८९३ को बराबर वार्षिकोत्सव मनाया जाता रहा जिसमें पण्डित लेखराम का सर्वोत्तम व्याख्यान हुआ। परन्तु आर्यपथिक के उच्च स्वभाव का इससे पता लगता है कि उत्सव का हाल प्रचारक में भेजते हुए जहाँ अन्य सब उपदेशकों के व्याख्यानों की बड़ी प्रशंसा की है, वहाँ अपने व्याख्यान का साधारण वृत्तान्त कालम की ढाई पंक्तियों में समाप्त कर दिया है। मुझे आर्यपथिक के पत्रव्यवहार से भी प्रमाण मिले हैं और मैं स्वयं भी जानता हूँ कि अन्य बहुत-से उपदेशकों की शैली के विरुद्ध पण्डित लेखराम का सदैव यह प्रयत्न हुआ करता था कि आर्यसमाज की वेदी से जो भी उपदेशक व्याख्यान देने खड़ा हो, वह सर्वसाधारण में कृत-कार्य होकर ही बैठे।

श्री गोविन्दपुर से लौटकर ऋषि-जीवन का वृत्तान्त एकत्र करते हुए पण्डित लेखराम मेरे पास जालन्धर पहुँचे और मुझे पेशावर आर्यसमाज के उत्सव पर ले जाने के लिए आग्रह किया। मुझे इन्कार कब हो सकता था !

पेशावर की इस बार की यात्रा मुझे केवल इसीलिए स्मरणीय नहीं है कि मैं पहलेपहल अटक से पार चला था, प्रत्युत इसलिए भी कि पण्डित लेखराम के कई पक्के विचार मुझे इसी यात्रा में मालूम हुए। पण्डित लेखराम पलाण्डु (पियाज) के बड़े पक्षपाती थे और समझते थे कि इसके सेवन से आर्य गृहस्थी को वंचित रखना अपनी जाति की शारीरिक अवस्था के साथ शत्रुता करनी है। मुझसे पहले इस विषय पर बातचीत हुई। मेरे मनु का प्रमाण देने पर आपने कहा—“प्रथम तो पलाण्डु के अर्थ प्याज हैं ही नहीं; और यदि मान भी लो तो यह श्लोक ही प्रक्षिप्त है।”

इस विषय पर आर्यपथिक ने नोट-बुक में ‘रिसाला अंजुमन जिराअत बिजनीर’ से नीचे का उदाहरण दिया है—‘पियाज की तासीर इसके खाने से मोटा होता है, रक्त में प्रवाह आता है, तरकारियाँ इससे मजेदार होती हैं, लहसुन के बराबर गुण हैं। मगर बलगम बढ़ाता है। जुकाम के लिए गुणकारी है। श्वेत प्याज घर में रखने से साँप वहाँ पर नहीं आता।”

फिर ब्रह्मावर्त की सीमा पर बातचीत छिड़ी। पण्डित लेखराम जी ने पौराणिकों की मानी हुई सरस्वती का खण्डन करके बतलाया कि सरस्वती का तात्पर्य ‘ब्रह्मपुत्र’ नदी का है जो भारत की पूर्वी सीमा पर होती हुई समुद्र में जा मिलती है। आपने कहा—“सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री कही जाती है, पुत्र का स्त्रीलिंग हुआ पुत्रा, पस ‘ब्रह्मपुत्रा’^१ और सरस्वती पर्यायवाची शब्द हैं। सरस्वती कोई ऐसी नदी न थी जो मध्यभारत में कहीं छिप गई हो।” इसके पश्चात् आपने दृषदवती से ‘अटक’ महानदी का तात्पर्य लिया। यहाँ पर याद रखना चाहिए कि यदि सरस्वती पौराणिक कथा के अनुसार मानी जावे और ‘दृषदवती’ से ब्रह्मपुत्रा नदी समझे तो पण्डित जी का निवास-स्थान कहुटा ब्रह्मावर्त में सिद्ध नहीं होता। अब दूसरे प्रभात की घटना समझ में आ जाएगी।

बातचीत करते-करते हम दोनों सो गए। प्रातः उठकर मैं अपने विचार में निमग्न था कि रेल अटक के पुल के पास पहुँची और पण्डित लेखराम ने मेरी बाँह पकड़कर कहा—“लाला जी ! उठिए, उठिए ! देखिए, क्या इससे बढ़कर कोई पत्थरोंवाली नदी हो सकती है ?” दृश्य बड़ा गम्भीर तथा उच्च था। मैं इस अपूर्व चित्तात्कर्षक दृश्य की ओर टकटकी लगाए खड़ा था कि आर्यपथिक के शब्दों ने झटका देकर जगा दिया—“लाला जी देखिए—यह पत्थरोंवाली दृषदवती नदी है, सरस्वती ब्रह्मपुत्रा है और इन दोनों देवनों के मध्य का स्थान ब्रह्मावर्त है।” मैंने उत्तर में कहा—“पण्डित जी, मैंने आज मान लिया कि ‘कहुटा’ ग्राम

१. वस्तुतः भारत के पूर्व भाग में बहनेवाली नदी का नाम ब्रह्मपुत्र है, ब्रह्मपुत्रा नहीं।
—सम्पादक

ब्रह्मावर्त का ही एक भाग है।” पण्डित जी के मुख पर विशाल मुस्कराहट के चिह्न दिखाई देने लगे और हँसते हुए बोले—“ईश्वर जानता है, आप मजाक में बात उड़ा देते हैं। मेरा मतलब तो इल्मी तहक्रीकात से था।”

व्याख्यानादि तो वार्षिकोत्सव में हुए ही, परन्तु धर्म-चर्चा के समय बड़ा आनन्द आया। यह बात प्रसिद्ध थी कि पण्डित लेखराम वृक्षों में जीवात्मा को विद्यमान नहीं मानते थे। एक मांस-प्रचारक व्यक्ति ने यह प्रश्न उठाकर कि वृक्षों में जीवात्मा है या नहीं, उत्तर पण्डित लेखराम से माँगा; तात्पर्य इस प्रश्न से यह था कि ‘वृक्षों में जीव’ विषय में मतभेद रखता हुआ एक पुरुष आर्यसमाजी रह सकता है तो मांस-भक्षण का प्रचार करने पर किसी को क्यों आर्यसमाज से अलग किया जावे? मैं यह कहकर कि प्रश्न आर्यसमाज पर होना चाहिए, न कि विशेष विषय पर, उत्तर के लिए उठा ही था कि पण्डित लेखराम स्वयं उत्तम उत्तर देने के लिए खड़े हो गए और निम्नलिखित मनोरंजक प्रश्नोत्तर हुए—

प्रश्नकर्त्ता—“क्या आप वृक्षों में जीव मानते हैं?”

उत्तर—“क्या एक जीव? एक वृक्ष में एक क्या, अनेक जीव पाए जाते हैं और ऐसा ही मैं मानता हूँ।”

प्रश्न—“मैंने तो सुना था कि आप वृक्षों में जीव नहीं मानते?”

उत्तर—“तुम अजब भोले आदमी हो! अब तो मैं तुम्हारे सामने हूँ। सुनी-सुनाई बात पर बुद्धिमान् पुरुष विश्वास नहीं करते। कल्पना करो कि वृक्ष को जीवधारी मान लें तो ऐसी अवस्था में यह मानना पड़ेगा कि वृक्ष में जीव सुपुष्पावस्था में है। तब तुम्हारा बकरे आदि का मांस खाना क्या वृक्ष के फल खाने के समान होगा? भोले भाई, पशु-पक्षी का मांस बिना हिंसा के उपलब्ध नहीं होता, और वृक्ष को तुम्हारे फल तोड़ लेने से कुछ कष्ट ही नहीं प्रतीत होता।”

श्रोतागण को पता लग गया कि प्रश्न कुटिल भाव से किया गया है और प्रश्नकर्त्ता लज्जित होकर बैठ गया।

पण्डित लेखराम की हाजिरजवाबी उन्हें बहुधा अनावश्यक वादविवाद से बचा दिया करती थी। एक बार रेल की यात्रा में एक उदासी साधु का साथ हुआ। बातचीत चलने पर उसने स्वामी दयानन्द को साधु-निन्दक सिद्ध करने के लिए कहा—“दयानन्द जी ने गुरु नानक जी को दम्भी लिखा है और उनकी निन्दा की है। यह संन्यासियों का काम नहीं।” पण्डित लेखराम उदासी जो को बड़े प्रेम से समझाने लगे और कहा—“देखो, बाबा नानक जी के आशय की तो स्वामी जी ने प्रशंसा ही की है। हाँ, वेदों की कहीं-कहीं निन्दा उनसे सहन न हुई और संस्कृत न जानते हुए भी उसमें पग अड़ाते देखकर यह लिखा है कि दम्भ भी किया होगा।” पण्डित लेखराम ने बहुत-कुछ समझाना चाहा, परन्तु उस उदासी बाबा ने शोर मचा दिया और उनकी एक न सुनी। मेरे सिर में कुछ पीड़ा थी इसलिए मैं स्टेशन

आने पर दूसरे कमरे में चला गया। अगले स्टेशन के रास्ते में भी उदासी बाबा बहुत गरम रहे, परन्तु जब अगले स्टेशन पर रेल धीमी हुई तो उदासी जी दबे हुए-से प्रतीत हुए और पण्डित लेखराम तेज सुनाई दिये। मैं भी फिर उसी कमरे में चला गया तो विचित्र दृश्य देखा। उदासी तो कुछ शांति की याचना कर रहे हैं और पण्डित लेखराम उनको दबा रहे हैं। मालूम हुआ कि जब समझाने पर उदासी दबाए ही चला गया तो पण्डित लेखराम ने कड़ककर कहा—

“अच्छा, अगर बाबा नानक खुद कहते हैं कि मुझमें दम्भी है तो ?” उदासी कुछ आश्चर्यचकित-सा होकर बोला, “यह क्या ?” पण्डित लेखराम ने सिक्खों के ग्रन्थ से एक वाक्य पढ़ा जिसमें दो-तीन साधारण निर्बलताओं के साथ दम्भी शब्द भी था। अब तो उदासी बाबा कुछ ढीले हुए और जब मैं पहुँचा तो कह रहे थे—“यह तो कसर-नपसी है। इसका मतलब यह थोड़े ही है कि श्री महाराज दम्भी थे।” हाजिरजवाब लेखराम ने उत्तर में दस घृणित पापों के नाम ले-लेकर कहा—“यह सब पाप अपने में क्यों न बतलाए ? तुम बाबा नानक को मक्कार समझते हो; हम तो उन्हें ईश्वर के सच्चे भक्त समझते हैं। उन्होंने मेरे कहे हुए दुराचारों का नाम इसलिए नहीं लिया कि उनमें वे ऐव न थे। दो-तीन कम-जोरियाँ ही गरीब में थीं और उनसे बचने की प्रार्थना अपने मालिक से की। तुम चाहे अपने गुरु को मक्कार समझो, हम तो बाबा नानकदेव जी को सच्चा ईश्वर-भक्त समझते हैं।”

उदासी जी फिर कुछ गुनगुनाना चाहते थे परन्तु आर्यपथिक ने यह कहकर बातचीत समाप्त कर दी—“बस साहब ! मैं तुमसे बात करना भी पाप समझता हूँ। तुम गुरुनिन्दक हो।” और उदासी जी की वाणी पर ताला लग गया।

पेशावर के जलसे पर जाने से पहले पण्डित लेखराम मांस-भक्षण के विषय पर एक प्रामाणिक ग्रन्थ लिखवाकर छपवा गए थे जिसकी समालोचना ६ कार्तिक संवत् १९५० के ‘सद्धर्म प्रचारक’ में निकली थी। एक लघु पुस्तक का नाम था “आर्यसमाज में शान्ति फैलाने का उपाय और रामचन्द्र जी का सच्चा दर्शन।” वेद-शास्त्र के प्रमाणों से मांस-भक्षण का निषेध दिखलाते हुए स्वामी दयानन्द जी के मन्तव्य को उनके ग्रन्थों से स्पष्टतया दिखलाया और अन्तिम भाग में ‘रामचन्द्र का दर्शन’ नामी काव्य के कवि की इस कल्पना का (जो वह जन-साधारण में मौखिक फैलाते थे कि रामचन्द्र जी ने मांस खाया, ‘रामचन्द्र का सच्चा दर्शन’ लिखकर) प्रबल प्रमाणों तथा युक्तियों से खण्डन किया।

जिन सज्जनों को मांस का प्रचार अभीष्ट था और जो मांसभक्षण से ही राष्ट्र में जीवन फूँकना सम्भव समझते थे, वे प्रायः पण्डित लेखराम को ‘पेशावरी गुण्डा’ की उपाधि देते थे। यह इसलिए नहीं कि पण्डित लेखराम कुछ अधिक कटु चर्चन बोलते व बहुत तीखा व्यक्तिगत आक्रमण करते थे, प्रत्युत इसलिए कि जहाँ

औरों के कटाव 'व्यक्तिगत आक्रमण' कहकर टाले जा सकते थे, वहाँ आर्यपथिक की युक्तियों का युक्ति-युक्त उत्तर देना बड़ी टेढ़ी खीर थी। इसी लघु पुस्तक के प्रथम भाग में केवल प्रमाण दिये और उनका समर्थन युक्तियों से किया है। समाप्ति पर ग्रन्थ-कर्त्ता का केवल तीन पंक्तियों में निवेदन है—“पस, सब वेद के माननेवालों को योग्य है कि यथार्थ सत्यशास्त्र की रीत्यनुसार मद्य-मांसादि दुष्ट वस्तुओं का त्याग करके सदा उस भोजन का भोग करें जो रक्त-युक्त न हो और जिसके लिए हमें निरपराधी पशुओं के गले पर छुरी न चलानी पड़े, यथा ईश्वर की आज्ञा है।”

पेशावर से लौटने के पश्चात् हम पण्डित लेखराम को २८-२९ अक्टूबर रावलपिण्डी में और ३१ अक्टूबर १८९३ के दिन लाहौर में 'वर्तमान दशा और हमारे कर्त्तव्य' पर व्याख्यान देता पाते हैं। फिर नवम्बर के आरम्भ में उनका व्याख्यान जालन्धर आर्यसमाज में हुआ। शायद इसी सन् के सितम्बर मास में पण्डित लेखराम अपनी पत्नी को जालन्धर ले आए थे और इसलिए यही नगर उनका निवास-स्थान बन गया था।

जालन्धर में ही बैठकर जहाँ एक ओर पण्डित लेखराम ने ऋषि-जीवन की तैयारी का आरम्भ किया, वहाँ उन्हीं दिनों अपनी सबसे बड़ी पुस्तक 'सवृत-ए-तनासुख' नामी पुनर्जन्म को सिद्ध करने के लिए लिखकर पूर्ण कर ली और उसके छपाने का विज्ञापन भी 'सद्धर्म-प्रचारक' में दे दिया। इस पुस्तक पर जो परिश्रम करना पड़ा होगा उसका अनुमान वे सज्जन ही लगा सकते हैं जिन्होंने संसारभर के मतवादियों के आक्षेप इस सिद्धान्त पर पड़े हैं। बाहरवालों को तो एक सदा भ्रमण करनेवाले यात्री की लेखनी से ऐसा अपूर्व ग्रन्थ तैयार होते देखकर विस्मय-सा होता था, परन्तु मुझ-से व्यक्ति को जिसने आर्यपथिक को एक पल भी व्यर्थ गँवाते नहीं देखा था कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ।

इन दिनों आर्यसमाज में घरू-युद्ध की ज्वाला बड़े वेग से प्रज्वलित हो रही थी। लाहौर में आर्यसमाज के दो टुकड़े हो चुके थे और आर्य प्रतिनिधि सभा के वार्षिकाधिवेशन में भी शिक्षित दल की सभ्यता का चमत्कार दिखाई दे चुका था। परन्तु पण्डित लेखराम उस समय भी बाह्य विरोधियों के आक्रमणों से ही आर्य-समाज की रक्षा करने में लगे हुए थे। चारों ओर से मुहम्मदियों के आक्रमण रोकने के लिए आर्यपथिक की माँग आती थी; इसीलिए २७ कार्तिक १९५० के प्रचारक में मैंने लिखा था—“ज्ञात हुआ है कि महाराजा कृष्णप्रसाद जी पेशकार मन्त्री सेना विभाग (राज हैदराबाद दक्षिण) इस्लाम की ओर झुके हुए हैं और आर्य-पथिक की माँग हो रही है। परन्तु कुरानाचार्य जहाँ एक ओर महर्षि के जीवन-चरित्र की तैयारी में सन्नद्ध है वहाँ दूसरी ओर शरीर को खेद भी है। आखिर एक आदमी क्या-क्या कर सकता है ! ...”

पण्डित लेखराम को मैंने इन दिनों ऋषि-जीवन-वृत्तान्त की तैयारी में निरंतर लगा दिया था, परन्तु अपना नियत काम समाप्त करने पर उन्होंने जालन्धर के बाजारों में नित्य प्रचार करना आरम्भ कर दिया। जालन्धर में भी आर्यपथिक को बैठने कौन देता था ! इसी वर्ष (सन् १८९३ ई०) के दिसम्बर में लाहौर नगर इण्डियन नेशनल कांग्रेस का केन्द्र बन रहा था। राजनैतिकों के शिरोमणि दादा नौरोजी प्रधान निर्वाचित हुए थे। दूर-दूर से आर्य भाई भी आए थे। इस अवसर पर पण्डित लेखराम को भी व्याख्यानों के लिए लाहौर बुलाना पड़ा। फिर लाहौर से लौटते ही समाचार आया कि शाहाबाद (जिला अम्बाला) के पास एक ग्राम में कुछ हिन्दू मुहम्मदी मत ग्रहण करनेवाले हैं। पण्डित लेखराम की टांग में एक फोड़ा था जिससे वह तंग थे। मैंने उत्तर दिया—“पण्डित जी, ये लोग बड़े निर्दय हैं। समझते नहीं कि हर समय मनुष्य का स्वास्थ्य एक-सा नहीं रहता। आप इस विषय में कुछ न सोचें, मैं उत्तर दे दूंगा।”

पण्डित लेखराम मेरे कार्यालय के सामने वाटिका की दूसरी सीमावाले कमरे में काम किया करते थे; वहाँ चले गए। आध घण्टे के पश्चात् फिर मेरे पास आकर बैठ गए—“क्यों साहब ! किसको भेजने का खयाल है ?” मैंने उत्तर दिया—“पण्डित जी ! वे लोग बड़े बेपरवा हैं। इनको स्वयं भुगताना चाहिए, और क्या हो सकता है !” आर्यपथिक कुछ रुक-रुककर बोले—“वे गरीब क्या करेंगे ! कुछ तो इन्तजाम होना चाहिए।” मैंने उत्तर में कहा—“कहिए तो पण्डित लालमणि को भेज दूँ ?” पण्डित लेखराम मुस्कराकर बोले—“ईश्वर जानता है आपने मुझे कायल कर दिया; रात को रेल में ही चला जाऊँगा।”

पण्डित लेखराम जी की धर्मसेवा के भाव का यह एक ही दृष्टान्त नहीं है। मैंने यह एक नमूना पेश किया है।

शाहाबाद के पासवाले ग्राम में मुसलमान होनेवालों को बचाकर इस्माईल-लावाद में तीन व्याख्यान दिये जिनके प्रभाव से पीछे वहाँ आर्यसमाज स्थापित हो गया। फिर शाहाबाद, थानेश्वर और करनाल में व्याख्यान देकर जालन्धर लौट आए। शाहाबाद में आर्यसमाज का स्थापित होना भी इसी वार के प्रचार का फल था। इस धावे पर जाते हुए मैंने आर्यपथिक से प्रतिज्ञा की थी कि छुट्टी के दिनों में मैं भी उनकी सहायता के लिए पहुँचूँगा, परन्तु उन्होंने शाहाबाद पहुँचते ही मुझे लिख दिया कि मेरी कुछ आवश्यकता नहीं। पण्डित लेखराम किसी को भी अनावश्यक कष्ट नहीं देते थे और यह देखकर कि मेरी अनुपस्थिति में आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब का काम बिगड़ेगा, उन्होंने अकेले ही सब काम कर लिया।

ऊपर लिखित सब काम करते हुए भी पण्डित लेखराम को अन्ध-विश्वासों की पोल खोलने के लिए समयमिल जाता था। २० जनवरी सन् १८९४ ई० के ताजुल अखबार में एक समाचार निकला कि एक सैय्यद जलाली की कब्र खुदवाकर

टाउनहाल में मिलाने के कारण मुजफ्फरनगर का एक तहसीलदार अन्धा हो गया और जाईंट मजिस्ट्रेट पागल हो गए। पण्डित लेखराम ने समाचार पढ़ते ही अपने एक मित्र मुजफ्फरनगर के रईस से असल हाल पूछा जिनके पत्र से यह समाचार सर्वथा भूठा सिद्ध हुआ। उस पत्र-व्यवहार को पण्डित लेखराम ने २२ मार्च १९५० के 'सद्धर्म प्रचारक' में छपवा दिया।

फरवरी १८९४ में माण्डगुमरी आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर व्याख्यान देने के अतिरिक्त भंग और कमालिया आदि स्थानों में प्रचार करते हुए लाहौर पहुँचे; इसी मास के प्रचारक में एक लेखमाला आरम्भ हुई जिसे पण्डित लेखराम के धर्म पर बलिदान होने के पश्चात् 'तकजीव बुराहान अहमदिया' के दूसरे भाग में सम्मिलित किया गया था। इस लेखमाला में अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध किया गया है कि 'असकन्दरिया' (मिश्र प्रान्त) का प्रसिद्ध पुस्तकालय मुहम्मदी पक्षपात की ही भेंट चढ़ा था।

ऋषि-जीवन की तैयारी के साथ-साथ मौखिक धर्म-प्रचार का कार्य भी बराबर जारी रहने का प्रमाण समाचारपत्रों के अवलोकन से मिलता है। १४ मार्च तक श्री गोविन्दपुर तथा आसपास के ग्रामों में धर्म-प्रचार की धूम रही, शंका-समाधान खूब होता रहा। वहाँ से लौटकर कुरुक्षेत्र की भूमि में प्रचार के लिए पण्डित लेखराम मेरे साथ चल दिये।

जिस प्रकार चन्द्र-ग्रहण पर काशी में गंगास्नान का माहात्म्य है उसी प्रकार सूर्य-ग्रहण को कुरुक्षेत्र के तालाब में डुबकी लगाने से, पौराणिक मतावलम्बी, स्वर्ग-प्राप्ति की कल्पना करते हैं। ६ एप्रिल १८९४ को सूर्यग्रहण होनेवाला था, इस-लिए २९ मार्च को ही सरकारी हस्पताल के पास सड़क के किनारे पर साफ करके आर्यसमाज का प्रचारमण्डप खड़ा कर दिया गया और एप्रिल के आरम्भ से ही वैदिक धर्म के प्रचार का काम शुरू हो गया। इस प्रचार में शंका-समाधान का काम प्रायः पण्डित लेखराम जी ही करते रहे। 'धर्म की असलियत और उसका आन्दोलन' विषय पर जो व्याख्यान इस स्थान पर पण्डित लेखराम ने दिया वह बड़ा ही चित्ताकर्षक था। दूसरे व्याख्यान में आपने यह बतलाया कि आर्यसमाज ऋषियों की निन्दा नहीं करता बल्कि उनके सिद्धान्तों को फैलाता है। ६ एप्रिल को मेरे साथ पण्डित लेखराम करनाल चले आए जहाँ ७, ८ और ९ एप्रिल को आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में दो व्याख्यान देने के अतिरिक्त शंका-समाधान भी खूब किया। वार्षिकोत्सव के पश्चात् मैं तो चला आया परन्तु आर्यमुसाफिर एक मास तक करनाल में ही रहे, क्योंकि जिस टाँग के फोड़े के कारण मैं उन्हें शाहाबाद नहीं भेजना चाहता था वह फोड़ा इतस्ततः भ्रमण करते फिरने के कारण बहुत खराब हो गया था। इसी फोड़े के सम्बन्ध में एक मनोरंजक बात मुझे याद आई है। पण्डित जी ने कुछ सभासदों से पूछा—“किसी आर्य-डॉक्टर के पास मुझे ले चलो

तो फोड़ा दिखलाऊंगा।” एक अधिकारी ने किसी मुसलमान डॉक्टर का नाम लेकर कहा कि उसे बुलाकर दिखाएँगे। पण्डित जी ने फिर पूछा कि क्या कोई आर्य डॉक्टर नहीं है? लाला कर्ताराम ने कहा—“डॉक्टर तो कोई आर्यसमाज का सभासद नहीं। इलाज में आर्य-अनार्य-पना क्या घुसा है?” आर्यपथिक की आँखें लाल हो गईं और बोले—“खाक आर्यसमाज है! एक डॉक्टर को भी आर्य नहीं बना सकते।” मैंने हँसकर कहा कि जिस समाज का कोई डॉक्टर सभासद न हो तो क्या उसे आर्यसमाज ही न कहा जाए? आर्यपथिक ने कुछ गम्भीर होकर उत्तर दिया—“जिस आर्यसमाज ने डॉक्टरों, स्कूल के अध्यापकों और विद्यार्थियों को आर्य नहीं बनाया उसने क्या खाक काम किया? जड़ को सींचने से ही वृक्ष हरा होता है।” इस उत्तर ने मेरा अन्तःकरण तक लेखराम के पैरों में झुका दिया था।

इस एक मास के करनाल-निवास के समय की कुछ घटनाएँ लाला कर्ताराम जी ने लिखी हैं जिनका संक्षिप्त वृत्तान्त यहाँ देना शिक्षाप्रद होगा—“एक दिन एक पादरी साहब पण्डित जी से मिलने के लिए आर्यमन्दिर में आए। मेरे सामने उन्होंने वैदिक धर्म के विषय में कुछ प्रश्न किये जिनका उत्तर पण्डित लेखराम जी ने बड़े तन्म्र, मधुर शब्दों में दिया। इसके पश्चात् पण्डित जी ने क्रिश्चियन मत के विषय में कुछ बातें पूछीं जो पादरी साहब के बतलाने पर नोट कर लीं। पादरी साहब ने विदा होते समय पण्डित जी की योग्यता और शिष्टाचार की बहुत प्रशंसा की।

इन्हीं दिनों करनाल पोस्ट ऑफिस के महाशय गोपालसहाय के पुत्र उत्पन्न हुआ। ज्योतिषी ने व्यवस्था दी कि लड़का माता-पिता, भाइयों को मारकर रहेगा। माता-पिता ने उसके लिए दूसरे माता-पिता ढूँढने चाहे परन्तु ऐसी उत्तम ख्यातिवाले बालक को अंगीकार कौन करता? पण्डित लेखराम को जब पता लगा तो उन्होंने समझाकर महाशय गोपालसहाय को ऐसी अनुचित कार्यवाही से रोका। परिणाम यह हुआ कि न केवल सारा परिवार ही जीवित है प्रत्युत उस बालक के दो भाई और हो चुके हैं और पिता की वेतन-वृद्धि होती रही।

“पण्डित जी सन्ध्या-वन्दन में बड़े पक्के थे। नित्य शारीरिक व्यायाम भी करते थे। निकम्मे, खराब पके हुए भोजन से उन्हें घृणा थी। भोजन-छादन में सावधान रहते। एक बार मैंने कहा—“महाराज! आपको भोजन विषय में कुछ नहीं कहना चाहिए। यह आपकी शान के बरखिलाफ है।” बड़ी सख्ती से जवाब दिया—“हम लोग जो दिन-रात बाहर घूमते और दिमागी काम करते हैं, अगर भोजन-छादन में बेपरवाई करें तो काम कैसे होगा? जो उपदेशक इस विषय में सचेत न रहेंगे वे या तो शीघ्र मर जाएँगे या काम से थककर बैठ जाएँगे।”

“प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठते थे। शौच के लिए बाहर जंगल में जाते थे।

समय व्यर्थ नहीं खोते थे। कभी खाली बैठे नहीं देखे गए। रात के ठीक दस बजे सो जाते थे। चार-पाँच घण्टे बराबर उपदेश देना उनके लिए साधारण बात थी। ऐसा निडर, धर्मात्मा, सदाचारी उपदेशक मैंने और नहीं देखा। करनाल से शायद मई १८९४ के मध्य भाग में आर्यपथिक लौट आए और फिर जालन्धर में बैठकर ऋषि-जीवन-सम्बन्धी काम करते रहे। इस अन्तर में उन्होंने स्थानीय प्रचार बन्द नहीं किया और आसपास भी धर्म-प्रचार के लिए जाते रहे। ५ जुलाई को उनका व्याख्यान जालन्धर आर्यमन्दिर में होना छपा हुआ है।

६ जुलाई १८९४ को पण्डित लेखराम जी मेरे साथ क्वेटा आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए चले। रास्ते में मुल्तान में एक व्याख्यान देकर क्वेटा पहुँचे। वार्षिकोत्सव से पहले 'पुनर्जन्म' विषय पर उनका बड़ा सार-गर्भित और आन्दोलनपूर्ण व्याख्यान हुआ था। मैं तो वार्षिकोत्सव के पश्चात् १०००) से अधिक धन वेद-प्रचार-निधि के लिए लेकर लौट आया परन्तु पण्डित लेखराम जी क्वेटे में ही रह गए। वहाँ उनके १३ व्याख्यान हुए। वहाँ से हिरक, दोजन, मच्छ, बोस्तान, खोस्ट, शाहरिग में कहीं दो कहीं तीन, व्याख्यान देते हुए सीवी में पहुँचे। १ अगस्त को यहाँ बड़ा प्रबल व्याख्यान हुआ और २ अगस्त को फिर सीवी-निवासियों को सच्चे धर्म का सन्देश सुनाया गया। ५ अगस्त को पाँच-छः सौ की जन-उपस्थिति में 'दीन मुहम्मद' और 'मुहम्मद मुस्तफा' को शुद्ध करके फिर से वैदिक धर्म में प्रविष्ट कराया गया। ८ अगस्त को सक्कर में पहला व्याख्यान हुआ, और फिर तीन और व्याख्यान देकर आर्य-पथिक ने सन् १८९४ ई० के आरम्भ में ही, जब कि उनको ऋषि दयानन्द के जीवन-चरित्र को शीघ्र छपवा डालने की आशा बँध गई थी, भारतवर्ष का सविस्तार इतिहास निकालने से पहले एक मासिक पत्र निकालने का विचार किया था। उसका नामकरूण संस्कार 'विद्यावर्तक' किया था और उद्देश्य यह था कि उसके द्वारा वैदिक धर्म के प्रचार तथा आर्य जाति की सेवा के सब काम किये जाएँ। अगस्त १८९४ में पहले अंक की विषय-सूची इस प्रकार तैयार की थी—

(१) कितने आर्यसमाज स्थापित हुए, (२) कितने मुसलमान या ईसाई वा मुसलमान शुद्ध हुए, (३) कितनी विधवाओं के विवाह हुए, (४) विद्या-सम्बन्धी लेख, (५) नये विद्या-सम्बन्धी निरूपण, (६) वेद-सम्बन्धी शंकाओं का समाधान, (७) ऋषियों के जीवन-चरित्र।

पण्डित लेखराम की इस शुभ इच्छा की पूर्ति के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने उनकी मृत्यु के डेढ़ वर्ष पश्चात् 'आर्य मुसाफिर'^१ नामक मासिक पत्र

१. शोधपूर्ण से अभिप्राय है।

—सम्पादक

२. सन् १८९८ में जालन्धर से प्रकाशित।

—सम्पादक

प्रकाशित करना आरम्भ किया था जो अवतक गिरता-पड़ता चल रहा है। यदि इस पत्र को समयानुसार उर्दू भाषा में तत्त्वान्वेषण का साधन बनाया जावे, तभी आर्यसमाज को एक जागृत शक्ति कहा जा सकेगा।

सितम्बर १८९४ का एक और नोट मुझे मिला है जिससे पण्डित लेखराम के हृदय के भाव विस्पष्टता से प्रतीत होते हैं—

“समग्र भारतवर्ष को आर्य-धर्म में लाने के निम्न साधन हैं। यदि इनमें हम, ईश्वर की कृपा से, कृत-कार्य हों तो अवश्य सब लोग सद्धर्म में आ जावें :—

प्रथम—विधवा-विवाह या और कोई साधन जिससे भविष्य में स्त्रियाँ मुसल-मानी वा ईसाई न हों।

द्वितीय—शुद्धि-फण्ड जिससे सब मतों के अनुयायी वैदिक धर्म में आ सकें।

तृतीय—वेद प्रचार निधि स्थापित करना अर्थात् उपदेशक तैयार करना।

चतुर्थ—बचपन का विवाह रोकना।

पंचम—पुस्तक-प्रचार प्रत्येक भाषा में और साइन्स की वे बातें जो वेद धर्म के विरुद्ध हों, उनपर विचार करना।

षष्ठ—साधु कम हों और उपदेशक बनकर वर्तमान साधु धर्म का कार्य करें।

सप्तम—दान की व्यवस्था ठीक करना।”

सितम्बर १८९४ के मध्य में हम पण्डित लेखराम को श्री गोविन्दपुर आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित पाते हैं; और इन्हीं दिनों प्रचारक में ‘दरियाई मजहब’ पर आर्यपथिक का एक विस्तृत नोट देखते हैं।

ऐसा मालूम होता है कि श्री गोविन्दपुर से निवृत्त होकर पण्डित लेखराम कुछ दिनों जालन्धर में जीवन-चरित्र का काम करते रहे और फिर २९ और ३० अक्टूबर को गुरुदासपुर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। दोनों दिन ‘पुनर्जन्म’ और ‘सचाई की मजबूत चट्टान’ विषयों पर ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े गम्भीर और जन-प्रिय व्याख्यान देकर मुहम्मदी प्रश्नकर्त्ताओं की शंकाओं का भी समाधान किया। गुरुदासपुर से लौटकर ही, अपनी धर्मपत्नी को घर पहुँचा, पण्डित लेखराम कोहाट पहुँचे जहाँ उन्होंने ५ नवम्बर से ११ नवम्बर सन् १८९४ तक बराबर ६ व्याख्यान दिये। इन्हीं दिनों एक आर्य भाई के यहाँ मौत हो जाने पर आर्यपथिक ने मृतक-संस्कार वैदिक रीत्यनुसार कराया।

कोहाट में पण्डित लेखराम के व्याख्यानों की वैसी ही धूम मच गई जैसी अन्य स्थानों में सुनने में आती थी। यहाँ वन्नु आर्यसमाज की ओर से तारों पर तारें आती रहीं क्योंकि एक मास से वन्नु-निवासी आर्यपथिक के व्याख्यानों के प्यासे बैठे थे। अन्त को १२ नवम्बर के दिन कोहाट से तार-समाचार पहुँचा कि पण्डित लेखराम जी टाँगा में वन्नु को चल दिये हैं। आर्य भाई नगर-निवासियों समेत

टांगा के स्थान में पहुँच गये और हमारे चरित्र-नायक का स्वागत कर भजन-कीर्तन करते हुए उन्हें नौ बजे रात के आर्य-मन्दिर में पहुँचाया ।

दूसरे दिन से ही व्याख्यानों का सिलसिला शुरू हो गया । ईश्वर की हस्ती, मुक्ति-पथ, धर्म, सच्चाई की चट्टान और आर्य-जीवन (विषयों) पर बड़े सार-गर्भित तथा दिलों को हिलानेवाले व्याख्यान हुए । एक दिन प्रश्नोत्तर के लिए रक्खा गया जिसमें किसी अन्य मतावलम्बी ने तो कोई प्रश्न न किया, किन्तु सनातन धर्म सभा के मन्त्री का पत्र आदित्यवार को शास्त्रार्थ के लिए नियत करने के निमित्त आया । तदनुसार आदित्यवार को बड़ी जन-उपस्थिति में सनातन सभा के मन्त्री तथा एक अन्य पण्डित का “काफिया तंग” कर दिया । इन्हीं दिनों में से १६ जनवरी का दिन अपने अन्वेषण के अनुराग की तृप्ति के लिए नियत किया गया और ग्राम कक्किभरत् के खण्डरात को जाकर देखा । लोगों में प्रसिद्ध है कि भरत की नन्हसाल अर्थात् महाराजा कैकय की राजधानी इसी स्थान में थी । एक पुराना सिक्का देखकर पीछे से उसको २२ रुपयों तक खरीदने की भी आज्ञा मन्त्री आर्य-समाज को भेजी, किन्तु जिस मनुष्य के पास वह सिक्का था, वह उस समय मर चुका था ।

२० नवम्बर को पण्डित लेखराम का अन्तिम व्याख्यान था । विषय “आर्य-जीवन” था । इस व्याख्यान में आर्य-जीवन का चित्र खींचते हुए मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र, हकीकतराय, पूर्ण भक्तादि के दृष्टान्तों को श्रोतागण के आगे ऐसी योग्यता से रक्खा कि मृत प्राणियों में भी जीवन पड़ गया और पत्थरदिलों को भी मोम बना आठ-आठ आँसू रुलाया ।

२१ नवम्बर को वन्तू से चलकर डेरा इस्माइलखाँ के रास्ते लाहौर आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए प्रस्थान किया । मालूम होता है कि २२ नवम्बर की रात को दरियाखाँ रेलवे-स्टेशन से लालामूसा के लिए चल दिये जहाँ २३ नवम्बर के प्रातःकाल पहुँच गए । लालामूसा में कुछ देर ठहरना पड़ता है क्योंकि रावलपिण्डी से डाक यहाँ १२ बजे के पश्चात् पहुँचती है ।

पण्डित लेखराम अपना समय व्यर्थ गँवानेवाले न थे, इसलिए स्टेशन के किसी बाबू से समाचारपत्र माँगे । जो पत्र बाबू ने दिये उन्हीं में ७ नवम्बर का “मित्र-विलास” मिल गया । उसी समय डायरी में नोट कर लिया—“१० अक्टूबर के मेसेंजर” में लिखा है कि परोपकारिणी सभा सत्यार्थप्रकाश में से वह लेख जो बाबा नानक की बाबत है निकाल देवे । देखना है कि समाज इसको क्या समझती है ।”

—(मित्रविलास)

१. डी० ए० बी० कॉलेज लाहौर का मुखपत्र । पूरा नाम था ‘आर्य मेसेंजर’ ।

—सम्पादक

उत्तर—परोपकारिणी सभा इसको नहीं निकाल सकती। समाज इसको स्वामी जी की तहरीर (लेख) समझता है, और जब तक उसकी गलती मालूम न हो बिल्कुल सही समझता है और गलती मालूम हो जाने पर आर्यसमाज नियम ४ के अनुसार गलती कुबूल (भूल स्वीकार) करने को तैयार है। मुकस्सिल जवाब दिया जाएगा। २३ नवम्बर, १८९४, रेलवे स्टेशन लालामूसा।

—लेखराम आर्यमुसाफिर वकलमखुद।

धुन यह लगी रहती थी कि आर्यसमाज पर कोई आक्षेप ऐसा न रहे जिसका उचित उत्तर न दिया जाय। इन्हीं दिनों दक्षिण-हैदराबाद में निजाम की पुलिस ने पण्डित गोकुलप्रसाद पौराणिक के मुकाबिले में व्याख्यान देनेवाले पण्डित बालकृष्ण शास्त्री आर्योपदेशक तथा ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी को राज से बाहर कर दिया था। उसका हाल मित्रविलास में पढ़कर नोट कर लिया कि उसके विषय में आन्दोलन करके आर्यसमाज की रक्षा के लिए लेख लिखेंगे।

२३ नवम्बर की डाक में लाहौर पहुँचकर पण्डित लेखराम जी ने नगरकीर्तन की शोभा अवलोकन की। २४ नवम्बर को आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में मध्याह्नोत्तर के समय पौराणिक सभा की ओर से पण्डित गोपीनाथ, गोपाल शास्त्री और एक साधु को लेकर आये थे। पौराणिकों की वक्तृताओं का जिक्र करके 'सद्धर्म-प्रचारक' में लिखा है—“किन्तु जब आर्यमुनि जी ने दोनों (सनातनी) बोलनेवालों का परस्पर विरोध, अपनी प्रबल युक्तियों से, दिखलाया और आर्य-पथिक ने वेद-प्रमाणों से सनातनियों के प्रमाणों और युक्तियों को खण्ड-खण्ड कर दिया तो फिर जो प्रभाव श्रोता-गण पर पड़ा उसका अनुमान वही लोग कर सकते हैं जिन्होंने इन दोनों उपदेशकों के प्रसिद्ध शास्त्राथ देखे हैं।”

२५ नवम्बर को अन्तिम व्याख्यान पण्डित लेखराम का था। समय केवल एक घण्टा दिया गया था परन्तु जब आर्यपथिक आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या करने लगे तो फिर श्रोतागण भला कब हिलने का नाम लेते! ढाई घण्टे तक बराबर श्रोतागण लिखित चित्रवत् बैठे रहे। यदि वक्ता एक घण्टा और बोलते तब भी श्रोतागण बैठे रहने को तैयार थे।

लाहौर से आर्यपथिक अपने जन्मदाता आर्यसमाज पेशावर में गए और ३ से ५ दिसम्बर १८९४ तक बराबर व्याख्यान दिये। ६ दिसम्बर को रावल-पिंडी उतरे, परन्तु व्याख्यान का प्रबन्ध न होने के कारण अपने निवास-स्थान कहुटा को चले गए। इस वार अपने ग्राम में लाभचन्द्र भजनीक को भी साथ ले गए और दो दिनों तक वैदिक धर्म का खूब प्रचार हुआ। वहाँ से रास्ते में गूजरखाँ, चकवालादि स्थानों में वैदिक धर्म का डंका बजाते हुए २५ दिसम्बर सन् १८९४ को जालन्धर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में आकर सम्मिलित हुए।

पण्डित लेखराम चकवाल में थे जब ईसाई अखतार “नूरअफ्शा” में किसी

का छपवाया लेख देखा जिसमें लिखा था कि पण्डित लेखराम ने एक बार गुजरात में ईसा के विचित्र जन्म का पता वेदों से दिया था। आर्यपथिक ने वहीं से उस लेख का खण्डन 'सद्धर्म प्रचारक' के लिए भेजा, जो १५ पौष १९५१ के अंक में छपा था।

जालन्धर आर्यसमाज के इस वार्षिकोत्सव में पण्डित लेखराम का पहला व्याख्यान स्मरणीय है। विषय "धर्म-परीक्षा की कसौटी" था जिसे आर्यपथिक ने ऐसा प्रभावशाली बनाया कि 'सद्धर्म प्रचारक' के संवाददाता के शब्दों में—"एक साधु, जो आगरे के राय शालिग्राम^१ का चेला हो चुका था, और राधास्वामी के जाप में निमग्न था, व्याकुल हुआ। पण्डित (लेखराम) जी से फिर मिला और अन्त को वैदिक धर्म की शरण में आकर उसने राय शालिग्राम को पोस्टकार्ड भेज दिया कि पण्डित लेखराम का व्याख्यान सुनकर उसे राधास्वामी मत पर विश्वास नहीं रहा।"

१. राधास्वामी मत के द्वितीय आचार्य।

ऋषि-जीवन की छपाई और लाहौर की स्थिति

स्वामी दयानन्द के जीवन-चरित्र की पूर्ति के लिए आवश्यक यह था कि पण्डित लेखराम बाहर के आन्दोलन के पश्चात् किसी विशेष स्थान में बैठकर काम करें, परन्तु एक ओर पण्डित लेखराम का अपना धार्मिक उत्साह और दूसरी ओर आर्य जनता की आवश्यकताएँ उनको एक स्थान में बैठने न देती थीं। आर्य-प्रतिनिधि सभा ने कई बार विशेष नियम बनाकर पण्डित लेखराम को दिये, परन्तु आर्यपथिक के धार्मिक जोश को ठण्डा करने के लिए कोई भी नियम पर्याप्त न थे। जीवन-चरित्र का काम करते हुए उनको बुलाने के लिए यह लिख देना काफी था कि एक आर्य-जातिस्थ पुरुष मुसलमान होनेवाला है वा किसी मुहम्मदी प्रचारक के साथ शास्त्रार्थ की सम्भावना है; और फिर यदि सभा की ओर से आक्षेप होता तो पण्डित लेखराम का यह उत्तर कि शास्त्रार्थ के दिनों का वेतन काट लो, सभा के अधिकारियों को चुप कराने का अपूर्व साधन था। मेरे पास पण्डित लेखराम को इसीलिए रक्खा गया था कि जमा किये वृत्तान्त को कैसे क्रम से ठीक करके छपवाने का प्रबन्ध करूँ। परन्तु यह इकट्ठा किया हुआ मसाला समझ में नहीं आ सकता था जब तक पण्डित लेखराम ही उसे नोटों से साहित्य का रूप न देते, और मैं आर्यपथिक को प्रचार के लिए भेजने पर मजबूर था। जब मैंने सभा में रिपोर्ट कर दी कि पड़ताल का कार्य किसी अन्य सज्जन के सुपुर्द हो, तो सर्व पत्रादि राय ठाकुरदत्त जी के पास भेजे गये; परन्तु जब राय साहब ने भी इन पत्रों को अभी अपूर्ण बतलाया तो फिर यह निश्चय हुआ कि लाहौर में स्थित होकर पण्डित लेखराम ही ऋषि का जीवन-वृत्तान्त ठीक करके छपवाना आरम्भ कर दें।

उपर्युक्त निश्चय के अनुसार पं० लेखराम जी ने लाला जीवनदास पेन्शनर के मकान में रहने का प्रबन्ध किया और अपनी धर्मपत्नी को लाहौर लाने के लिए जनवरी १८६५ के मध्य भाग में घर की ओर चल दिये। मार्ग में गुजरात के आर्यों के निवेदन पर ठहरकर एक भूले भाई को वैदिक धर्म की सचाइयों का उपदेश करके मुसलमान होने से बचाया। १८ जनवरी को लालामूसा में व्याख्यान देकर

१६ जनवरी को गुजरात में “सद्धर्म की प्राप्ति” विषय पर एक व्याख्यान दिया और फिर घर जाकर अपनी धर्मपत्नी जी को साथ ले सीधे लाहौर में उपस्थित हुए।

इन्हीं दिनों पण्डित लेखराम जी की प्रेरणा पर जो मैंने वेद-भाष्य की रक्षा-विषयक लेख प्रचारक में लिखे थे, उनका परिणाम निकल आया। यह पण्डित लेखराम ने ही पता लगाया था कि ऋषि दयानन्द के वेद-भाष्य का आर्य भाषा में अनुवाद करते हुए ब्राह्मण-कुलोत्पन्न पण्डित अपने सिद्धान्त बीच में घुसेड़कर भाष्य को संदिग्ध बना रहे हैं। परोपकारिणी सभा ने यह निश्चय मुद्रित कराया कि “महर्षि दयानन्दकृत पुस्तकों के शोधने के लिए पण्डित लेखराम जी को लिखा जावे कि वह अशुद्धियाँ छूटकर वैदिक यन्त्रालय के अधिष्ठाता के पास लिख भेजें।”

लाहौर में स्थित होकर पण्डित लेखराम ने जीवन-चरित्र का लेख कातिव (लेखक) के हाथ में देना शुरू तो कर दिया परन्तु फिर भी एक ओर लगकर काम करना उन्हें वहाँ भी न मिला। ६ फरवरी १८९५ के दिन हम उन्हें अपने देश की आवश्यकता पर माण्टगुमरी में व्याख्यान देते पाते हैं और फिर १० फरवरी को गुजराँवाला में “हमारी मौजूदा तहकीकात” पर प्रकाश डालते देखते हैं। कारण वही मांस-भक्षण का भगड़ा था। जहाँ कहीं कॉलिज दल के आदमी समाज को अपनी ओर खींचने जाते वहीं पण्डित लेखराम को भेजना पड़ता।

परन्तु केवल सभा के अधिकारी ही ऋषि-जीवन की तैयारी में बाधा डालने-वाले नहीं समझे जा सकते; स्वयं पण्डित लेखराम का भी इसमें बड़ा भारी हाथ होता था। माण्टगुमरी और गुजराँवाला जाने का हाल मुझे भेजते हुए आर्यपथिक अपने १४ फरवरी १८९५ के पत्र में लिखते हैं—“अब भिवानी, स्यालकोट, कराची, होशियारपुर के जलसे समीप आ गये। आपने क्या सलाह की है? आप समेत ८ महाशय जानेवाले हैं। उनमें से ४ स्यालकोट और ४ भिवानी चले जावें। मैं और पण्डित कृपाराम जी दोनों लाभचन्द्र (भजनीक) समेत, होशियारपुर को भुगत लेंगे। बतलाइये अब क्या आज्ञा है? जिन-जिनको जिस स्थान में भेजना है, आप भली प्रकार सोच-विचारकर, शीघ्र सबको सूचित कर दीजिए जिससे ठीक समय पर काम हो।”

ऊपर का उद्धृत लेख स्पष्ट सिद्ध करता है कि जिस प्रकार पण्डित लेखराम पेशावर आर्यसमाज के प्रबन्धकर्त्ता बने हुए थे, उससे भी बढ़कर उन्हें दिन-रात आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की चिन्ता रहती थी; परन्तु यश और कीर्ति का लेशमात्र भी लालच उन्हें न था। होशियारपुर न जाकर २३, २४ फरवरी को भिवानी आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए जहाँ व्याख्यानों के अतिरिक्त धर्म-चर्चा में भी विशेष भाग लिया।

भिवानी से पण्डित लेखराम सीधे करनाल आर्यसमाज के जलसे पर पहुँचे और उसी स्थान में उनके साथ मैं भी शामिल होकर २७ से २९ मार्च तक काम करता रहा। शंका-समाधान का तो अधिक बोझ पण्डित लेखराम पर रहता ही था, परन्तु करनाल के इस वार्षिकोत्सव पर जो दो व्याख्यान उन्होंने दिये उन्होंने हिन्दुओं के मुर्दा तनों में भी जीवन फूँक दिया। पतितों के उद्धार और आर्य-जाति के भविष्य पर ऐसे बलवर्धक व्याख्यान मैंने पहले नहीं सुने थे।

इसी वर्ष चिरकाल से सोया हुआ दिल्ली आर्यसमाज जाग उठा था और ३० मार्च १८९५ से उनके वार्षिकोत्सव का आरम्भ था। इस वार्षिकोत्सव में भी पण्डित लेखराम मेरे साथ ही करनाल से चलकर सम्मिलित हुए थे। दिल्ली नगर में हमारा पहला नगरकीर्तन था इसलिए दिल्लीवाले हमारी भजन-मंडलियों को भी तमाशेवाले का विज्ञापन समझे। तब हमारे उपदेशकों ने भजनों के पश्चात् ऊँचे मूढ़ों पर खड़े होकर व्याख्यान आरम्भ कर दिये। इस नगर-प्रचार में पण्डित लेखराम ने बड़ा काम किया। जब चाँदनी चौक में छुन्नामलवालों के मकान के नीचे पण्डित लेखराम ने अपनी वक्तृता आरम्भ की तो दो हजार से कम की भीड़-भाड़ न थी।

पण्डित लेखराम के व्याख्यानों में मुहम्मदी लोग बहुत आते थे। बाहर से चाहे कुछ भाव लेकर आते परन्तु आर्यपथिक की आस्तिकतापूर्ण युक्तियाँ सुनकर “मुभान अल्लाह” और “वारकअल्लाह” के ही नारे बुलन्द होते और दाढ़ीवाले सिर और गर्दन चारों ओर हिलती दिखाई देतीं।

अभी लाहौर पहुँचकर जीवन-चरित्र का कार्य फिर से आरम्भ किया ही था कि सियालकोट से एक सिक्ख रिसाले के सवारों के डौंवाडोल होने के समाचार पहुँचे। पण्डित लेखराम उसी समय सियालकोट पहुँचे और बड़े प्रेम से अपने सिक्ख भाइयों को धर्म का महत्त्व समझाया। तीन दिन तक मुहम्मदी मत-खण्डन में आर्यपथिक के प्रबल व्याख्यान होते रहे जिसका परिणाम यह हुआ कि सैकड़ों खालसे मुसलमान होने से बच गए।

१३ एप्रिल १८९५ के प्रातःकाल मेरे साथ पण्डित लेखराम जी मालेर-कोटला आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। यहाँ की कुछ मनोरंजक घटनाएँ वर्णन करने के योग्य हैं—(१) मुसलमानी रियासत होने के कारण पण्डित लेखराम के पहुँचने की धूम मच गई। मध्याह्नोत्तर का समय धर्म-चर्चा के लिए निश्चित था। एक सभ्य मुसलमान सज्जन, मुन्शी अब्दुल्लतीफ नामी ने पुनर्जन्म पर कुछ प्रश्न किये, जिनका उत्तर पण्डित कृपाराम देते रहे, परन्तु मुन्शी साहब प्रश्नोत्तर के पश्चात् केवल यह कह देते कि उनकी तसल्ली नहीं हुई। जब तीन-चार बार ऐसा ही हुआ तो मैंने पण्डित कृपाराम जी का आशय उनकी समझाना चाहा। इसपर वह बहुत बिगड़े। फिर भी जब दो-तीन बार मैं प्रबन्ध के लिए

उठा तो मुन्शी साहब ने रोककर कहा—“आप कौन हैं जो बार-बार प्रबन्ध के लिए उठते हैं ?” मैंने उत्तर दिया कि मैं स्थानिक प्रधान की आज्ञा से प्रबन्ध कर रहा हूँ। जब इसपर मुन्शी साहब को विश्वास न आया तो प्रधान स्थानीय आर्यसमाज ने मेरे कथन का समर्थन किया और मैंने कहा कि मैं पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा का भी प्रधान हूँ इसलिए प्रबन्ध में हाथ दे सकता हूँ। मुन्शी साहब इसपर बोले—“आपका नाम किसी प्रतिनिधि के ताल्लुक (सम्बन्ध) में किसी अखबार में, खसूसियत से (विशेषतः) सद्धर्म-प्रचारक में भी, कभी नहीं पढ़ा। आप प्रतिनिधि के हरगिज प्रधान नहीं हैं।” तब तो मुझे कुछ असलियत खटकी और मैंने पूछा—“क्या आप मेरा नाम भी जानते हैं ?” मुन्शी अब्दुल्लतीफ साहब ने फरमाया—“खूब जानता हूँ। आप पण्डित (पण्डित) लेखराम साहब हैं।” इसपर श्रोतागण खिलखिलाकर हँस पड़े और मुझे पता लगा कि पंजाबी लोकोक्ति ठीक है—

“नामा-शाह खट्ट-खाय, बदनाम चोर मारा जाय।”

पण्डित लेखराम के व्याख्यान तो मुन्शी साहब ने सुने ही, परन्तु मेरे व्याख्यान के पश्चात् मेरे हाथ में ५ रु० इसलिए दिये कि मैं जिस शुभकार्य में उसे व्यय करना चाहूँ कर दूँ। (२) दूसरी मनोरंजक घटना रात को हुई। मैं दस-बारह दिनों से दिन-रात काम करता आया था, इसलिए एकान्त में जाकर सो गया। एक घण्टे के पश्चात् ही दो भाई मेरे पैर दबाने लगे। मैं उठ खड़ा हुआ। क्षमा माँगकर उन भाइयों ने कहा कि अनर्थ होने लगा है, शीघ्र चलिए। मुसलमानी रियासत और हमारे मना करते-करते पण्डित लेखराम ने मुसलमानों से मुवाहसा शुरू कर दिया है। मैं भागा हुआ पण्डित लेखराम की ओर चल दिया। वहाँ क्या देखता हूँ कि चार-पाँच मुसलमानों के बीच में बैठे पण्डित लेखराम ने एक मुसलमान युवक का हाथ अपने हाथ में लिया हुआ है और दूसरा हाथ उसकी जाँघ पर रखकर उसे प्रेम से कुछ समझा रहे हैं, और युवक कह रहा है—“यह हवाला तो, पण्डित जी, आपने कुरान शरीफ में से निकाल ही दिया। अब तो अपने मौलवी साहब से फिर पूछकर आऊँगा।” परन्तु पण्डित लेखराम ऐसी जल्दी कब जाने देते थे ! बोले—“मैं तो मुसाफिर हूँ, न जाने फिर मिलना हो या नहीं। मेरा आशय तो सुन लो !” फिर आध घंटे तक वैदिक धर्म की श्रेष्ठता जतलाकर उन सब मुसलमान भाइयों को बड़े प्रेम से विदा किया। जब मुसलमान विदा हो चुके, और पण्डित लेखराम को मेरे आने का कारण ज्ञात हुआ, तो स्थानीय आर्यसमाजियों से कहने लगे—“तुम बड़े बोदे हो। क्या मैं तुम-सों के भरोसे पर धर्म का प्रचार कर रहा हूँ ? ईश्वर जानता है, तुम-से अविश्वासी नास्तिकों से तो निमाजी मुसलमान हजार दर्जे बेहतर हैं।”

(३) फिर जब मैं १४ एप्रिल की रात को शिक्रम में बैठने लगा तो तीसरी

मनोरंजक घटना हुई। आर्य पुरुष चाहते थे कि पण्डित लेखराम मेरे साथ ही विदा हो जायें, इसलिए मेरी शिक्रम को ठहरा लिया (क्योंकि उन दिनों मालेरकोटले को रेल नहीं जाती थी) और पण्डित लेखराम को कहा कि मैं उनके लिए ठहरा हुआ हूँ। आर्यपथिक बिना विस्तर आदि लिये आए और पूछा—“क्या आप मुझे जबरदस्ती साथ ले जाना चाहते हैं?” स्थानीय अधिकारियों की दशा का ध्यान करके मैंने कहा—“चलिए तो अच्छा ही है।” पण्डित जी के लव फड़कने लगे—“मैं सब-कुछ समझ गया हूँ। आप मुझे आज से सभा का नौकर न समझिए। ईश्वर जानता है, ये लोग आर्य नहीं हैं। क्या मैं इन बुजदिलों को खुश करने के लिए मदान से भाग जाऊँ? मैं सराय में डेरा करके यहीं रहूँगा।” मैं तो खिलखिलाकर हँसा और पण्डित जी को नमस्ते कहकर शिक्रम चलवा दी और मालेरकोटले के आर्यसमाजी लज्जित होकर आर्यपथिक की सेवा-शुश्रूषा में सन्नद्ध हुए।

मालेरकोटले से लौटने के पश्चात् पण्डित लेखराम के रोपड़ आर्यसमाज के जलसे में २७ एप्रिल को सम्मिलित होने का पता लगता है, जहाँ उनके दो व्याख्यान हुए थे।

इन्हीं दिनों प्रीतमदेव शर्मा की न्याई उदासी साधु बालकराम ने भी पंजाब का दौरा शुरू किया था और जिस प्रकार प्रीतमदेव व केशवानन्दादि ने स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज को गालियाँ देना ही धन-संचय करने का साधन समझा था, वैसा ही बालकराम ने भी अमल शुरू किया। इसलिए पण्डित लेखराम को इसके मुकाबिले में कई जगह जाना पड़ा था। मास मई, १८९५ के आरम्भ में उदासी बालकराम भेरे में था, इसलिए पण्डित लेखराम ने वहाँ पहुँचकर बराबर तीन व्याख्यान दिये। यद्यपि शास्त्रार्थ के लिए बालकराम जी तैयार न हुए तथापि भेरा आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव २४, २५, २६ मई १८९५ के लिए नियत हो गया।

पण्डित लेखराम के घर में सन्तानोत्पत्ति की आशा थी, इसलिए वह १५ मई १८९५ को लाहौर से अपनी धर्म-पत्नी को साथ लेकर अपने घर क्यूटे में पहुँचे, जहाँ १८ मई शनिवार के दिन प्रातः ९ और १० बजे के बीच में उनके यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ। बच्चे का नामकरण संस्कार वैदिक रीति से करके, २२ मई को आर्यपथिक ने फिर यात्रा आरम्भ कर दी। ३६ वर्ष की आयु में विवाह करके जब पुत्र उत्पन्न हो तो उसके आनन्द में एक साधारण पुरुष सब-कुछ भूल जाता है, परन्तु यहाँ तो अपने पुत्र द्वारा मन्त्री जी से प्रतिज्ञा कर चुके थे कि गूजरखाँ और तक्का में विशेष कार्यों के लिए २३ और २४ मई को ठहरते हुए २५ को भेरा आर्यसमाज के उत्सव में सम्मिलित हो जायेंगे, और ऐसा ही किया भी।

भेरा आर्यसमाज के इस वार्षिकोत्सव में मैं भी सम्मिलित था। पण्डित

लेखराम जी अपने पुरुषार्थ को सफल देखकर गद्गद हो रहे थे। साधु वालकराम को भी निमन्त्रण भेजा गया परन्तु वह आकर अपनी अप्रतिष्ठा कब कराता था ? यहाँ आपके एक व्याख्यान का विषय था—“आजकल के नौजवान (युवक) और उनकी हिम्मत”। इस व्याख्यान में आर्यपथिक ने कहा—“जो युवक व्यायाम नहीं करते वे खाकर कुछ पचा नहीं सकते और जब काफी भोजन नहीं खाते तो बल कहाँ से आवे ? देखो, हस्पताल के बीमारों की खुराक गवर्नमेंट की ओर से यह नियत है—आटा आधा सेर, दाल एक पाव, घी एक छटाँक, चावल एक पाव। हमारे युवक हस्पताल के बीमारों से भी बदतर हैं कि दो-तीन फुलकियाँ खाकर उठ खड़े होते हैं।” पण्डित लेखराम जी के व्याख्यान का यह भाग उनके सब साथियों और नगर-निवासियों को भी कण्ठस्थ हो गया था। २७ के प्रातः हम सब भेरा से चले, और ७।१२ बजे लालामूसा में पहुँचकर स्नान-सन्ध्यादि सारी जमात ने किया। लगभग ६ वा ७ उपदेशक थे। भोजन बनवाने का काम पण्डित लेखराम ने अपने जिम्मे लिया। जब भाजी आदि के साथ आटे की पूरियाँ लाकर रक्खी गईं तो आध सेर आटेवाला मामला सबको हँसाता रहा। भोजन के समय आर्यपथिक सबको टोकते जाते थे परन्तु मेरे साथ उनका साम्मुख्य हो गया। दो पूरियाँ उन्हें दी जातीं तो दो ही मुझे। इस प्रकार जब सब हार गए और हम दोनों भी सत्रह-सत्रह पूरियाँ खा चुके तो पण्डित जी ने हाथ धो लिये और मैंने दो और लेकर बस की। तब पण्डित जी बोले—“लाला जी ! मैं तो आपको रईसों में ही शुमार करता था। आपने तो गजब कर दिया !”

पण्डित लेखराम वैसे तो बड़ी टेढ़ी प्रकृति के दिखाई देते थे, परन्तु थे बड़े ही हँसमुख और सरलहृदय; वह मक्कारी और झूठ को सहन नहीं कर सकते थे। भोजन के पश्चात् पुत्रोत्पत्ति के उपलक्ष्य में पण्डित लेखराम से सहभोज माँगा गया। पण्डित जी ने उस समय के सारे भोजन का व्यय अपने पास से देकर सबको प्रसन्न कर दिया।

भेरे से लौटकर पण्डित लेखराम ने अभी जीवन-चरित्र के काम को हाथ ही लगाया था कि फिर उनके लिए माँग क्वेटे से आई। इधर तो यह हाल और उधर जीवन-चरित्र का मसाला पड़ताल कराने के लिए अन्तरंग सभा ने प्रत्येक लेख की तीन प्रतियाँ तैयार करने का प्रस्ताव स्वीकार किया। पण्डित लेखराम भी ऐसी अवस्था में बड़े तंग आ जाते थे। सभा के मन्त्रों के नाम जो पत्र १७ मई को क्यूटे से लिखा उसमें दर्ज था—“आर्य प्रतिनिधि सभा के दो ग्रधिवेशनों में लाला मुंशीराम के, विशेष आवश्यकताओं के कारण, न सम्मिलित होने से काम पूर्ण न हुआ। जो रेजोल्यूशन पास हुए हैं मैं उनके साथ सहमत नहीं हूँ। तीन कापियाँ कराने में दो-तीन सौ रुपये मुफ्त में फालतू खर्च होंगे.....एक कापी का होना तो जरूरी है किन्तु एक से अधिक नहीं, उससे केवल व्यय ही बढ़ेगा। आप जानते हैं कि मैं

यात्रा में, और विशेषतः उपदेश के लिए यात्रा में, जीवन-चरित्र का काम बिल्कुल नहीं कर सकता। और यात्रा की असावधानता में पत्रों के गुम हो जाने का भी सन्देह रहता है। अब मैं सब पत्र लाला जीवनदास के मकान पर ताले में बन्द कर आया हूँ, साथ नहीं लाया।”

आर्यपथिक के ऊपर लिखित दृढ़ प्रतिबन्ध करने पर भी उन्हें क्वेटे की ओर जाने की आज्ञा मिली। तदनुसार वह ८ जून १८६५ को लाहौर से चलकर माण्ट-गुमरी पहुँचे जहाँ उन्होंने दो व्याख्यान दिये। १३ जून को सोबी पहुँचकर व्याख्यान दिया और १४ को क्वेटे पहुँच गये। १६ और १८ जून को दो व्याख्यान देने के पश्चात् जुलाई के अन्तिम सप्ताह में आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव रखवाया।

इन्हीं दिनों मेरठ से पण्डित लेखराम को एक पत्र, जालन्धर में घूमता हुआ, क्वेटे में पहुँचा जिसमें लिखा था कि एक हिन्दू सभ्य मुसलमान हो चुका है और दूसरा होनेवाला है—और पण्डित लेखराम से सहायता चाही थी। क्वेटे से बिना आज्ञा मेरठ जाना कठिन था, परन्तु पण्डित लेखराम के अन्दर कैसा आत्मा काम करता था उसका पता उनके पत्र से पता लगता है—“लाला मुंशीराम जी को तार दी है कि इसका स्वयं प्रबन्ध करें या जैसी आज्ञा हो लिखें तो उसका पालन करूँगा। आप भी उनसे पूछ लें कि क्या बन्दोबस्त किया।”

इधर तो आर्यसमाज क्वेटा का वार्षिकोत्सव नियत कराया और उससे पहले धर्म-प्रचार का सिलसिला जमाया और इधर घर से बड़ा शोकजनक समाचार मिला। जब पण्डित लेखराम घर पर छुट्टी लेकर गए थे उन्हीं दिनों उनका भाई, तोताराम, बीमारी के विस्तर से उठा था, परन्तु निर्वल अधिक था। क्वेटा में चाचा का पत्र पहुँचा कि १२ जून को भाई का देहान्त हो गया। इसपर १ जुलाई को जो पत्र, क्वेटे से, पण्डित लेखराम ने सभा के मन्त्री को लिखा वह उनके मानसिक भावों की बड़ी उत्तमता से प्रकट करता है—“मेरा छोटा भाई तोताराम १२ जून को मर गया परन्तु घरवालों ने मुझे कुछ समय तक सूचित न किया। कल पेशावर से मेरे चाचा का पत्र आया जिससे हाल मालूम हुआ। हैरान हूँ कि क्या करूँ ! इधर समाज का काम, उधर गृह की आपत्ति, हैरानी पर हैरानी है। यदि यहाँ से काम छोड़कर चला जाता हूँ तो अपने समाज को हानि पहुँचती है और वहाँ भी बहुत-सा हर्ज है। लाचार मैंने आज ही घर पत्र लिखा है कि यदि वे मुझे आज्ञा दें तो जुलाई के अन्त तक क्वेटे रहूँ, नहीं तो पत्र आने पर सूचना दूँगा।”

मालूम होता है कि घरवालों ने पण्डित लेखराम का अपनी धार्मिक संस्था से असीम प्रेम देखकर, फिर उन्हें तंग नहीं किया क्योंकि क्वेटे में दो और व्याख्यान देकर हम उन्हें बलूचिस्तान का दौरा करते पाते हैं। २ जुलाई १८६५ को क्वेटे से चलकर बोलान, दोजान, कोलपुर, हिरक, चतरजई, पनीरबन्द आदि में प्रचार और वेदप्रचार-निधि के लिए धन एकत्र करते क्वेटे में लौट आए। फिर क्वेटा-

आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव से पहले दो व्याख्यान देकर नगर-निवासियों को तैयार किया और वार्षिकोत्सव में दो व्याख्यान देकर लौट आए।

परन्तु क्या पण्डित लेखराम भाई के मरने से १ महीना १० दिनों के पश्चात् घर लौटे ? दीनानगर से तार आया था कि मुसलमानों के साथ शास्त्रार्थ ठन गया है, तब आर्यपथिक घर कैसे जाते ? ३० जुलाई को क्वेटे से चलकर २१ जुलाई को रुक जंकशन स्टेशन पर प्रातः दस बजे 'ईश्वर-प्राप्ति' विषय पर व्याख्यान दिया और सीधे चलकर प्रथम अगस्त की रात को दीनानगर रेलवे स्टेशन पर पहुँच गए। यहाँ मौलवी अकबर अली और मौलवी चिरागुद्दीन, मुहम्मदी मत के प्रचारक, पहले से जमे हुए थे, परन्तु शास्त्रार्थ के लिए सामने न आए। तब दो अगस्त से आरम्भ करके मौलवियों के मुकाबिले में तीन जबरदस्त व्याख्यान दिये, और जनता के आग्रह पर फिर तीन दिन और ठहरकर 'वैदिक धर्म की श्रेष्ठता', 'सन्ध्या की आवश्यकता' और 'सच्चाई की मजबूत चट्टान' विषयों पर बड़े सारगर्भित व्याख्यान दिये। इनका प्रभाव उस समय के स्थानिक मन्त्री जी इस प्रचार वर्णन करते हैं—“किसी वार्षिकोत्सव में इतनी जनसंख्या उपस्थित नहीं हुई और पण्डित (लेखराम) जी के व्याख्यानों से लोगों के हृदय में जो सहानुभूति आर्यसमाज के साथ उत्पन्न हुई है, उसका भी पहला ही अवसर है। पण्डित जी के व्याख्यानों के पश्चात् यहाँ सन्ध्या-पुस्तकों की बड़ी माँग हो रही है। जहाँ तक मेरा खयाल है कोई भी आर्यसमाज का मेम्बर और धर्मात्मा हिन्दू न होगा जो अब भी दो घण्टे व्यय करके दो काल सन्ध्योपासना न करेगा।”

८ अगस्त को अमृतसर पहुँचकर आर्यपथिक ने “धर्म की मजबूत चट्टान” विषय पर व्याख्यान दिया और ९ अगस्त को ‘सत्य के स्रोत’ विषय पर। यहाँ पर ही मुरादाबाद की तार के साथ प्रधान आर्य-प्रतिनिधि की भी आज्ञा पहुँची कि मुरादाबाद में जाकर एक भाई को ईसाई मत के फन्दे से बचा लाइये। आर्यपथिक बिना किसी ननु-नच के मुरादाबाद चल दिये। खन्ना (जिला लुधियाना) का श्रीराम सारस्वत ब्राह्मण ईसाई हो चुका था जिसको वैदिक धर्म का अनुयायी बनाया और प्रायश्चित्त करने के पश्चात् नगरकीर्तन करते हुए उसे आर्यसमाज मन्दिर मुरादाबाद में लाकर ५०० पुरुषों की उपस्थिति में शुद्ध किया और सब भाइयों ने श्रीराम के साथ खान-पान का व्यवहार आरम्भ कर दिया। उन दिनों सनातन धर्म सभा में आलाराम सागर लोगों को आर्यसमाज के विरुद्ध भड़का रहा था, परन्तु ११ से १५ अगस्त के बीच प्रबल व्याख्यान देकर आर्यपथिक ने हिन्दू-मात्र को अपने साथ कर लिया और फिर अम्बाले का तार आने पर वहाँ को चल दिये। यहाँ पर ईसाइयों ने कुछ शोर मचाया हुआ था जिसके मुकाबिले में पण्डित लेखराम जी के व्याख्यान बड़े प्रभावशाली हुए और सर्वसाधारण को ईसाई मत की निर्बलताओं का परिज्ञान हुआ।

अम्बाला छावनी में जिस काम के लिए आए थे उसे करके २३ अगस्त को शिमला आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। शिमला में पंडित लेखराम के तीन व्याख्यान हुए जिनमें से अन्तिम व्याख्यान टाउनहाल (Town Hall) में आर्यसमाज के नियमों पर हुआ। इस व्याख्यान से प्रभावित होकर बहुत-से नये सज्जन आर्यसमाज के सभासद तथा सहायक बने।

शिमले से लौटते हुए पण्डित लेखराम को वर्षा में भी भीगते-भीगते आना पड़ा और अम्बाला में भी बादल न खुले। वहाँ अभी कपड़े सुखाने का बंदोबस्त करने ही लगे थे और एक व्याख्यान भी दे चुके थे कि मेरा तार पहुँचा और आर्य-पथिक सीधे जालन्धर पहुँच गए। तीसरे पहर रेल से उतरते ही मेरे पास आए। मैंने उनको कष्ट देने का कारण बतलाया। धर्मशाला पर्वत के आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव था और उसी समय कॉलिज पार्टी ने भी उत्सव मनाना निश्चित किया। जहाँ उधर से बड़े-बड़े प्रसिद्ध उपदेशक, लीडर और राय साहबान जानेवाले थे वहाँ हमारी ओर से लाभचन्द्र भजनीक को लेकर अकेले पण्डित कृपाराम जी पहुँचे हुए थे। उस स्थान में पण्डित लेखराम को भेजने का विचार था। २६ अगस्त को पंडित लेखराम मेरे पास पहुँचे और धर्मशाला में ३१ अगस्त को नगर-कीर्तन था; यदि दूसरे दिन प्रातःकाल ही चल देते तो धर्मशाला आर्यसमाज के के सभासदों के डौंवाडोल हृदयों को शांति मिल सकती थी।

मेरी सारी कहानी सुनकर पण्डित लेखराम बोले, “यह देखिए! लगातार सफर में सारे कपड़े मैले हो गए, कहीं धुलाने का समय नहीं मिला। फिर शिमले से आते हुए उन मैले कपड़ों में से एक भी सूखा नहीं बचा। मुझे परसों से ज्वर आता है और जुकाम साथ है। बतलाइये, मैं जाने की अवस्था में हूँ?” मेरी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी और मैंने कहा—“पंडित जी! आप अब आराम कीजिए, धर्मशाला का विचार छोड़ दीजिए। वहाँ का भुगतान हो जाएगा।” इतना कहकर मैंने पण्डित जी को उनके निश्चित कमरे में उतारा और कपड़े सुखाने के लिए अंगीठी जलवा दी, क्योंकि उन दिनों व्यापक भूढ़ी लगी हुई थी। पण्डित लेखराम को भोजन कराके मैं अपने काम में लग गया और फिर उस रात उन्हें न मिला।

दूसरे दिन प्रातः मुकुटमों का प्रबन्ध करके मैं कचहरी जाने की तैयारी करने लगा था कि पण्डित लेखराम कपड़ों का बैग बाहर रखकर मेरे बरामदे में पहुँचे और मुझे अन्दर से बुलवाया। जब मैं बाहर पहुँचा तो क्या देखता हूँ कि पाजामा-कोट पहने, पगड़ी का शमला छोड़े, कमर की पेटी हाथ में लिये आर्यपथिक यात्रा को तैयार खड़े हैं। मुझे देखते ही बोले—“लाला जी! २० रु० मार्ग-व्यय के मँगा दीजिए और अपने दो नये कुर्ते भी। ऊपरी सफाई की मुझे परवा नहीं लेकिन शरीर में सटा हुआ तो शुद्ध वस्त्र ही होना चाहिए।”

मैं आर्यपथिक की ओर आश्चर्य से देखने लगा और पूछा—“क्या घर से कोई तार आया है ?” उत्तर मिला—“घर की मुझे कम परवा है। वहीं धर्मशाला जाता हूँ। क्या किया जाए ? जाना ही पड़ेगा।” मैंने बतलाया कि मध्याह्नोत्तर की रेल में मैं चला जाऊँगा, वह कण्ट न उठावे। पण्डित लेखराम, प्रसिद्ध कटु-भाषी पण्डित लेखराम, प्रेम से सनी हुई वाणी में बोले—“लाला जी ! आपका यहाँ से हिलना बड़ा हानिकारक होगा। आपके ही बल से तो हम सब काम करते हैं। यदि ऐसी छोटी बातों के लिए आपको कण्ट दें तो हम किस मर्ज की दवा हैं ? लीजिए, जल्दी रुपया मँगाइये, रेल का समय समीप आ रहा है।”

इस दृश्य को स्मरण करके अब भी मेरी आँखों में आँसू भर आए हैं। आज आर्यसमाज की अवस्था पुकार-पुकारकर चिल्ला रही है—लेखराम ! हा ! धर्म-वीर कर्तव्यपरायण लेखराम !!

रुपये अन्दर से आए, पेटी की बाँसली में डाले गए और आर्यपथिक घोड़ा-गाड़ी की भी प्रतीक्षा न करके रेलवे स्टेशन की ओर चल दिये।

धर्मशाला में अकेले लेखराम ने सचमुच सवा लाख का काम किया। सनातनी ब्रह्मानन्द भारती ने नियोग की आड़ लेकर आर्यसमाज और उनके प्रवर्तक को बहुत-कुछ कोसा था। उसके मुकाबिले में महात्मा हंसराज जी ने पहले से व्याख्यान दिये थे और नवीन वेदान्त मत का खण्डन भी किया था परन्तु भारती का प्रभाव न मिटा। तब पण्डित लेखराम ने भारती जी को शास्त्रार्थ का घोषणा-पत्र भेजा। शास्त्रार्थ से तो वह बच गया परन्तु पण्डित लेखराम ने, विज्ञापन देकर, नवीन वेदान्त का खण्डन और वेदोक्त नियोग के मण्डन विषय पर २ सितम्बर की रात को बड़ा शक्तिशाली व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान में स्वामी ब्रह्मानन्द भारती और महात्मा हंसराज जी के अतिरिक्त धर्मशाला में उपस्थित सब सज्जन विद्यमान देखे गए। पण्डित लेखराम में एक बड़ा गुण था कि वह विरोधी की वक्तृता को स्वयं सुन आते थे। इसलिए उनके व्याख्यान टाले नहीं जाते थे। इस व्याख्यान ने भारती की सारी लीला को समाप्त कर दिया।

धर्मशाला से लौटते हुए पण्डित लेखराम ने पठानकोट आर्यसमाज मन्दिर में “ईसाई मत खंडन” पर एक व्याख्यान दिया जिसकी वहाँ आवश्यकता बतलाई जाती थी और वहाँ से “वेद-प्रचार निधि” के लिए धन भी एकत्र कर लाए।

इसके पश्चात् भी कुछ थोड़ा ही काम ऋषि-जीवन-सम्बन्धी कर पाये होंगे क्योंकि हम उन्हें गुजरातादि आर्यसमाजों में भ्रमण करते हुए देखते हैं। फिर माण्टगुमरी में प्रचार करके अक्टूबर मास में ऐवटावाद में प्रचार करने के अतिरिक्त रावलपिण्डी और अमृतसर आर्यसमाजों के जलसों में उनका सम्मिलित होना पाया जाता है।

अमृतसर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव से निवृत्त होकर पण्डित लेखराम ने

लाहौर में तीन व्याख्यान दिये, जिनमें “ब्राह्मसमाज के इतिहास” पर दृष्टि डालते हुए जो व्याख्यान हुआ वह बड़ा ही आन्दोलनपूर्ण था। लाहौर से चलकर ३ नवम्बर को मुल्तान पहुँचे जहाँ ५ नवम्बर तक तीन व्याख्यान दिये। ६ नवम्बर को आराम करके ७ को डेरा गाजीखाँ पहुँचे जहाँ उन्होंने उसी सायंकाल के समय “धर्म की आवश्यकता” पर व्याख्यान दिया। फिर १० नवम्बर तक तीन और व्याख्यान देकर ११ नवम्बर को मुजफ्फरगढ़ पहुँचे। वहाँ दो व्याख्यान दे और करोड़ आर्यसमाज में प्रचार करके लाहौर लौट गए।

जीवन-चरित्र का थोड़ा ही काम करसके थे कि लाहौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में भाग लेना पड़ा। नगरकीर्तन के समय नगर-प्रचार के अतिरिक्त १ दिसम्बर १८९५ को वार्षिकोत्सव का अन्तिम व्याख्यान दिया जिसमें सबसे अधिक जनसंख्या थी। व्याख्यान पर श्रोता-गण इतने मोहित हुए कि समय समाप्त होने के एक घण्टा पीछे तक बराबर जमकर बैठे रहे।

इन्हीं दिनों आर्यपथिक का सबसे बड़ा ग्रन्थ ‘पुनर्जन्म’ विषय पर छपकर तैयार हो गया और आर्य-जनता मात्र ने उसका बड़े आदर से सत्कार किया।

लाहौर के उत्सव के पश्चात् फिर जीवन-चरित्र का कार्य आरम्भ किया था कि आर्यपथिक के लिए पुनः माँग आने लगी। ८ दिसम्बर को उनका व्याख्यान लुधियाना नगर में हुआ। १० को माछीवाड़ा ग्राम में धर्म-प्रचार करके १२ दिसम्बर १८९५ को रोपड़ पहुँचे जहाँ १३ तक दो व्याख्यान दिये। मूर्ति-पूजा विषय पर पौराणिक पण्डितों के यहाँ शास्त्रार्थ भी हुआ।

कहाँ रोपड़ और कहीं शरकपुर! दोनों रेलवे लाइन से दूर। परन्तु हम १५ और १६ दिसम्बर को शरकपुर (जिला लाहौर) में व्याख्यान देते देखते हैं।

इस वर्ष का दौरा भी गत वर्षानुसार जालन्धर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर ही समाप्त हुआ, और वहाँ से ही आर्यपथिक ने नये वर्ष का कार्य आरम्भ किया।

जनवरी १८९६ के आरम्भ में ही पटियाला राज में पहुँचकर पाँच व्याख्यान दिये। वहाँ से लाहौर लौटकर जीवन-चरित्र में कुछ त्रुटि देख ११ जनवरी १८९६ को फिर मुल्तान में ऋषिजीवन-सम्बन्धी आन्दोलन^१ के लिए गये। १९ जनवरी से तीन फरवरी तक वहाँ रहे, इस अन्तर में वहाँ सात व्याख्यान भी दिये। ४ फरवरी को लाहौर लौटकर फिर जीवन-चरित्र का काम होने लगा, परन्तु स्थानीय प्रचार भी साथ-साथ चलता रहा। ९ फरवरी को मियाँ मीर में और १० तथा ११ फरवरी को अमृतसर में व्याख्यान दिये। वहाँ से चलकर वह १४ से २४ फरवरी तक डेरा इस्माइलखाँ आर्यसमाज में रहे जहाँ उदासी साधु

१. शोध के अर्थ में प्रयुक्त। —सम्पादक

बालकराम ने शोर मचा रक्खा था। यहाँ बड़ी धूम के साथ व्याख्यान हुए। लौटते हुए २५-२६ फरवरी को व्याख्यान दिये और २७ फरवरी के दिन डेरा गाजीख़ाँ पहुँच गए। वहाँ एक पादरी से शास्त्रार्थ करके नगरकीर्तन कराया जिसमें स्वयं थोड़ी-थोड़ी दूर पर व्याख्यान देते रहे और २८ फरवरी को फिर ७०० की जनो-पस्थिति में आर्यसमाज के नियमों पर व्याख्यान दिया जिसकी समाप्ति पर १३ नये सभासद बने।

इसके पश्चात् लाहौर लौटकर जीवन-चरित्र की छपाई के साथ-साथ स्थानीय प्रचार भी करते रहे। फिर १५ मार्च को करनाल पहुँचे जहाँ नगरकीर्तन में नगर-प्रचार करने के अतिरिक्त दो अत्युत्तम व्याख्यान दिये। वहाँ से १८ मार्च १८९६ को चलकर १९ को दिल्ली में “वैदिक धर्म की श्रेष्ठता” पर व्याख्यान दिया। फिर वहाँ से सीधे अजमेर पहुँचकर वहाँ के आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। वार्षिकोत्सव की कार्यवाही में तो पण्डित लेखराम के दो बलयुक्त व्याख्यान हुए ही, परन्तु नगरकीर्तन में एक ऐसी घटना हुई जिसे अजमेर आर्य-समाज के वृद्ध सभासद अभी तक नहीं भूले हैं।

आर्यपथिक भजनमण्डली के साथ भूमते हुए जा रहे थे, और बीच में कहीं-कहीं व्याख्यान भी देते जाते थे। मार्ग में कुछ मुसलमान भाइयों से बातचीत होने लगी। पण्डित लेखराम के उत्तर सुनकर कुछ मुसलमान भड़क उठे। “ख्वाजा चिश्ती” की दर्गाह पास थी, इसलिए आर्यसमाजी डरकर भाग गए। अकेला लेखराम न यार, न मददगार। परन्तु क्या लेखराम ने अपना धर्म-प्रचार का काम बन्द कर दिया? नहीं। कहीं सुना था कि विधर्मी के धर्म-मन्दिर से ३० कदम की दूरी पर प्रत्येक धर्म-प्रचारक को अपने मत के समर्थन करने का अधिकार है। आप दर्गाह के द्वार पर पहुँचे। मुसलमान आश्चर्य से इनकी क्रिया को देख रहे थे। लेखराम ने दर्गाह के द्वार से उच्च स्वर से कदम-कदम गिनने आरम्भ किए और तीसवें कदम (पग) पर पहुँच, एक छोटे पुल पर खड़े होकर धर्म-प्रचार शुरू कर दिया। ‘कब्रपरस्ती’ और ‘मर्दुमपरस्ती’ इत्यादि का जबर-दस्त खण्डन होने लगा। मुल्लाओं ने बहुतेरा भड़काया परन्तु मुसलमान सर्व-साधारण जनता ने (जो एक सहस्र की संख्या में एकत्र हो गई थी) बहुदानियत (एक ब्रह्मवाद) की एक चोट पर वक्ता के साथ सहानुभूति प्रकट की। उस समय तक आर्यसमाजियों को भी होश आ चुका था। चुपके से दो-चार देखते गए कि लेखराम पर कैसी बीती, क्या मारा गया वा कहीं भागकर बच गया? किन्तु उनके आश्चर्य की सीमा न रही जब उन्होंने प्रचारक के व्याख्यान का प्रभाव अपनी आँखों से देखा और मुसलमान जनसाधारण को वक्ता के वशीभूत पाया!

अजमेर से लौटकर पण्डित लेखराम ने एक सप्ताह ही जीवन-चरित्र का काम किया होगा कि मुस्तफावाद (जिला अम्बाला) के उत्सव के लिए उनकी

माँग आई। १०, ११, १२ एप्रिल उस उत्सव में सम्मिलित रहे जिसमें साधारण व्याख्यानों के अतिरिक्त २४ और २६ एप्रिल तक हम पण्डित लेखराम को दीनानगर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित पाते हैं। ७ जून १८९६ को जालन्धर आर्यसमाज में “आर्यों के जातीय त्यौहार” विषय पर व्याख्यान देना छपा है।

ऐसा मालूम होता है कि इन दिनों विशेष प्रकार से फिर पण्डित लेखराम जालन्धर में स्थित हो गए थे, और अपनी धर्मपत्नी तथा बच्चे सहित (जिसका नाम सुखदेव रखा था) मुहल्ला “कोट कृष्णचन्द्र” में किराये के मकान में निवास करते थे।

जालन्धर में गृहस्थ जीवन और आदर्श ब्राह्मण गृह

जालन्धर में ही पण्डित लेखराम ने वास्तविक गृहस्थाश्रम का आरम्भ किया, इसी स्थान पर देवी लक्ष्मी जी की गोद हरी हुई और अन्त को इसी भूमि में पण्डित लेखराम को अपने इकलौते पुत्र का अन्त्येष्टि संस्कार करना पड़ा, इसलिए उनके गृहस्थ जीवन का पूरा वृत्तान्त इसी स्थान में देना आवश्यक प्रतीत होता है।

पण्डित लेखराम जी का मेरे साथ विशेष प्रेम था, इसके बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं, फिर भी वह उस समय सारे आर्यजगत् को एक परिवार समझने लग गए थे और इसलिए उनका किसी स्थानविशेष से प्रेम नहीं रह सकता था। परन्तु पण्डित लेखराम जी की धर्मपत्नी श्रीमती लक्ष्मी देवी जी उच्च आदर्श को ग्रहण नहीं कर सकी थीं। उनका मन केवल जालन्धर-निवासिनी आर्य स्त्रियों से ही मिला हुआ था। लाहौर में वे जब तक रहीं अपने-आपको परदेश में समझती रहीं और इसलिए वहाँ से घर चली गई थीं।

जब पुत्र उत्पन्न हो चुका, उसके पश्चात् स्वभावतः उन्हें भरी गोद लेकर उसी जालन्धर नगर में लौटने का उत्साह हुआ जहाँ से वह गोद हरी लेकर गई थीं। इसी अन्तर में पण्डित लेखराम का लाहौर में रखना भी कुछ अनावश्यक ही प्रतीत हुआ क्योंकि जीवन-चरित्र की तैयारी में उनको मुझसे अधिक सहायता मिल सकती थी। तब यही समझा गया कि उन्हें लाहौर आने की आज्ञा दी जावे।

इन्हीं दिनों पण्डित लेखराम जी के पिता का देहान्त हो गया, और इसलिए १६ से १८ मई १८६६ तक की छुट्टी लेकर वह अपने निवास-स्थान कूटा को चले गए और वहाँ से अपनी धर्मपत्नी और पुत्र को साथ लेकर जालन्धर आ गए।

पण्डित लेखराम को मैं एक सच्चा ब्राह्मण मानता हूँ और उनके गृह को आदर्श ब्राह्मणगृह मानता था, क्योंकि वह त्याग का जीवन व्यतीत करते थे। चिरकाल तक उन्हें २५ रु० मासिक वेतन ही मिलता रहा और उसी में वह अपना निर्वाह करते रहे। फिर जब उनका विवाह हो गया तो सभा ने स्वयं उनको ३० रु० देना आरम्भ दिया; आर्यपथिक ने वेतन-वृद्धि के लिए कोई प्रार्थना-पत्र नहीं

दिया था। फिर जब पण्डित लेखराम के घर पुत्र उत्पन्न हुआ और मुझे मालूम हुआ कि उन्होंने “हिन्दू परस्पर सहायक भंडार” में सम्मिलित होने के अतिरिक्त १७ जून १८९५ से “सन् लाइफ इन्श्योरेन्स कम्पनी” में अपने जीवन का बीमा करा लिया, तब मैंने सभा का ध्यान इस ओर आकर्षित करके उनका वेतन ३५ रु० मासिक करा दिया था। शायद यह समझा जावे कि पण्डित लेखराम को अपनी रची हुई पुस्तकों की बिक्री से अधिक आमदनी होती होगी, परन्तु उनकी पुस्तकों का सारा हिसाब-पड़ताल करने से मुझे ज्ञात हुआ कि जब तक आर्यपथिक की पुस्तकों का सारा प्रबन्ध सद्वर्त्म-प्रचारक यन्त्रालय के आधीन (शायद सन् १८९५) नहीं हो गया था तब तक उन्हें पुस्तकों से एक कौड़ी का भी लाभ नहीं होता रहा। पण्डित लेखराम के पीछे कइयों ने ‘आर्य मुसाफिर’ नाम धराये, और उसके सहारे सहस्रों रुपये कमाये; परन्तु आर्यपथिक ने धन जमा करना अपना उद्देश्य रक्खा ही न था और यदि वह अपने जीवन का बीमा न करा जाते तो देवी लक्ष्मी के पास अपने निर्वाह के लिए शायद थोड़े-से आभूषणों के अतिरिक्त कुछ भी न बचता। और वह बीमे का आया हुआ धन क्या लक्ष्मी ने वर्ता? सच्चे ब्राह्मण लेखराम ने अपनी धर्मपत्नी को भी ब्राह्मणी बनाया था और उन्होंने बीमा का पूर्ण २००० रुपये गुरुकुल-कोष में जमा कराके सदा के लिए आर्यपथिक के स्मारक में एक विद्यार्थी पढ़ने की बुनियाद रख दी—मुझे आशा है कि सच्चे ब्राह्मण-कुल के पवित्र दान से पढ़े हुए ब्रह्मचारी भी त्यागी और सच्चे ब्राह्मण ही निकलेंगे।

पण्डित लेखराम प्राचीन ब्राह्मणों की तरह त्यागमूर्ति तो थे, परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि मध्यकालीन चरसिया वैराग्य के वह दास थे। नहीं, प्रत्युत गृहस्थ जीवन का आदर्श भोगने की उनके कर्मों में सदा चेष्टा दिखाई देती है। थोड़े-से धन से ही पुत्र के पालन और गृहस्थ की रक्षा का बड़ा उत्तम प्रबन्ध किया करते थे। सुखदेव को गोद में लेकर खिलाते देख कोई विचारशील पुरुष नहीं कह सकता था कि सच्चे प्रेम का उनमें अभाव है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य वैरागी आर्यों की तरह अपने परिवार से भी उदासीन न रहते थे। परन्तु परिवार के प्रेम में फँसकर, अपने सिद्धान्तों से गिरकर आत्मघाती कभी नहीं बनते थे। इसके प्रमाण में आर्यपथिक का जालन्धर से २४ जून १८९६ को अपने चचा के नाम लिखा हुआ पत्र काफी है। इस पत्र में पण्डित लेखराम लिखते हैं—“पिता जी के देहान्त का समाचार घरवालों ने मुझे नहीं भेजा था। आपके पत्र से ही हम-को पहले-पहल सूचना मिली। मैं ११ व १२ दिन घर रहकर लौट आया और लाला साहब (पिताजी से तात्पर्य) तथा तोताराम—दोनों के मृतक शरीरों की भस्म भी साथ लाया, जो मार्ग में शास्त्र की आज्ञानुसार जेहलम नदी में प्रवाह कर दी। मैं अब यहाँ चार महीने रहूँगा। एक मकान २ रुपये मासिक किराये पर लिया

हुआ है। स्वामी जी का जीवन-चरित्र यहाँ साफ करके, फिर छपवाया जाएगा। जब तक यह न छप जाए तब तक यहाँ ही रहूँगा... घर में (अर्थात् कहूटे में) अब कोई आदमी नहीं है। सैयदपुर के मकान का तो अब फँसला हो ही गया, कहूटे के लोगों से आप परिचित ही हैं; बतलाइये अब मकान कहाँ बनाऊँ? आपने तो रावलपिण्डी में बना लिया, और आप आयुभर वहीं रहेंगे... कोई फूल और कोई कहूटे की सलाह देता है। आर्यसामाजिक भाई प्रत्येक अपने-अपने शहर में सम्मति देते हैं। मैं चाहता था कि यदि ऐसा होता जहाँ आप भी समीप होते तो उचित था। मुझे यद्यपि अब सारा जगत् ही कुटुम्बवत् दिखाई देता है और अपने सम्बन्धियों के साथ भी जन-साधारण से बढ़कर प्रेम नहीं रहा, तथापि रक्त का सम्बन्ध भी कुछ प्रभाव रखता है। आप जो सम्मति उचित समझें अवश्य लिखें... चिरंजीव मुखदेव के दाँत निकल रहे हैं; छः निकल चुके हैं, इसलिए कभी दस्त आ जाते हैं—वैसे वह स्वस्थ है, और उसकी माता भी स्वस्थ है।" इस सम्बन्ध में पण्डित लेखराम की दिनचर्या का समय-विभाग, जो उन्होंने एप्रिल १८९६ ई० की समाप्ति पर लिखा था, बड़ा प्रकाश डालता है—

(१) "चार घड़ी अर्थात् सवा घण्टा रात रहे उठकर शौच के लिए जंगल में जाना, फिर दन्त-धावन और स्नान तथा सन्ध्या; और अग्नि-होत्र सूर्य के उदय होने पर। अग्निहोत्र लक्ष्मी जी (आर्यपथिक की धर्मपत्नी जी) कर लिया करें और कभी-कभी मैं स्वयं भी कर लिया कहूँगा।

प्रत्येक दिन व्यायाम करना, ठीक ४० दण्ड।

(२) वेद-पाठ एक घण्टा; कुरान, तोरेत, इञ्जील का स्वाध्याय एक घण्टा वा अन्य मतों सम्बन्धी पुस्तकादि। ग्रन्थ-निर्माण का कार्य ११ वजे तक।

(३) १२ वजे से २ वजे तक—भोजन, विश्राम, गृहस्थ के कार्यादि और प्यारी लक्ष्मी को पढ़ाना।

(४) ३ से ५ वजे तक पुस्तकावलोकन तथा लेख, विशेषतः ऐतिहासिक विद्या-सम्बन्धी।

(५) मल-त्याग, शौच, सन्ध्या, भ्रमण, व्याख्यान अर्थात् लोगों को सद्धर्म का उपदेश देना। अग्निहोत्र, भोजन, घर का प्रबन्ध—६ से ९ वजे तक।

(६) अपने संशोधन के सम्बन्ध में विचार। सोने से पहले मुँह-हाथ-पाँव धोकर कुल्ला करना और परमेश्वर का ध्यान करना। रात के दस वजे सोना; पूरे छः घण्टे सोना, कम बिल्कुल नहीं। एक चारपाई पर न सोना चाहिए; ऋतुगामी न होना चाहिए।

(७) मलत्याग के लिए अधिक समय न बैठना चाहिए, इससे बवासीर हो जाती है।

(८) खाना जहाँ तक हो सके चबाकर खाना, ३२ बार यदि प्रत्येक ग्रास

चबाया जाए तो कोई बीमारी नहीं होती। खाने के पश्चात् तत्काल ही लघुशंका के लिए बैठना चाहिए क्योंकि इससे मसाने की बीमारी नहीं होती।

(६) प्रातःकाल उठकर पहले अनुमानतः आध पाव के बासी पानी नाक पकड़ कर पीना, जिससे अजीर्ण कभी नहीं होता।

(१०) पाजामे के अन्दर लंगोट रखना चाहिए और लंगोटसमेत नहाना चाहिए। लघुशंका के पश्चात् पानी वा मिट्टी से शुद्धि करनी चाहिए, जिससे शरीर अपवित्र न हो। व्यर्थ क्रोध न करना चाहिए, कटु वचन तथा झूठ से अलग रहना और “दीन-ए-इस्लाम” की विषयुक्त शिक्षा के बुरे प्रभाव को दूर करने का प्रयत्न; और इसी प्रकार दूसरे मतों का भी; और वैदिक धर्म का प्रचार। ईश्वर ! मेरी इस इच्छा को आप पूर्ण कर दो।”

जालन्धर में गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी जहाँ ऋषिजीवन-चरित्र की तैयारी का काम जारी था वहाँ स्थानीय प्रचार के अतिरिक्त बाहर धर्मोपदेशों के लिए जाना भी बन्द नहीं हुआ था। २९ से ३१ मई १८९६ तक रोपड़ आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होकर अपने व्याख्यानों से सोये हुए कायर हिन्दुओं को वीर आर्य बनने की प्रेरणा करते रहे। द्वारिका मठ के शंकर स्वामी इसी वर्ष की ग्रीष्म ऋतु में जालन्धर पधारे थे। उनके मुकाबिले में जो बड़े-बड़े आर्य विद्वानों के व्याख्यान हुए उनमें से पण्डित लेखराम का व्याख्यान बहुत ही हलचल मचानेवाला था। इन्हीं दिनों पण्डित लेखराम ने कर्तारपुर (जिला जालन्धर) में आर्य धर्म की रक्षा के लिए दो बार जाकर धर्मोपदेश दिये और ऐसी जबरदस्त धार्मिक हलचल मचाई कि वहाँ एक प्रबल आर्यसमाज स्थापित हो गया।

यह पहले लिखा जा चुका है कि विवाह के दिन से ही पण्डित लेखराम जी ने अपनी धर्मपत्नी को पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। जिस प्रकार अन्य विषयों में उनके उपदेश क्रियात्मक होते थे उसी प्रकार स्त्री-शिक्षा का प्रचार भी जीवन द्वारा करते थे। जालन्धर में रहते हुए लक्ष्मीदेवी जी को स्त्री-समाज के अधिवेशन और अन्य सब धार्मिक उत्सवों में भी सम्मिलित होने के लिए भेजते रहे। जिस प्रकार स्वयं सच्चे ब्राह्मण बने हुए पुरुष जाति के उद्धार के लिए काम करते थे, उसी प्रकार लक्ष्मीदेवी जी को स्त्री जाति की सेवा के लिए तैयार करना चाहते थे। मुझसे धर्मवीर ने देशान्तर-प्रचार के लिए गोष्ठी करते हुए अपने जीवन का सारा समय-विभाग कई बार बतलाया था। इस समय-विभाग में प्रायः लक्ष्मीदेवी का मुख्य भाग होता था। यदि वानप्रस्थ का विचार आता तो उसमें भी लक्ष्मीदेवी का जिन्न आता। धर्मवीर लेखराम लक्ष्मीदेवी को क्या बनाना चाहते थे, वह उस समय-विभाग से पता लगता है जो मैं ऊपर उद्धृत कर चुका हूँ। लक्ष्मीदेवी में विनय और लज्जा का भाव बहुत ही विचित्र था; जिन दो देवियों से

उनका हृदय मिला हुआ था, उनके सिवाय बहुत कम स्त्रियों से भी खुलकर बात करतीं। पण्डित लेखराम जी चाहते थे कि उनकी धर्मपत्नी धर्म-प्रचार-विषयक योजना में उनसे सहायता लेकर अपनी बहिनों को वैदिकधर्म की ओर प्रेरित करें। उन्होंने लक्ष्मीदेवी का हाँसला बढ़ाने के लिए मुझसे साधन पूछे। मैंने सम्मति दी कि श्रीमती लक्ष्मीदेवी जी को अपने साथ आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सवों पर ले जाया करें। पण्डित लेखराम ने उसी पर अमल करना शुरू कर दिया। अम्बाला और मथुरा आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सवों पर देवी जी को अपने साथ ले गए जहाँ से उनका पुत्र बीमार होकर लौटा। मथुरा आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव १६-१७ अगस्त १८९६ को था। बीमार पुत्र को वहाँ से जालन्धर छोड़कर पण्डित लेखराम शिमला आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। वहाँ से जब २६ अगस्त को जालन्धर लौटे तो प्यारे सुखदेव की बीमारी बढ़ी हुई देखी। हम सब ने चिकित्सा तथा निदान कराने में कुछ उठा नहीं रक्खा परन्तु हम सबके देखते-देखते पण्डित लेखराम का प्यारा पुत्र २८ अगस्त १८९६ के दिन सवा वर्ष की आयु में, इस भौतिक शरीर को त्यागकर स्वर्गलोक का पथगामी बना। उस समय पण्डित लेखराम की सहन-शक्ति का मैंने चमत्कार ही देखा था। किसी प्रकार के भी शोक को समीप नहीं आने देते थे।

परन्तु बच्चे की दुखिया माता के हृदय पर बड़ा भारी वज्रपात दिखाई देता था। जिस जालन्धर की भूमि में पुत्ररूपी रत्न प्राप्त किया था, उसी भूमि पर उसको राख करके फिर कोमलहृदया भारतरमणी से कब वहाँ निवास किया जा सकता था ! धर्मपत्नी को लेकर पण्डित लेखराम घर पहुँचाने चले गए और दो दिनों के पश्चात् पूर्ववत् ही धर्म-प्रचार में सन्नद्ध हो गए।

भ्रमण और प्रचार

जुलाई के आरम्भ में पसरूर (जिला सियालकोट) से पण्डित लेखराम के लिए माँग आई। आ० प्र० सभा के एक प्रचारक ने महम्मदी जगत् को हिला दिया था। इसपर तीन महम्मदी प्रचारक बुलाए गए जिनसे शास्त्रार्थ की छेड़-छाड़ शुरू हुई। तब पण्डित लेखराम के लिए तार पहुँचा। १८ जुलाई १८९६ को आर्यपथिक जालन्धर से चले और १९ को सायंकाल पसरूर में पहुँच गए। उसी समय बड़ा भारी नगर-कीर्तन हुआ। २० जुलाई को पहला व्याख्यान “वैदिक धर्म की श्रेष्ठता” पर हुआ जिसमें ८०० हिन्दुओं के साथ २०० मुसलमान भी उपस्थित थे। व्याख्यान की समाप्ति पर पसरूर में उपस्थित पाँच मौलवियों को प्रश्न करने का अवसर दिया गया परन्तु सिवाय एक मौलवी के और कोई न उठा और उसने भी केवल आर्यपथिक की बातों को दोहरा दिया। दूसरे व्याख्यान का विषय था ‘सच्चाई की मजबूत चट्टान’ मौलवी लोगों ने पत्र-व्यवहार में ही समय समाप्त किया और पण्डित लेखराम दो और व्याख्यान देकर जालन्धर लौट आए।

पसरूर के सम्बन्ध में एक घटना लाला गणेशदास सियालकोटी ने लिखी है जो धर्मवीर लेखराम के निडर आत्मा की साक्षी है। तीसरे दिन पण्डित लेखराम व्याख्यान के लिए अभी खड़े होने की तैयारी कर रहे थे कि एक बड़े प्रसिद्ध म्युनिसिपल कमिश्नर आए और महाशय मथुरादास प्रचारक के पास बैठकर कुछ कानाफूसी करने लगे। आर्यपथिक ने कहा—“घुसपुस क्या करते हो? क्या बात है?” प्रचारक मथुरादास जी ने कहा कि यह महाशय थानेदार साहब का सन्देश लाए हैं कि यदि बलवा हो गया तो पुलिस जिम्मेदार न होगी। आर्यपथिक की आँखें लाल हो गईं और कड़ककर बोले—“क्या हम युद्ध करने आए हैं? हम तो धर्मोपदेश के लिए आए हैं, सो हम जब तक चाहेंगे स्वतन्त्रता से करेंगे। जिसका जी चाहे सुने, जिसका जी न चाहे न सुने। अगर यों ही बलवा हो तो पड़ा हो। हम देखेंगे कौन बलवा करता है। हम थानेदार साहब वा और किसी साहब की रक्षा की परवाह नहीं करते।”

जब व्याख्यान के लिए खड़े हुए तो देखा कि टाउन पुलिस के कुछ चौकीदार

१. आर्याभिविनय के उर्दू अनुवादक। —सम्पादक

हाथभर का लम्बा डण्डा लिये खड़े हैं। उनकी ओर देखकर अटक-अटककर कड़कते हुए बोले—“ओ काली पगड़ीवालो ! अगर व्याख्यान सुनना है तो अपनी खुशी से ठहरो, नहीं तो तुम्हारी रक्षा की हमें परवाह नहीं है; अभी चले जाओ। मैं देखूंगा कि कौन मुझे काट जाता है।”

पसरूर से निवृत्त होकर पण्डित लेखराम शिमला आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए चले गए। वहाँ पहले से मिर्जा गुलाम अहमद के चले खाजा कमालुद्दीन ने अपने मिशन का काम जारी कर रखा था। पण्डित लेखराम खाजा साहेब के व्याख्यानों को सुनने जाते रहे और फिर आर्य-मन्दिर में तीन बड़े जबरदस्त व्याख्यान दिये। मुहम्मदियों की निम्नाज के मुकाबिले में आर्यों की सन्ध्या की श्रेष्ठता जतलाई और वैदिक धर्म के सौन्दर्य को भली प्रकार प्रकाशित किया। मुसलमान तो पण्डित लेखराम के आक्रमणों से मुदत से तंग आए हुए थे, परन्तु उन दिनों आर्यपथिक ने एक नयी पुस्तक ‘हुज्जतुल इस्लाम’ का नोटिस दे रखा था। मुसलमान सुन चुके थे कि पण्डित लेखराम इस पुस्तक में मुहम्मदी मत के विरुद्ध अपना सारा जोर लगायेंगे। इससे पहले मिर्जा गुलामअहमद कादियानी, आर्यपथिक की अकाद्यू युक्तियों से तंग आकर, जवाब देने की ताब न रखते हुए उन्हें मौत की धमकी दे चुका था और लिखा था—

“इलाए-दुश्मन ना अन व बेरा

वतर्स अज तेरो वरां मुहस।”

कि मुहम्मदी तलवार से डरे और इस्लाम के विरुद्ध लिखना छोड़ दे। इन सब अवस्थाओं के होते हुए जब मिर्जा कादियानी के चले ने हिन्दुओं के अन्धविश्वासों का आर्यसमाज पर मढ़ना शुरू किया तो अपने अन्तिम व्याख्यान में पण्डित लेखराम ने यह सिद्ध करने के लिए प्रमाण दिये कि इस्लाम के पैगम्बरों ने खुदाई का दावा करके कुफ्र फैलाया है। जो प्रमाण आर्यपथिक ने उस समय दिये थे वे सब ‘हुज्जतुल इस्लाम’ में पीछे छप गए हैं। सारा सभा-मंडप मनुष्यों से भरा हुआ था, जिनमें आधे मुसलमान थे। जब पण्डित लेखराम ने अन्त्यो के प्रमाण देते-देते एक आयत पढ़ी जिसका अर्थ था—“मैं खुदा का नूर हूँ।” और इसपर एक कवि का वचन पढ़ा—

“ब जाहिर नूर अन्दर से जोआहे,

शमाए नूर वे कफ़ खोआहे।”

जिसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि मुहम्मद ब्रह्म के प्रकाश से जुदा प्रतीत होता है, परन्तु वह है वही ब्रह्म। मुसलमानों की जमात में से एक युवक-मंडल से रहा न गया और उनमें से एक युवक बी० ए० ने चीखकर कहा—‘काफिरों को काटने-वाली मुहम्मदी शमशीर को मत भूल !’ पण्डित लेखराम एक पल के लिए रुक गए; फिर जिधर से शब्द सुने थे उधर आँखें घुमाकर सिंहनाद गुँजा दिया—“मुझे

बुजदिल मुहम्मदी तलवार की धमकी देता है। मैंने अधर्मी निर्बल मनुष्यों से डरना नहीं सीखा। जानते नहीं हो मैं जान हथेली पर लिये फिरता हूँ ?”

सारे हाल मैं सन्नाटा छा गया और व्याख्यान के अन्त तक फिर किसी ने चूँ न की। जैसा कि मैं पहले बतला चुका हूँ शिमला से पण्डित लेखराम सीधे जालन्धर गए थे जहाँ अपने एकलौते पुत्र का उन्हें अन्त्येष्टि संस्कार करना पड़ा। जालन्धर से परिवार को छोड़कर पण्डित लेखराम सीधे वजीराबाद के वार्षिकोत्सव में सितम्बर १८९६ के आरम्भ में ही पहुँच गए। इसके विषय में श्रीनारायणकृष्ण जी प्रधान आर्यसमाज गुजरावाला^१ ने लिखा है—

“आर्यपथिक सब बातों पर आर्यसमाज के काम को तर्जिह दिया करते थे। हम लोगों को याद है कि एक बार जब हम लोग वजीराबाद के उत्सव पर गए हुए थे तो वहाँ हमको समाचार मिला कि पण्डित लेखराम का एकलौता बेटा संसार से चल बसा है। वजीराबाद में पहले उनके आने की खबर बड़ी गर्म थी, परन्तु इस शोक-जनक समाचार को सुनकर समझा गया कि अब पण्डित जी नहीं आ सकेंगे। परन्तु थोड़ी देर के पश्चात् आश्चर्य से देखा कि वह अपने घर से सीधे उत्सव में आ पहुँचे और ऐसी शोक-जनक घटना के होते हुए भी अपने धार्मिक कर्तव्य को बड़ी गम्भीरता से पालन करते रहे।”

वजीराबाद के इस वार्षिकोत्सव में मैं भी सम्मिलित था। पहले दिन पण्डित लेखराम जी का व्याख्यान प्रातःकाल के समय-विभाग में छपा हुआ था, परन्तु राजा सर अताउल्ला और उनके परिवार के सम्मिलित होने के कारण उस समय मुझे खड़ा किया गया। न जाने मुसलमान भाई पण्डित लेखराम से क्या आशा रखते थे कि मेरे व्याख्यान को सुनकर विस्मित हो गए। उनकी समझ में न आया कि आर्यमुसाफिर क्यों ऐसा जन-प्रिय तथा शान्तिवर्धक व्याख्यान देता है। मेरा विषय ईश्वर-प्राप्ति था और मैंने उसमें मुहम्मदी वृत्त और पीरपरस्ती की खबर ली थी; श्रोतागण को निश्चय हो गया कि पण्डित लेखराम ही बोल रहे हैं।

सायंकाल के व्याख्यान में मेरा नाम था, इसलिए उस समय कादियानी मिर्जा गुलाम अहमद के चेले हकीम नूरुद्दीन भी तशरीफ लाए। मुसलमानों की भी पर्याप्त उपस्थिति थी, जब पण्डित लेखराम व्याख्यान के लिए खड़े हुए। उस व्याख्यान में पण्डित लेखराम ने ईश्वर का स्वरूप ऐसा खींचा कि मुसलमानों के सिर हिलने लग गए। फिर जब भूठे पैगम्बरों की पोल खोलनी शुरू की तो जहाँ मुसलमान सर्वसाधारण करतालिका-ध्वनि से सभामंडप को गुँजाने लगे वहाँ मौलवी नूरुद्दीन बहुत खीज रहे थे, परन्तु उस समय क्या हो सकता था! आर्य-पथिक के व्याख्यान की नगर में धूम मच गई।

१. ऋषि दयानन्द के भक्त मुंशी केवलकृष्ण के भाई थे। — सम्पादक

सायंकाल हम सब पलकू के किनारे-किनारे स्रोत की ओर दूर निकल गए और सन्ध्या-वन्दन से निवृत्त होकर रात को लौट रहे थे कि नगर से बाहर एक मस्जिद के खुले मैदान में मौलवी तूरुद्दीन अपना धर्म-प्रचार कर रहे थे। रात अन्धेरी थी, हम सब सुनने खड़े हो गए। मौलवी साहब बोले—“अरे बेवकूफो ! तुम सब बकरो की तरह दाढ़ी हिला रहे थे और यह न समझे कि तुम्हारे ईमान पर कुल्हाड़ा चला रहा है ?” इतना ही सुनकर मैंने पण्डित लेखराम जी को उनकी कृतकार्यता पर बधाई दी और हम सब भोजनशाला को चल दिये।

मुझे यह भी याद पड़ता है कि दूसरे दिन बाजार में आर्यपथिक की कुछ मुसलमानों से बातचीत होने लगी, जिसपर आर्य पुरुष घबरा गए थे; परन्तु उसका परिणाम अच्छा ही निकला।

हम सब वजीरावाद आर्यसमाज के उत्सव में ही सम्मिलित थे कि मुकेरियाँ के एक भाई वहाँ के अधिकारियों का पत्र लेकर पहुँचे जिससे पता लगा कि वहाँ एक विचित्र प्रकार का शास्त्रार्थ रचा गया है। सनातन सभा के किसी पण्डित ने महाभारत के एक श्लोक को वेदमन्त्र कहकर पेश किया, जिसपर आर्यसमाज तथा सनातन सभा के प्रधानों का विवाद हो गया और दोनों के हस्ताक्षर से एक स्वीकारपत्र स्टाम्प पर लिखा गया। इस स्वीकारपत्र का तात्पर्य यह था कि यदि सनातन सभा का पण्डित अपने बोले श्लोक को वेद में दिखा दे तो आर्यसमाज के प्रधान ५०० रुपये जुरमाना देंगे, परन्तु यदि सनातन सभा का पण्डित ऐसा न दिखा सके तो सनातन सभा का प्रधान ५० रुपये जुरमाना देगा। मैंने इस जुआवाजी के शास्त्रार्थ से इन्कार करना चाहा, परन्तु आर्यपथिक ने कहा कि जुआवाजी को अलग करके यह तो हमारा कर्त्तव्य है कि अपने मत का समर्थन किया जाए। वस हम दोनों गुरुदासपुर पहुँचकर इक्के पर ६ सितम्बर को २ वजे दिन को मुकेरियाँ पहुँच गए। उस दिन मैंने और दूसरे दिन आर्यपथिक ने व्याख्यान दिये। तीसरे दिन २००० की उपस्थिति में सनातनी बड़े-बड़े पण्डित भी श्लोक को वेदमन्त्र सिद्ध न कर सके।

परन्तु इस स्थान की एक घटना पण्डित लेखराम के हठ और उनके धर्म-प्रेम दोनों का परिचय देती है। मैं यतः मन्त्रों का उच्चारणादि शुद्ध कर सकता था इसलिए मुकेरियाँ के आर्य भाई चाहते थे कि शास्त्रार्थ मैं करूँ। उनको यह भी डर था कि कहीं पण्डित लेखराम अपने अक्खड़पन से उलटा असर न डाल दें। जब वेदों में आन्दोलन करके देख लिया कि विवादास्पद छन्द वेद-मन्त्र नहीं प्रत्युत महाभारत का श्लोक है तो मैंने कहा कि हममें से एक को अब जाने दो क्योंकि हम दोनों को जगराओं आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होना है और वहाँ १२ सितम्बर के प्रातः पहुँचने के लिए मुकेरियाँ से ११ के प्रातःकाल चल देना चाहिए। जाने को मैं स्वयं तैयार हुआ जिसपर तीन-चार बार यही उत्तर

मिला कि इक्का नहीं मिलता; फिर यह निश्चय हुआ कि पण्डित लेखराम जी जाएँ। यह निश्चय होना ही था कि पाँच मिनटों में बड़ा तेज इक्का लाकर खड़ा कर दिया गया। पण्डित लेखराम जी असल बात ताड़ गए और बोले—“अब बड़ी जल्दी इक्का आ गया? जाओ, मैं नहीं जाता, ये तुम्हारी शरारत समझ गया हूँ।” मैंने इक्का ले-जाने को कहा और आर्यभाई धवराये कि अब शास्त्रार्थ में पण्डित लेखराम जी खड़े होकर कहीं काम न बिगाड़ें। जब शास्त्रार्थ के मैदान में आए और मैंने पण्डित लेखराम को कुर्सी पर बैठने को कहा तो उनमें विचित्र परिवर्तन दिखाई दिया। ऐसा ज्ञात होता था कि सारे शास्त्रार्थ का उत्तरदातृत्व उन्हीं पर है और यह उनका ही कर्त्तव्य है कि सबसे योग्य आदमी को शास्त्रार्थ के आसन पर बैठावें। मुझे कहा—“लाला जी! बैठिये, शास्त्रार्थ आप करेंगे।” मैंने कहा कि पण्डित लेखराम की उपस्थिति में मैं कैसे बैठ सकता हूँ? उत्तर बड़े प्रेम और आग्रहपूर्वक था; मुस्कराकर बोले—“यह बात अब जाने दीजिए, यह आपका ही काम है। यदि मैं बैठ गया तो शास्त्रार्थ की रिपोर्ट कौन लिखेगा?” यह कहा और मुझे पकड़कर कुर्सी पर बैठा दिया।

यह आचरण का परस्पर विरोध शायद सबकी समझ में न आएगा, परन्तु बुद्धिमान् पाठक इसके रहस्य को समझ जाएँगे।

१२ सितम्बर को मुकेरियाँ से चलकर दिन-रात यात्रा करते हुए हम दोनों १३ को प्रातः जगराओं के वार्षिकोत्सव में जाकर सम्मिलित हुए। जो रहतिये पीछे से शुद्ध होकर आर्यसमाज में सम्मिलित हुए थे, वे पहले इसी स्थान में पण्डित लेखराम जी को मिले थे।

जगराओं में फिर नियत घटना आकर उपस्थित हुई। वहाँ के पौराणिकों ने स्वयं आर्यसमाज का सामना करने की शक्ति न देखते हुए मुसलमानों को मुवाहसे के लिए खड़ा किया। तहसीलदार भी मुसलमान था, इसलिए उन्हें विजय की बड़ी आशा थी। मैं जब उत्सव समाप्त करके लौटने लगा तो कुछ आर्य भाइयों ने वहाँ भी मेरी मिन्नत की कि मैं आर्यपथिक को साथ ही ले जाऊँ। मैंने मालेर-कोटले की व्यथा याद करके ऐसा करने से इन्कार कर दिया। शहर में धूम मच गई कि आर्यों को और विशेषतः लेखराम को, कष्ट दिया जाएगा। परन्तु सिंह के समीप जाना बड़ा कठिन था; विरोधियों की पोल खोलने से पहले आर्यपथिक लेखराम जगराओं से न हिले।

२६-२७ सितम्बर को पण्डित लेखराम भंग आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में व्याख्यान देते तथा शंका-समाधान करते रहे।

नवम्बर के अन्त में लाहौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होकर व्याख्यान दिये और उसके पश्चात् फिर २७ दिसम्बर १८९६ के दिन जालन्धर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर पहुँचे। इन दोनों महीनों, लाहौर रहकर जीवन-

चरित्र की तैयारी और छपाई का काम निर्विघ्नता से होता रहा और अपनी माता तथा धर्म-पत्नी को भी आर्यपथिक ने लाहौर में ही टिका दिया। जालन्धर आर्य-समाज के वार्षिकोत्सव पर व्याख्यान देकर पण्डित लेखराम मेरे साथ ही लुधियाना आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर गए। उस स्थान की एक घटना वर्णनीय है जिससे पता लगता है कि प्रतिज्ञा-पालन का भाव आर्यपथिक को कैसा दृढ़संकल्प बनाये हुए था।

लुधियाना आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर अन्तिम दिवस पण्डित लेखराम का व्याख्यान नियत था। उससे पहले मैंने वेद-प्रचार-निधि के लिए अपील की थी और जब धन एकत्रित हो चुका तो पण्डित लेखराम व्याख्यान के लिए खड़े हुए। ११ माघ संवत् १९५३ के 'सद्धर्म प्रचारक' में लिखा है—“अभी व्याख्यान आरम्भ नहीं किया था कि पण्डित जी की प्रकृति कुछ रुग्ण हो गई (पेट में दर्द होने लगा था) जिस कारण वह अपना व्याख्यान न दे सके। उनके स्थान में लाला मुंशीराम जी ने धर्म विषय पर.....व्याख्यान दिया.....उनके पश्चात् पण्डित जी की प्रकृति कुछ ठीक हो गई और उनका व्याख्यान आरम्भ हुआ।.....जनोपस्थिति १२०० के लगभग थी।” २९ दिसम्बर की रात को लुधियाना आर्यसमाज का उत्सव समाप्त हुआ और ३१ की शाम को पण्डित लेखराम रेल और टट्टर की यात्रा करते हुए शरकपुर आर्यसमाज में पहुँचे और १ जनवरी १८९७ के दिन धर्म-चर्चा में पूरा भाग लेने के अतिरिक्त एक पतित की शुद्धि की और अपने प्रभाव-शाली व्याख्यान के साथ वार्षिकोत्सव को समाप्त किया। शरकपुर से लौटकर फिर पण्डित लेखराम के भागोवाला (जिला गुरुदासपुर) आर्यसमाज के उत्सव में ही सम्मिलित होने का पता लगता है जो १७ और १८ जनवरी को हुआ। उत्सव में पण्डित लेखराम जी ने दो व्याख्यान दिये और उत्सव के पश्चात् तक ठहरकर चौधरी फतेहसिंह के लड़के का नामकरण संस्कार कराया तथा आर्यसमाज के कुछ नये सभासद बनाए। यह सब तो किया, परन्तु मुझे जिस दृश्य में अधिक आनन्द आया वह उत्सव के समय शास्त्रार्थ था।

सायंकाल अपना व्याख्यान समाप्त करके मैं सन्ध्या-वन्दन के लिए चला गया। फिर भोजन करके बैठा था जब पता लगा कि एक मुसलमान ग्रेजुएट के साथ पण्डित लेखराम का शास्त्रार्थ हो रहा है। कम्बल ओढ़कर मैं शास्त्रार्थ का आनन्द लेने चल दिया। जनोपस्थिति ढाई हजार से कम न होगी। आसपास के ग्राम स्त्री-पुरुषों से खाली हो गए थे। इनमें दो सहस्र तो जाट थे और शेष ब्राह्मण, खत्री, मुसलमानादि। एक तुर्की टोपीवाला एक ओर और आर्यमुसाफिर दूसरी ओर बैठे हैं। प्रश्नकर्ता 'तुर्की टोपी' थे और उत्तरदाता पण्डित लेखराम। पण्डित लेखराम मेरे आने से पहले यह प्रतिज्ञा स्थापन कर चुके थे कि उत्तर में दुर्जन-तोष-न्याय के अनुसार जो कुछ वह कहेंगे उसके लिए कुरान वा हदीस मूल का प्रमाण

देंगे और पूछा था कि “क्या मुहम्मदी प्रश्नकर्त्ता भी ऐसी प्रतिज्ञा करने को तैयार हैं ?” तुर्की टोपी उत्तर दे चुकी थी कि वह भी मूल वेद का ही प्रमाण देंगे। मुहम्मदी ग्रेजुएट ने प्रश्न नियोग विषय पर कर छोड़ा था और जब मैं पहुँचा तो एक पुस्तक हाथ में लिये उसमें से कुछ पढ़ रहा था। मेरे सामने निम्नलिखित नाटक हुआ—

मुहम्मदी—“देखिए हवाला रगवैद, मन्दिल.....सोकत.....”

आर्यपथिक—“शुद्ध उच्चारण तक नहीं कर सकते हो और वेद-दानी का दावा है ! वस तुम निग्रह स्थान में आ गए। या तो दावा छोड़ो या हार मानो।”

मुहम्मदी—“अजी हम वेद जानें या न जानें, एतराज तो ठीक है ?”

आर्यपथिक—“पहले कहो—मैंने झूठ बोला कि मैं मूल वेद जानता हूँ और झूठ मारी—यह कहो, तब मुवाहसा आगे चलेगा।”

मुहम्मदी ग्रेजुएट ने बहुत हेरा-फेरी की परन्तु अन्त में उसको कहना ही पड़ा—“अच्छा मैंने गलत कहा था कि मैं मूल वेद में से हवाले दूँगा। अब मेरे सवाल का जवाब दीजिए।”

आर्यपथिक—“आए अब राह-ए-रास्त (सीधे मार्ग) पर। हाँ, अब जवाब देता हूँ।”

मेरे पास दस बीस पढ़े-लिखे मुसलमान और दो-तीन मौलवी खड़े थे, सब बोल उठे—“सुबहानस्ल्ला ! क्या ताकस मुनाजरा है ! शेर के पंजे में फँसा हुआ है।”

पण्डित लेखराम ने न केवल वैदिक नियोग का ही भली प्रकार मण्डन किया प्रत्युत मुसलमानों के मुता के मसले को भी पेश किया। इसपर मुहम्मदी ग्रेजुएट ने कहा—“सिर्फ कुरान की आयत पढ़ देने से काम न चलेगा। किसी मुस्तनिद तफसीर (प्रामाणिक भाष्य) का हवाला भी देना होगा।”

आर्यपथिक—“अच्छा बतलाओ तुम किस तफसीर को मुस्तनिद मानते हो ?”

मुहम्मदी ग्रेजुएट ने जिस तफसीर का नाम लिया वही पण्डित लेखराम के हाथ में थी, उन्होंने उसमें से पढ़कर सुना दिया। मालूम होता है कि तुर्की टोपी ने कभी कोई तफसीर पढ़ी न थी; पण्डित लेखराम से किताब खुद पढ़ने को माँगी। यहाँ पण्डित लेखराम की हाजिरजवाबी काम आई। मुहम्मदी ग्रेजुएट मुवाहसे में एक स्थान में कह चुका था कि “खुदा को बीच में क्यों घसीटते हो ? क्या लाजमी है कि खुदा को मानकर ही मुवाहसा चले ?” इसी का सहारा लेकर और सामने खड़े एक वृद्ध मौलवी साहेब को सम्बोधन करके आर्यपथिक ने कहा—

“मौलवी साहेब ! आप तशरीफ लाकर हाजरीन को पढ़ सुनाइए कि कुरान शरीफ की तफसीर में क्या लिखा है। इस दहरिये (नास्तिक) के हाथ में मैं कुरान

शरीफ न दूंगा।”

मौलवी साहेब को कोई आकर्षणशक्ति वेदी पर खींच ले गई और उन्होंने तफसीर के शब्द ज्यों-के-त्यों पढ़कर अपनी ओर से यह भी कह दिया—“कौन कहता है कि कलाम मजीद में मुता का हुक्म नहीं है?”

सभामण्डप करतालिका-ध्वनि से गूँज उठा और सभा विसर्जन हुई।

इसके पश्चात् पण्डित लेखराम जमकर लाहौर में ही जीवन-चरित्र का काम करते रहे और उनके कहीं बाहर प्रचार के लिए जाने का पता नहीं लगता। मैंने भी उनका यह अन्तिम व्याख्यान सुना; इसके पश्चात् पण्डित लेखराम का सबसे अन्तिम प्रचार मुल्तान नगर में हुआ जिसका हल उनके पत्र से ज्ञात होता है जो उन्होंने ४ मार्च को ११ बजे रात्रि के समय, मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा को लिखा था—“मेरे यहाँ ४ व्याख्यान हुए, खूब रौनक रही। मेरे सक्कर जाने के लिए यहाँ के समाज की सम्मति नहीं है, क्योंकि वहाँ क्वारण्टीन बीमारी का लगा हुआ है। मुझे आग्रहपूर्वक उन्होंने रोक लिया है और आपको तार दे दी है। मुजफ्फरगढ़ में दूसरा समाज होने की शंका है इसलिए आज रात को वहाँ जाता हूँ।”

पाठकवृन्द ! आपने आर्यपथिक के जीवन के साथ-साथ इतनी यात्रा की, आपका उत्साह बढ़ता गया और इस पवित्र जीवन के साथ प्रेम की वृद्धि होती गई। क्या आप अकस्मात् इस जीवन की शृंखला को टूटते देखकर दुःखित न होंगे ? मैं भी उसी प्रकार दुःखित हूँ और चाहता नहीं कि उसका वर्णन शीघ्र समाप्त हो। परन्तु काल की गति के आगे किसका वश चला है ! फिर भी मुल्तान के अन्तिम प्रचार को विस्तृत करके सिर पर आई हुई आपत्ति को कुछ काल के लिए टालना चाहता हूँ।

मुल्तान में कॉलिज दल वालों की ओर से दूसरा आर्यसमाज खुला हुआ था। उन्होंने आर्य प्रतिनिधि सभा के काम के विषय में कुछ भ्रम फैलाये थे जिन्हें दूर करने के लिए पण्डित लेखराम गए थे। पण्डित लेखराम जी के मुकाबिले में उन लोगों ने भी व्याख्यान कराये जिनमें पण्डित लेखराम को अपशब्द हीन कहे गए प्रत्युत सिक्खों को भड़काने के लिए उन्हें गुरु-निन्दक बतलाया गया। ऐसी अवस्था हो चुकी थी जब ४ मार्च को पण्डित लेखराम का इस जीवन में अन्तिम व्याख्यान हुआ। इसका आँखोंदेखा हाल एक सभ्य पुरुष ने १४ वर्ष हुए, मुझे लिखकर भेजा था जिसे यहाँ उद्धृत करता हूँ—

“पण्डित (लेखराम) जी के व्याख्यान कुम्भवंगरीगीराँ और समाज-मन्दिर में होते रहे। मैंने जाकर मुसलमानों से कहा कि उनसे मुवाहसा कर लो। वे कहते लगे कि यह बड़ा आलिम है, हम उसकी बराबरी नहीं कर सकते। एक दिन

पण्डित जी ने लाला काशीराम^१ वकील को जो उस समय कलचर्ड समाज के प्रधान थे, और चेतनानन्द जी (वकील) को समाज-मन्दिर में बुलवाया और उनसे कहा—“देखो मिर्जा ने कैसी सख्त किताब लिखी है जो कि अनजानों को भ्रम में डाल सकती है ! इसका उत्तर अवश्य देना चाहिए। आप लोग निरे लड़ाई-भगड़ों में पड़े हुए हो ” बहुत-सी बातचीत हुई परन्तु कुछ परिणाम न निकला, बल्कि उसी दिन उन लोगों ने भाई जगतसिंह का व्याख्यान कुम्भवंगरीगीराँ में कराया। वहाँ खालसों की उपस्थिति खासी थी जिसमें लाला काशीराम और लाला चेतनानन्द ने स्वयं कहा कि पण्डित लेखराम कहता है कि गुरु नानक मुसलमान था इसलिए उसका समाज से कोई सम्बन्ध नहीं। मैं कुछ भाइयों समेत पण्डित जी के दर्शन को गया और व्याख्यान का सारा हाल उन्हें सुनाया। कुछ देर सोचने के पश्चात् बातचीत करते हुए पण्डित जी के मुँह से निकला—“कौन कहता है कि गुरु नानक मुसलमान थे ? चलो कल यही व्याख्यान होगा।”

“नोटिस रात को ही लिखे गए। दूसरे दिन चार बजे मध्याह्नोत्तर में समाज-मन्दिर में गया। कई भाइयों के प्रश्नों के उत्तर देते रहे। फिर अजवाइन मँगाई और साफ करके पानी के साथ खा ली और कहा—रेल में यही मेरा जीवन है, यह बड़ी उत्तम ओषधि है।” सात बजते ही पण्डित जी मैदान में पहुँचे। हम लोग भजन गाते थे और पण्डित जी पेन्सिल से व्याख्यान के लिए नोट लिख रहे थे। सिक्ख भड़काए हुए बड़े जोश से लाठियाँ लिये जमा थे। व्याख्यान आरम्भ हुआ। आर्या-वर्त की अवन्ति के आरम्भकाल से वक्तृता को उठाकर परस्पर के द्वेष के बीज का खोज लगाते हुए बतलाया कि थोड़े-से स्वार्थ ने आर्यावर्त का नाश कर दिया है। आपने बतलाया है कि महमूद और अलाउद्दीन के विजय का साधक तुच्छ जीवों का स्वार्थ ही था। बहुत-से दृष्टान्तों के पश्चात् आपने विष्णु बाबा,^२ मुंशी इन्द्रमणि और स्वामी दयानन्द की हिम्मत का वर्णन किया जिन्होंने विरोधी आक्रमणों से आर्य-जाति को बचाने के प्रयत्न किया। इसके पश्चात् अपने विषय को लेकर मिर्जा गुलाम अहमद की ‘सतवचन’ पुस्तक में से गुरु नानक के मुसलमान होने के विषय में लेख पढ़कर चारों ओर देख पूछा—“यदि कोई खालसा बहादुर विद्यमान हैं तो इसका जवाब दें।” फिर बड़े प्रबल प्रमाणों और युक्तियों से सिद्ध किया कि गुरु नानक मुसलमान न थे।

व्याख्यान की समाप्ति पर लाला चेतनानन्द जी के मुंशी ने विघ्न डालले की नीयत से कहा—“पण्डित (लेखराम) जी ने (अपने व्याख्यान में) गुरु नानक को

१. आर्यपथिक की मृत्यु के पश्चात् यह फिर वेद-प्रचार-दल के समाज के प्रधान हो गए थे।

२. महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सुधारक विष्णु बुवा ब्रह्मचारी।

—सम्पादक

हिन्दू तो कहीं नहीं कहा !” इस कुटिल नीति को भी पण्डित लेखराम की हाजिर-जवाबी ने परास्त कर दिया । आर्यपथिक बोले—

“देखो बाबा नानकदेव स्वयं क्या कहते हैं—

हिन्दू अन्हा (अन्धा)तुकों काणा ।

दोहां विच्चों ज्ञानी स्याणा ।

बाबा नानक जी ज्ञानी अर्थात् आर्य थे, गुलाम हिन्दू न थे ।”

हमारे चरित्रनायक के जीवन की रंग-भूमि में अन्तिम जवनिका उठनेवाली है । वह अन्तिम दृश्य बड़ा ही मर्म-भेदक, गम्भीर और पवित्र है जो अपने स्थिर संस्कार आर्य जनता पर छोड़ गया है । उसकी अन्तिम जवनिका के गिरने के पश्चात् कुछ लिखना पाठकों के उच्च आदर्श की ओर उठे हुए हृदयों को फिर से भूमितल पर पटकने के सदृश होगा, इसलिए आइए ! इस जीवन पर एक व्यापक दृष्टि पहले से ही डाल ली जाए ।

आर्यपथिक का चरित्र-संगठन :

गुण-दोषों पर एक दृष्टि

वचपन से ही लेखराम पर ब्राह्मणत्व के संस्कार पड़ रहे थे। यद्यपि वर्ण-विचार से जन्म क्षत्रिय-गृह में हुआ था^१ तथापि लेखराम के पूर्वजन्म के प्रबल संस्कार, विरुद्ध वायु-मण्डल में भी, उन्हें ब्राह्मणत्व के साँचे में ढाल रहे थे। उनका

त्याग का सरल जीवन

निस्सन्देह साक्षी दे रहा था कि पुलिस के बदनाम महकमे के अन्दर भी सावधान रहकर यह एक दिन इन्द्रियों के दासत्व की बेड़ी को काट डालेंगे। तम्बाकू की तो वचपन में ही बैतुलवाजी से जड़ काट डाली थी। मांस, मद्य तथा अन्य मादक द्रव्यों के कभी समीप नहीं गए। पापरूपी दूषण तो एक ओर रहे, किसी व्यसन को भी जीते-जी समीप नहीं आने दिया। और तो और, पान भी कभी नहीं खाया। कपड़ों के बनाव-चुनाव को वह जनाना-पन के नाम से पुकारते थे। स्वास्थ्य अत्युत्तम रहता था, इसलिए पोशाक से शोभा बढ़ाने की उन्हें आवश्यकता न थी। कैसे भी कपड़े किसी ढंग से पहन लें, उनके शरीर पर स्वयं शोभा पा जाते थे। जब तक अत्यन्त आवश्यकता न होती तब तक दरमियाने दरजे^२ में भी यात्रा न करते, और जो व्यय करते वही सभा से लेते। जहाँ अन्य उपदेशक पूरे इक्के का किराया १ रु० लगाते, वहाँ आर्यपथिक के बिलों में उसी स्थान का किराया साढ़े तीन आने दर्ज होता। जहाँ कुली से असबाब उठाकर ले-जाने में वचत होती वहाँ इक्कागाड़ी पर नहीं बैठते थे, और यदि यात्रा में कहीं उतरने से अपना काम भी होता तो वहाँ किराया सभा से न लेते। दृष्टान्त के लिए केवल एक बार पत्र का पेश करना काफ़ी होगा। सभा के मन्त्री जी ने १५ जनवरी १८९६ को लिखा “मान्यवर पण्डित जी, नमस्ते ! आपके ९-१-१६ के बिल में जो ७ दिसम्बर को

१. जन्मना ब्राह्मण होने पर भी उनका पारिवारिक परिवेश क्षात्र संस्कारों से युक्त था।

—सम्पादक

२. इण्टर क्लास

लाहौर तक का किराया रेल और विविध लिखा है उसमें “विविध” से क्या तात्पर्य है तथा आपने २३ दिसम्बर १८९५ को सहाले से लाहौर तक का किराया २ रु० १० आने लिखा है, परन्तु लाहौर से सहाले तक का किराया आपने नहीं लिखा, इसका क्या कारण है ? यदि भूल हो गई हो तो सूचित कीजिए कि बिल में दर्ज कर दिया जावे ।”

इसके उत्तर में पण्डित लेखराम ने लिखा—“विविध से तात्पर्य है किराया मजदूर का जो स्टेशन तक दिया गया है। और लाहौर से सहाले तक का किराया मैंने जान-बूझकर नहीं लिखा क्योंकि वह आधा कुछ मेरा निज का काम था और ऐसा किराया मैं वसूल नहीं किया करता ।”

सत्त्व-गुणी ब्राह्मण मैं लेखराम को इसीलिए कहता हूँ ।

सचाई और सदाचार की मूर्ति

ऊपर वर्णन की हुई कहानी में आर्यपथिक की सत्य-परायणता के बहुत-से प्रमाण मिलते हैं। साधारण मामलों में तो मैंने प्रायः अच्छे उपदेशकों को सत्य-वादी पाया है; परन्तु आर्य सिद्धान्तों के मानने में ऐसे उच्चकोटि के उपदेशक भी गिर जाते हैं और स्वयं जिस सिद्धान्त पर सन्देह हो उसको भी सिद्ध करने खड़े हो जाते हैं। पण्डित लेखराम का व्यवहार इससे सर्वथा विरुद्ध था। जब तक नियोग समझ में नहीं आया था तब तक खुली सम्मति देते थे और जब द्विजों के लिए नियोग की आज्ञा समझ ली तो उसकी पुष्टि में पुस्तक लिख दी। कौन नहीं जानता कि पण्डित लेखराम का अन्दर-बाहर एक-सा था !

सत्य-परायणता के साथ सदाचार का तो गाढ़ा सम्बन्ध है ही। न केवल यही कि पण्डित लेखराम ३५ वर्ष की आयु तक पूर्ण ब्रह्मचारी रहे, प्रत्युत मैं जानता हूँ कि गृहस्थाश्रम में भी ऋतुगामी रहते हुए वह ब्रह्मचारी ही थे, सदाचार से उनको बड़ा प्रेम था।

जिस प्रकार सदाचार के साथ उन्हें बड़ा प्रेम था, उसी तीक्ष्णता से वह दुराचार से अत्यन्त घृणा का भाव प्रकट करने से नहीं रुकते थे। यद्यपि महात्माओं के लिए महामुनि पतञ्जलि ने पाप के लिए उपेक्षा की वृत्ति धारण करने का उपदेश दिया है, परन्तु यह गुण पूर्ण योगीजनों में ही पूर्ण रूप से स्थिर होता है। पण्डित लेखराम जैसे मध्यम श्रेणी के धार्मिक वीरों में से थे वैसे आश्रम-मिश्रित गुण भी उनमें प्रवेश किये हुए थे। धर्म की आड़ में अधर्म होता देखकर व डाँट बताये बिना रह नहीं सकते थे, और आर्यसमाज के सभासदों को गिरे हुए देखकर तो उन्हें बहुत शोक हुआ करता था। इस सम्बन्ध में मैं उनकी नोटबुक से कुछ लेख उद्धृत करता हूँ।

सन् १८९१ ई० के जनवरी मास में पण्डित लेखराम ऋषि दयानन्द के जीवन-

वृत्तान्त का मसाला इकट्ठा करते हुए दानापुर (बिहार प्रान्त) आर्यसमाज में पहुँचे। यहाँ के विषय में उनकी गुप्त नोटबुक में दर्ज है—“दानापुर समाज का एक-अफसोसनाक हाल—२७-२८ जनवरी १८९१ ई० में (१) वहाँ के तमाम मेम्बर विरादरी के डर के मारे श्राद्ध करते हैं। एक नामी मेम्बर आर्यसमाज के घर में उसके लड़के की शादी है। उसने २७ जनवरी की रात को एक कत्थक का नाच कराया जिसमें चन्द मुअज्जिज मेम्बर आर्यसमाज गये। भूतपूर्व मन्त्री,—उपप्रधान,—आदि; और आज २८ जनवरी बुधवार को उसके यहाँ रंडी का नाच है। मुझे अफसोस से मालूम हुआ कि एक मेम्बर ने आर्यसमाज के मन्दिर में आकर लोगों को यह न्यौता दिया कि आज भी तुम चलना।

“विरादरी का जोर तोड़ने के वास्ते मेम्बर लोग विल्कुल कोशिश नहीं करते। वैसे हालत समाज की अच्छी है। मकान भी अपना जरखरीद है, एक स्कूल भी जारी है, स्कूल के हेडमास्टर समाज के प्रधान हैं, तादाद भी माकूल है, हाजिरी भी माकूल होती है, २५ मेम्बर सन्ध्या करनेवाले भी हैं, कुछ हवन करनेवाले भी हैं; लाइब्रेरी भी खासी—लेकिन बेसूद (व्यर्थ) !”

इसमें सन्देह नहीं कि दुराचार से आर्यपथिक को बड़ी घृणा थी, परन्तु इस-लिए दुराचारी पुरुष को त्यागकर उसे उसके भाग्य पर छोड़ देना वह अनार्यपन समझते थे। जब किसी आर्यसमाज में जाकर किसी काम करनेवाले को अनुपस्थित पाते और सामाजिक सभासदों से उसपर दुराचार का आक्षेप सुनते तो सैर को चलते हुए उसके यहाँ पहुँच जाते और उसे साथ ले, समझाकर गिरते-गिरते उसे बचा लेते। ऐसी कई आपबीती घटनाएँ लोगों को याद होंगी। यही कारण था कि यद्यपि मुहम्मदी मत को सबसे बढ़कर दुराचार की शिक्षारूपी विष फैलाने का साधन समझकर उसकी जड़ उखाड़ने को उद्यत रहते थे, परन्तु मुहम्मदी जिज्ञासुओं के साथ जो उनको जो प्रेम था वह उनके मित्र भली प्रकार जानते हैं और इसी प्रेम ने अन्त को उन्हें एक मुहम्मदी राक्षस की छुरी का शिकार बनाया।

यह प्रसिद्ध है कि साधारण सच्चे आदमी प्रायः क्रोधी अधिक होते हैं।

हठ और क्रोध

हठ और क्रोध की मात्रा पण्डित लेखराम में भी अधिक थी। यों तो थोड़े ही सच्चे आदमी ऐसे देखने में आते हैं जिनमें हठ और क्रोध का अभाव हो, किन्तु जिन धर्म-सेवकों को दिन-रात मूढ़ता, कुटिलता और अधर्म के साथ युद्ध करना पड़ता है उनकी हठ और क्रोध की मात्रा स्वरूप धारण कर लेती है। यह सौभाग्य शताब्दियों के पश्चात् किसी योगी संशोधक को प्राप्त होता है कि वह अधर्म के लिए स्वरूप धारण करते हुए भी क्रोध और हठ को वश में रख सके। पण्डित लेखराम योगी न थे और न ही धर्म के प्रवर्तकों में से एक, इसीलिए उनमें हठ

और क्रोधरूपी दोनों निर्बलताएँ थीं। किन्तु हम उनके जीवन के वृत्तान्त में यह कहीं नहीं पाते कि उस हठ वा क्रोध से किसी को कुछ हानि पहुँची हो।

एक बार अजमेर के आर्यसमाज मन्दिर में डेरा लगाने के पश्चात् कुछ लिख रहे थे। बाबू रामविलास सारडा जी (जो वैदिक यन्त्रालय के अजमेर पहुँचने के दिन से ही उसके संरक्षक रहे हैं) ने पूछा कि महाराज क्या लिख रहे हो ?

उत्तर मिला—“वैदिक प्रेस वालों की जरा-सी बेपरवाई से हमारे सिर पर आफत आ जाती है और विरोधियों को उत्तर देते-देते थक जाते हैं। देखो, इस पत्थरपूजन के एक पुस्तक लिखी है जिसने यन्त्रालय की लापरवाई से फायदा उठाकर बहुत-से ऊटपटांग एतराज किये हैं। हम किस-किस का उत्तर दें ? आप लोग कुछ प्रबन्ध नहीं करते।” सारडा जी ने निवेदन किया कि गलतियाँ पुरानी हैं, उनके संशोधन का कुछ तो प्रयत्न हो ही रहा है। इसपर क्रोध में भरकर बोले—“खाक कर रहे हो ?” और जो ५० वा ६० पृष्ठ लिखे हुए थे सब फाड़ डाले। जब सारडा जी फटे पत्र इकट्ठे करने लगे तो उन्हें भी छीन लिया। सारडा जी उदास होकर घर चले आए और दूसरे दिन नियमानुसार पण्डित जी को मिलने भी न गए। तब तो हमारे वीर उनके घर जाने को तैयार हो गए। लोगों ने चपरासी दौड़ाया; सारडा जी ने अपने न आने का कारण बतलाया तो आप गुलाब की तरह खिल गए और बोले—“ईश्वर जानता है सारडा जी, आप आर्यसमाज के सच्चे प्रेमी हैं। मैं उस पत्थर-परस्त का जवाब जरूर लिखूँगा।” और फिर आपने “साँच को आँच नहीं” शीर्षक देकर शिवनारायण प्रसाद कायस्थ की पुस्तक का उत्तर लिखा जो “कुल्लियात आर्यमुसाफिर” के १७४ पृष्ठ से आरम्भ होता है। हठ तो पण्डित लेखराम में बहुत था, जिसके दृष्टान्त बचपन से ही मिलते हैं, परन्तु उस हठ का ही परिणाम

प्रतिज्ञा-पालन की धुन

थी। आर्यपथिक ने एक बार जो मुँह से निकाला, उसे हठ करके भी निभाने का सदैव प्रयत्न किया। इनके अन्दर जहाँ धर्म के साथ प्रेम का भाव सर्वसाधारण से कहीं बढ़कर था, वहाँ उसके निभाने के लिए आत्म-समर्पण तथा तप का भी बड़ा उच्च भाव था। इसके उदाहरण जहाँ बचपन से मिलते हैं, वहाँ युवावस्था में यह भाव हम यौवन पर चढ़ा हुआ पाते हैं। रिसाला धर्मोपदेशक के लिए एक-दो बार कातिब (कापीनवीस) न मिला। स्वयं अभ्यास करके छापने की स्याही से कापियाँ लिखीं किन्तु रिसाले को बन्द न होने दिया।

हम देख चुके हैं कि १२ वर्ष की आयु में ही अपनी चाची को एकादशी व्रत करते देखकर स्वयं उपवास करने लग गए थे और जब तक उसपर श्रद्धा रही दृढ़तापूर्वक इस बात को निबाहा।

ज्वर हो, फोड़े निकले हों, चलने के अयोग्य हों, पुत्र की मृत्यु का शोक हो, कोई भी आपत्ति वा विपत्ति उनको अपने कर्त्तव्यपालन से नहीं रोक सकी। उनकी दो काल की सन्ध्या के अटूट नियम की साक्षी में मेरे पास सैकड़ों पत्र पहुँचे हैं। जब मेरे साथ शिक्रम की सवारी में लुधियाने से जगराओं जा रहे थे तो मार्ग में पानी लेकर शौच के लिए गये। लौटने पर पता लगा कि हाथ-पैर धोने और कुल्ला करने के लिए पानी नहीं है। मैं नीचे था और पण्डित लेखराम ऊपर की छत पर थे। मार्ग में कुछ पूछने को आवाज दी, उत्तर कुछ न मिला। देखा तो आर्यपथिक सन्ध्या कर रहे हैं। जब दूसरी चौकी पर शिक्रम पहुँची तो एक भाई ने पूछा—“पण्डित जी ! क्या पेशावरी सन्ध्या हो चुकी ?” पण्डित लेखराम ने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया—“तुम पोप बिना पानी मिले ब्रह्मयज्ञ नहीं कर सकते। भोले भाई ! स्नान कर्म है, हुआ वा न हुआ; परन्तु सन्ध्या धर्म है और उसका न करना पाप है।”

प्रतिज्ञा-पालन में ऐसी दृढ़ता का ही परिणाम था कि धर्मवीर लेखराम धर्म में राजीनामा नहीं किया करते थे।

जहाँ लेखराम के चरित्र में हम कुछ साधारण निर्वलताएँ पाते हैं, वहाँ कई प्रकार की दृढ़ताओं को पराकाष्ठा तक पहुँचा हुआ देखते हैं। आत्म-सम्मान और निर्भयता के लिए मान इनके मन में वर्तमान सांसारिक सीमा से भी बड़ा हुआ था। बचपन में ही जब मदरसे में प्यास लगी तो मदरसे का घड़ा भ्रष्ट देखकर मौलवी से प्यास बुझाने के लिए घर जाने की आज्ञा माँगी। मौलवी साहब ने फरमाया—“यहीं पी लो, छुट्टी नहीं मिल सकती।” हमारे आत्म-सम्मानी चरित्र-नायक ने न तो फिर मौलवी से गिड़गिड़ाकर पूछा और न ही भ्रष्ट घड़े से पानी पिया; सायंकाल तक प्यासे ही बिता दिया।

एक विश्वास-पात्र महाशय से पता लगा कि पण्डित लेखराम मिडल की परीक्षा में शामिल हुए थे। भारतवर्ष के इतिहास-सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर सरकारी किताबों के अनुसार देने की जगह उनका खण्डन करना आरम्भ कर दिया। जहाँ अन्य विषयों में बहुत ऊँचे अंक प्राप्त किये वहाँ इतिहास में शून्य प्राप्त किया। किन्तु उसी इतिहास में अनुत्तीर्ण लेखराम को पाँच वर्षों के पश्चात् पेशावर-प्रान्त के हकीमों ने जिले का इतिहास लिखने के लिए ऐतिहासिक मसाला जमा करने के काम पर लगाया था। उनके लिए धर्म धर्म था और अधर्म अधर्म। वह नहीं समझ सकते थे कि आग और पानी का कैसे मेल हो सकता है। यह भाव कभी-कभी व्यर्थ छिद्रान्वेषण की अवस्था तक पहुँच जाता था और उससे इनके उपदेश के काम को (वाह्य दृष्टि से) हानि भी पहुँच जाती थी, परन्तु लेखराम अपने स्वभाव को इन छोटी हानियों के लिए बदल नहीं सकते थे। बहुत-से धर्मात्माओं की सम्मति है कि अपने मन्तव्यों तथा धर्म के नियमों से न गिरकर

भी राजीनामा हो सकता है, परन्तु यदि यह हठ का भाव एक निर्वलता है तो हम उसे लेखराम के आचरण में छिपाना नहीं चाहते।

परन्तु इस निर्वलता का ही परिणाम था कि हम लेखराम में अभय पद का आदर्श अवलोकन करते हैं।

अभय पद का आदर्श

आर्य पुरुष प्रत्येक यज्ञ की समाप्ति पर प्रार्थना करते हैं—

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।

अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् ।

अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥

—अथर्व० का० १६, सू० १५, मं० ५-६

पण्डित लेखराम न केवल इन मन्त्रों का पाठ ही करते थे, वह इन मन्त्रों में बतलाई हुई अवस्था को प्राप्त करने का प्रयत्न भी करते थे। उनके जीवन में ऐसी घटनाएँ बहुत-सी मिलती हैं जिनका वर्णन कायर हृदयों के अन्दर वीरता का संचार कर देता है।

वन्मू में जब १८९४ में पहुँचे तो सभासद आपस में इस विषय पर कानाफूसी करने लगे कि जाहिल मुसलमानों के बेजा जोश से रक्षा के लिए पुलिस का प्रबन्ध करना चाहिए। पं० जी ने यह सुनकर मन्त्री को कहा—“अगर मैं मुसलमानों से डरूँ तो घर क्यों न बैठ रहूँ? प्रचार के लिए बाहर क्यों निकलूँ? पुलिस की कुछ जरूरत नहीं है।”

मालेरकोटला, जगराओं, शिमला आदि की घटनाएँ अभी सैकड़ों आर्यों को नहीं भूली होंगी। धर्मवीर सचमुच अपनी जान हथेली पर लिये फिरते थे। इसी-लिए तो आर्य-जाति के कई भूषणों ने उनका नाम आर्यसमाज के अली रक्खा हुआ था और यह नाम सार्थक भी था, क्योंकि मुसलमानों का खंडन करते-करते उनमें स्वयं भी कुछ ‘जिहादी’ भाव प्रवेश कर गए थे।

वेद में लिखा है ‘ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्’ कि मनुष्य सृष्टि में ब्राह्मण-शरीर के मुखभाग की तुल्य हैं। जैसे मुख में पाँचों ज्ञानेन्द्रिय हैं और कर्मेन्द्रिय केवल वाणी है, इसी प्रकार ब्राह्मण का लक्षण यह है कि दिन-रात ज्ञान की प्राप्ति में लगा रहे और जैसा ज्ञान प्राप्त हो उसका यथावत् प्रचार कर दे। मुख में जो भोजन डाला जाए उसे पचने के योग्य बनाकर मुख शरीर के शेष भाग में बाँट देता है; अपने लिए कुछ नहीं रखता। इसी प्रकार ब्राह्मण का धर्म है कि जहाँ अन्य वर्णों को शुद्ध आजीविका के साधन बतलाये वहाँ स्वयं अर्थ-संचय में न फँसे। मैं दिखला चुका हूँ कि ब्राह्मण के अन्तिम लक्षण का तो लेखराम स्वरूप ही थे,

परन्तु अन्य लक्षण भी उनमें भली प्रकार घटते हैं। ज्ञान-प्राप्ति के लिए उन्हें स्नेह था।

तत्त्वान्दोलन में अनुराग

पण्डित लेखराम यद्यपि इंग्लिश भाषा से सर्वथा शून्य थे और संस्कृत भी साधारण ही जानते थे, तथापि उद्यमशीलता तथा धैर्य की सहायता से इन भाषाओं में लिखे हुए ग्रन्थों में से भी ऐसी विचित्र (अपने मतलब की) बात निकाल लाते थे जिनका उन भाषाओं के जाननेवालों को स्वप्न भी न था। यही कारण था कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब तथा सजीव आर्यसमाजों के अधिकारियों पर जब कभी वैदिक धर्म के सिद्धान्तों के विषय में बाहिर से प्रश्न होते तो वे उन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए पण्डित लेखराम के पास ही भेजा करते। मुझे इस प्रकार का बहुत-सा पत्र-व्यवहार मिला है जिसमें न केवल मुहम्मदी तथा ईसाई मत के अनुयायियों के प्रश्नों के उत्तर के लिए ही पण्डित जी को प्रेरित किया गया है, प्रत्युत ऐसे प्रश्न भी उनके पास आन्दोलनार्थ भेजे गए हैं जिनका सम्बन्ध संस्कृत के गूढ़ ग्रन्थों तथा अंग्रेजी के अनात्मवाद (Materialism) के साथ था। ऐसे प्रश्नपत्रों में मुझे दो पत्र बालमुकुन्द आर्य के, उर्दू भाषा में लिखे हुए मिले जो उक्त महाशय ने रावलपिण्डी से आषाढ़ तथा कार्तिक सं० १९४० में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के नाम भेजे थे। इन पत्रों से विदित होता है कि उन दिनों भी बहुत-से आर्यसमाजी विरादरी के मुकाबिले की शक्ति न रखते हुए ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों से ही जन्म को वर्ण-व्यवस्था का निर्णायक सिद्ध करने के प्रयत्न किया करते थे और ऐसा करने के लिए आजकल के थियसोफिस्टों (Theosophists) से भी बढ़कर दयानन्द के शब्दों की खींच-तान किया करते थे।

अंग्रेजी ग्रन्थों से प्रमाण ढूँढने की इन्होंने विचित्र विधि निकाली। जब किसी ऐसे अंग्रेजी-पढ़े के यहाँ जाते जिन्हें ग्रन्थावलोकन में अनुराग दिखाई देता तो पण्डित जी का पहला प्रश्न उससे यह होता—‘सुनाइये कोई नयी किताब पढ़ी?’ यदि उसने किसी नयी किताब का नाम बतलाया तो जब तक उससे उस पुस्तक के सारे विषय न पूछ लें उसकी जान न छोड़ते, और जो बात उन्हें अपने मतलब की मालूम होती उसी भद्र पुरुष से अपनी नोट-बुक में लिखवा लेते। फिर वह लिखी हुई इबारत दूसरे ग्रेजुएटों से पढ़वा और एक-दूसरे के किये अर्थों को आपस में मिलाकर निश्चय करते कि वह प्रमाण किस काम में आ सकेगा। किन्तु उस पहले नोट की यहीं समाप्ति न होती। जिस-जिस नये अंग्रेजी-दाँ से मिलते उसी विषय पर उसके विशेष पढ़े-पढ़ाये हुए का स्मरण दिलाकर जितने नये प्रमाण उस विषय पर मिलते उन्हें इकट्ठा करते जाते।

इस सम्बन्ध में मुझे एक मनोरंजक वृत्तान्त याद आया है जो स्वर्गवास

धर्मात्मा विश्वासी लब्भूराम बी० ए० ने मुझे सुनाया था। “मौत के पश्चात् का दिन” (The day after death) नामी लुइस फिग्योर कृत पुस्तक उन्हीं दिनों अधिक प्रसिद्ध हुई थी और पण्डित जी अपनी “मसल-ए-तनासुख” (पुनर्जन्म) नामी पुस्तक के लिए नोट तैयार कर रहे थे। आपने ‘फिग्योर’ की पुस्तक में से पुनर्जन्म-सम्बन्धी एक उदाहरण किसी से नकल कराया था जो लब्भूराम जी को दिखाया और अर्थ करने को कहा। लब्भूराम जी ने साफ अर्थ कर दिये जिससे पण्डित जी का पूरा मतलब सिद्ध न हुआ; अर्थात् लुइस फिग्योर उच्च योनि से नीचे योनि में गिरना नहीं मानता था। पण्डित जी बोले—“भाई, जरा सँभलकर अर्थ करो। यह अर्थ कैसे हो सकते हैं? मनुष्य से जहाँ देव योनि में जाना मानता है तो नीचे पशु योनि में जाना भी मानता होगा।” लाला लब्भूराम ने फिर वही अर्थ किये जिसपर पण्डित जी खिसियाने होकर बोले—“खाक अंग्रेजी पढ़े हो! आपने बी० ए० की ही मिट्टी खराब की। यह अर्थ भला कैसे हो सकते हैं?” लब्भूराम जी वक्ता थे रसीले, बोले—“पण्डित जी! अर्थ तो वही हैं जो मैंने किये, मगर आपके डण्डे से आपकी ही-सी कह दें।” पण्डित जी का गुस्सा हिरन हो गया और मुस्कराकर बोले—“ईश्वर जानता है लब्भूराम जी, आप बड़े होनहार हैं। इन योरोपियनों को अभी पूरी समझ नहीं आई, रफ्त:-रफ्त: (शनैः-शनैः) समझ जाएँगे।”

इसमें सन्देह नहीं कि पण्डित लेखराम जिस लक्ष्य (अर्थात् वैदिक धर्म के सिद्धान्तों की पुष्टि) को सामने रखकर आन्दोलन किया करते थे, वह उन्हें किसी-किसी समय अप्रामाणिक बातों के लिए भी प्रमाणों की कमी नहीं छोड़ता था, परन्तु अपनी पुस्तकों में उन्होंने वही प्रमाण लिखे हैं जिनकी पुष्टि अकाट्य प्रमाणों से हुई। उदाहरण के लिए एक ही दृष्टान्त लीजिए जो पण्डित लेखराम की ऐतिहासिक खोज-प्रणाली पर प्रकाश डालता है—

पण्डित लेखराम ने दो भागों में ‘तारीख-ए-दुनिया’ नाम की एक लघु पुस्तक लिखी थी। उसमें विविध संवत्तों का वर्णन करते हुए उन्होंने आर्यग्रन्थों के लिखे जाने के समय भी निश्चित किये हैं। पुस्तक का आधार उन नोटों पर प्रतीत होता है जो उक्त पण्डित जी की नोट-बुक में मिले हैं। पण्डित जी की आन्दोलन-प्रणाली यह थी कि पहले प्रतिज्ञारूप से उस सिद्धान्त को लिख लेते थे जो उन्हें सिद्ध करना अभीष्ट होता, फिर जिन-जिनके लिए प्रमाणाधार मिलता उसको रखकर शेष को काट देते। उनके नोटों में पहले वेदों के निर्माण का समय १ अरब २६ करोड़ ८ लाख ५२ हजार ६ सौ ८६ वर्ष देकर, उपनिषदों का समय इस प्रकार लिखा है—

प्रथम मन्वन्तर—ईशोपनिषद्

दूसरा मन्वन्तर—केन।

तीसरा मन्वन्तर—कठ, प्रश्न

चौथा मन्वन्तर—मुण्डक, माण्डूक्य ।

पाँचवाँ मन्वन्तर—ऐतरेय, तैत्तिरीय ।

छठा मन्वन्तर—छान्दोग्य ।

सातवाँ मन्वन्तर—बृहदारण्यक, तथा मनुस्मृति का निर्माण-समय

१,८०,००,००० वर्ष

ऊपर के लेख के लिए जब कोई आधार न मिला तो ऊपर के पाँचों मन्वन्तरों को लकीर में घेरकर लिख दिया—“छठे मन्वन्तर की तसनीफात” और शायद जब इसके लिए भी कोई ऐतिहासिक लेख-वद्ध प्रमाण न मिला तो ‘तारीखे दुनिया’ में उपनिषदों के निर्माण-काल पर कोई विस्तृत विचार ही न किया ।

पण्डित लेखराम ने एक स्थान में आर्यावर्त्त-सम्बन्धी सब इतिहास-ग्रन्थों की सूची लिखी थी और मेरे साथ मिलकर वह अंग्रेजी, आर्य भाषा, उर्दू—तीनों भाषाओं में एक प्रामाणिक भारतवर्ष का इतिहास तैयार करना चाहते थे ।

पण्डित लेखराम के छोड़े नोट विचित्र “चाउ-चाउ का मुरब्बा” हैं । कहीं तोपों के निर्माण-काल का पता लगाकर उसका रामायण के काल से मुकाबिला, कहीं ‘खुदा की हस्ती के सबूत’ में नौ प्रबल युक्तियों का खुलासा, कहीं दिल्ली के लाट के वर्णन से आर्यों की शिल्पकारी की प्रशंसा, कहीं कुरान की आयतों की पड़ताल, कहीं समयानुकूल प्रयोग के लिए उद्धृत कवितायें, कहीं फीरोजशाह के अत्याचारों के प्रमाण की फुलभड़ी, कहीं मुहम्मदियों के ७२ नहीं बल्कि ७८ फिरकों की सूची, कहीं सुकृतपन्थ के फारसी-संस्कृत-मिश्रित मूलमन्त्र, कहीं लाला साईदास, लाला जीवनदास, लाला रघुनाथसहाय, मुंशी दुर्गाप्रसाद, मुंशी केवल-कृष्ण, थम्मनसिंह ठाकुर, लाला मुल्कराज भल्ला, हकीम बहाउद्दीन इत्यादि के बतलाये नुस्खे साँप के काटे से लेकर सन्तान-उत्पत्ति तक के इलाज के लिए और कहीं वेदशास्त्रों के प्रमाणों की पंजिका—कहाँ तक लिखें, संसार में ऐसा कोई विषय नहीं जिसकी खोज करना लेखराम के कार्य की सीमा से बाहर समझा जा सकता ।

तारीखे-दुनिया में वर्तमान सृष्टि की आयु ४,३२,००,००,००० (चार अरब बत्तीस करोड़) वर्ष लिखी है । इसके लिए प्रमाण में अथर्ववेद, प्रपाठक ८, अनुवाक १, मन्त्र २१ पण्डित लेखराम ने पेश किया है—

शतं तेष्युतं हायनान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृणमः ॥^१

आर्य जनता का प्रायः यह निश्चय है कि पण्डित लेखराम वेद तथा अन्य शास्त्रों के प्रमाण औरों से ढुँढवाकर लिखा करते थे । यह बात कैसी निर्मूल है-

इसको सिद्ध करने लिए मैं पूर्वलिखित अथर्ववेद के प्रमाण के विषय में श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी सामवेद-भाष्यकार को पत्र देता हूँ। उक्त पण्डित जी लिखते हैं—

“सं० ३१०१, ता २०-८-१९००

श्रीमन्महाशय ! नमस्ते। आपके १८-८-१९०० के लेखानुसार यद्यपि पण्डित लेखराम बहुत बार मिले परन्तु केवल एक बार की बात जीवन-चरित्र में लिखने योग्य है कि वे अपने विश्वास के ऐसे दृढ़ थे कि सन् ९० (कुम्भ १८९१ के एप्रिल में था) कुम्भ के मेले हरिद्वार पर आवश्यक होने पर मूलवेद को प्रतिज्ञा के साथ खोजने लगे तो एक अथर्व (वेद) का मन्त्र तत्काल कल्प-वर्ष-संख्यापरक ढूँढ़ लिया। यद्यपि संस्कृत नहीं जानते थे, (तथापि) वह मन्त्र पण्डितों से पूछा तो उसका वही तात्पर्य निकला।” उपनिषदों को वेद-मूलक ही सिद्ध करने के लिए उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया था और उपनिषदों में जो मूल-वेद का भाग है उसे मोटे अक्षरों में छावाकर यह दिखलाने का विचार था कि जैसे उपनिषद्-वाक्यों को हटा लेने से गीता का कुछ नहीं बचता वैसे, ही वेदमन्त्रों की प्रतीकों अलग करने से उपनिषद् समझ में नहीं आ सकते।

आदर्श धर्म-प्रचारक

कहाँ तक लिखा जाए, सच्चे ब्राह्मण का यह लक्षण पण्डित लेखराम में कूट-कूटकर भरा हुआ था। दूसरा लक्षण ब्राह्मण का यह है कि जिस धर्म का निर्णय स्वयं किया हो उसको संसार में निष्कपट होकर फैलावे। इसीलिए आर्यपथिक की मौखिक प्रचार में धूम मची हुई थी। आर्यसमाज में उन धर्म-प्रचारकों की संख्या अंगुलियों पर गिनी जा सकती है जो लेखराम के समीप इस अंश में पहुँच सकें। गृहस्थी होते हुए भी संन्यास की तितिक्षा तथा धारण हम उनके आचरण में देखते हैं। विरोधी लोग प्रसिद्ध करते हैं कि पण्डित लेखराम बदजवान था। यद्यपि वह खण्डन सर्वमतों का एक-सा करते थे, परन्तु हिन्दुओं, जैनियों, सिक्खों ने उनकी कभी शिकायत नहीं की। इसका कारण तो यह हो सकता है कि यद्यपि इन मतों के संशोधन के लिए इन मतावलम्बियों को हिलाते थे तथापि आर्यजाति-विरोधियों के आक्रमणों से इनको भी बचाने का ठेका लेखराम ने ही ले रखा था। एक बार मैं और पण्डित लेखराम इकट्ठे दिल्ली से लौट रहे थे कि मार्ग में सनातन धर्म-सभा के पण्डित दीनदयालु जी^१ मिल गए। बातचीत आरम्भ होने पर पण्डित लेखराम ने कहा—“आप हमें कोसने के लिए बड़े बहादुर हो, लेकिन इस्लाम

१. ये व्याख्यान-वाचस्पति पण्डित दीनदयालु शर्मा के नाम से विख्यात हैं।

आपके धर्म की जड़ें खोद रहा है और आप चुप बैठे हो ! ” पण्डित दीनदयालु जी ने उत्तर दिया—“यह काम तो हम सबने आपके सुपुर्द कर छोड़ा है; जब तक आर्यमुसाफिर जीवित हैं तब तक हमारे धर्म की जड़ कौन खोद सकता है ? ”

यह तो ठीक है कि हिन्दू, जैन, सिक्खादि तो उन्हें अपना समझकर उनके कटु वचनों को सहन कर लेते थे, परन्तु यदि वह कटुभाषी होते तो मुसलमान जनता भी क्यों उनके व्याख्यानों पर मोहित होती ? असल बात यह थी कि मुहम्मदी मौलवियों ने उनके पते की कहने और लिखने पर, उत्तर देने की शक्ति न रखते हुए, उन्हें “बदजवान” प्रसिद्ध कर रक्खा था। परन्तु जब ऐसी बहकाई हुई भी मुसलमान जनता लेखराम से प्रत्यक्ष परिचय करती तो उसपर आर्यपथिक का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

जहाँ दूसरे वक्ताओं के एक घण्टे के व्याख्यान के पश्चात् श्रोता घबरा जाते हैं वहाँ तीन घण्टों तक आर्यपथिक की वक्तृता सुनने के पश्चात् भी फिर एक घण्टे बैठने को तैयार रहते थे। इसका कारण उनका विस्तृत ऐतिहासिक ज्ञान तो था ही, परन्तु उनकी वाणी में हास्यरस और हाजिरजवाबी ऐसी मनोहर थी कि सुननेवाला उकता नहीं सकता था।

हाजिरजवाबी में कमाल

जो पुरुष किसी बड़े काम में कृतकार्य होना चाहें उनके लिए “हाजिर-जवाबी” एक अपूर्व सम्मिलित अस्त्र-शस्त्र है। जिस बात को दलील से काटने में घण्टों का नाश हो उस बात का ‘हाजिरजवाबी’ मिनटों में सफाया बोल देती है।

लेखराम बचपन से हाजिरजवाबी के लिए प्रसिद्ध थे। मदरसे में पहले साल ही परीक्षक इनकी हाजिरजवाबी से प्रसन्न हुए थे। इनके पहले उस्ताद तुलसी-राम जी इसी हाजिरजवाबी से तंग थे, जिसके कारण इनकी अकल की शिकायत किया करते। इस कहानी में भी कई स्थानों पर मैंने उनकी हाजिरजवाबी के नमूने दिये हैं। परन्तु उनकी हाजिरजवाबी को पढ़कर ऐसा आनन्द आता है और हमारे चरित्रनायक के इतने गुणों का पता लगता है कि उनमें से कुछ और का उल्लेख करना मनोरंजक ही न होगा प्रत्युत शिक्षादायक भी सिद्ध होगा।

हरद्वार में संवत् १९४८ के कुम्भ पर स्वामी आत्मानन्द जी संयुक्त प्रान्त के छूतछातवाले उपदेशकों का चौका स्थिर रखने के लिए यह प्रबन्ध किया कि पंजाबियों से पहले वह चौके में भोजन कर लिया करें। पण्डित लेखराम उनसे भी पहले भोजन के लिए जा बैठे। अब पंजाबियों का अपवित्र किया हुआ चौका फिर से लगाया गया। दूसरे दिन भी पण्डित लेखराम पाचक (रसोइए) के साथवाली क्यारी में जा बैठे, परन्तु जब रोटी को बिना अधिक सेके उसने चूल्हे में से खींचा तो आपने उसकी पीठ पर हाथ ठोंका और उसके हाथ से चिमटा

लेकर उसे रोटी सेंकना बताने लगे। अब तो संयुक्त प्रान्तीय दल में खलबली मच गई, परन्तु कुछ संयुक्त प्रान्ती उसी समय आर्यपथिक के चले बग और सखरी-निखरी के भेद-भाव को उड़ा दिया।

दिल्ली के जलसे पर एक आदमी केशर का चन्दन सब भाइयों के माथे पर लगाता आता था। जब आर्यपथिक के समीप आया तो उन्होंने डाँटकर कहा—“मेरे सिर में दर्द नहीं है।” उत्तर मिला—“महाराज ! सुगन्धि के लिए लगाते हैं।” आर्यपथिक ने दाहिने हाथ का पृष्ठभाग सामने करके कहा—“तो यहाँ लगाओ” और जब वहाँ चन्दन लगाया गया तो नाक के पास ले-जाकर सूँघने लगे जिसपर सब उपस्थित सज्जन मुस्करा दिये।

एक आर्य सज्जन ने भोजन के पश्चात् सब आर्य भाइयों को ताम्बूल (पान) बाँटे। जब आर्यपथिक के सामने पानदान पेश किया तो बोले—“देखते नहीं हो मैं मनुष्य हूँ ? बकरा नहीं हूँ कि पत्ते खाऊँ।” गुजरात आर्यसमाज में आर्यपथिक का व्याख्यान हो रहा था। मुसलमानों के “हराम, हलाल” के मसले पर बोल रहे थे। समाप्ति पर प्रश्नोत्तर का समय दिया गया। दो मौलवियों को तो यों ही झिझोड़ दिया परन्तु अन्त में मौलवी वाकरहुसैन उठे जिनकी ऋषि दयानन्द के साथ भी पुनर्जन्म पर बातचीत हो चुकी थी। मौलवी साहेब ने कहा—“पण्डित साहेब ! आपने जो हमारे हराम-हलाल के मसले पर एतराज (आक्षेप) किये हैं; क्या आपने यह भी सोचा है कि हमारे मजहब में चुहिया हराम है ? क्या वह भी इसीलिए हराम करार दी गई कि जबरदस्त थी ?” आर्यपथिक ने पूछा कि मौलवी साहेब सुन्नी हैं वा शिया ? यह उत्तर पाने पर कि मौलवी साहेब शिया हैं, पण्डित लेखराम ने उत्तर दिया—“मौलवी साहेब ! मुझे आपका कथन सुनकर हँसी आती है। आप शिया होकर चूहे की बुजुर्गी और जबरदस्ती से इनकार करते हैं ? यही नामुराद चूहा था जिसने मैदान कर्बला में सब पानी की मशकें काट दीं, और बेचारे इमाम हुसैन को प्यासा भरवाया। अगर ऐसे दो-तीन और जबरदस्त पैदा हो जाएँ तो अरब और ईरान में कई कर्बला की-सी घटनाएँ हो जाएँ।” श्रोतागण खिलखिलाकर हँस पड़े और मौलवी साहेब चुप हो गए।

लेखनी का प्रवाह

धर्मवीर आर्यपथिक ने अपने नाम को सार्थक करने के लिए विचित्र लेखनी चलाई। लेखराम सचमुच लेख की लहर चला देता था। संवत् १९४१ में लेखराम ने दासत्व से मुक्ति-लाभ की। संवत् १९५३ के अन्त में उनका देहान्त हुआ। १२ वर्षों में उन्होंने जहाँ लाखों नर-नारी तक वैदिक धर्म का सन्देश पहुँचाया, और सैकड़ों छोटे-बड़े लेख लिखकर आर्य गजट फिरोजपुर, सद्धर्म प्रचारक तथा अन्य समाचारपत्रों में छपवाये, सैकड़ों शास्त्रार्थ किये और सहस्रों को धर्म से पतित

होते-होते बचाया, वहाँ ३३ छोटी-बड़ी पुस्तकें तैयार कीं जिनके छपे हुए, सत्यार्थ-प्रकाश के परिमाण के, पृष्ठ २६०० से कम न होंगे और इसके साथ ही ऋषि दयानन्द के जीवन-चरित्र के लिए न केवल ८७६ बड़े पृष्ठों के लिए लेख तैयार करके ही छोड़ गए, प्रत्युत पुस्तक की पूर्ति के लिए भी इतने नोटों का कोष जमा कर दिया कि उन सबसे पूरा काम लेना भी कठिन हो गया।

एक विशेष कापी मिली है, जिसका शीर्षक है — “आर्यसमाज की बीस साला रिपोर्ट”। इसके अन्दर १४ बड़े-बड़े विषयों की सूची है, जिससे ज्ञात होता है कि जो कार्य “आर्य डाइरेक्टरी” का आज कुछ-कुछ होने लगा है उसको आर्य-पथिक वर्षों पहले पूर्ण रीति से करने का विचार कर रहे थे।

भविष्यपुराण की पड़ताल मैंने उन्हीं की प्रेरणा पर आरम्भ की थी और विचार यह था कि हम दोनों १८ पुराणों तथा १८ ही उपपुराणों की पड़ताल का परिणाम जन-साधारण के आगे रखेंगे। ऋषि-जीवन का चरित्र छपवाने के पश्चात् उनका विचार अरब आदि देशों में प्रचार के लिए जाने का था। इसके लिए उन्होंने आर्यसमाज के दस नियमों का भाष्य अरबी में लिख लिया था जो मेरे पास मौजूद है और १६ लघु पुस्तकों की सूची भी बना ली थी जिन्हें अरबी में छपवाकर वह साथ ले-जाना चाहते थे। यह लेखनी का प्रवाह बड़ा ही प्रबल है। परन्तु कहा यह जाता है कि धर्मवीर पण्डित लेखराम की ‘तहरीर सख्त थी’। यदि इसका मतलब यह है कि उनकी लेखनी ओजस्विनी और बलवती थी तो मुझे भी मानने में कोई संकोच नहीं, क्योंकि जिस लेख का आधार सचाई पर हो और जो केवल अपने मन्तव्यों की रक्षार्थ लिखे गए हों, उनका शक्तिशाली होना आवश्यक ही है। परन्तु यदि आक्षेपकों की यही प्रतिज्ञा है कि पण्डित लेखराम की लेख-शैली मुहम्मदी तथा अन्य आर्यसमाज के आक्षेपों की न्याईं अश्लील और असभ्य होती थी तो कहने में कोई संकोच नहीं कि ऐसी प्रतिज्ञा निर्मूल और भूठी है। मेरी तो यहाँ तक प्रतिज्ञा है कि पण्डित लेखराम अपने लेखों में कभी मर्यादा का भी उल्लंघन नहीं करते थे; तभी तो जब-जब न्यायालयों में उनकी पुस्तकें पेश हुईं तब-तब ही उनके विरोधियों को पराजित होना पड़ा। मुहम्मदी मौलवियों को उन्होंने युक्ति, प्रमाण तथा सत्यान्दोलन से ऐसा परास्त कर दिया था कि उन्होंने अमली तौर पर अपनी हार मान ली और जिस लेखनी को उनकी सम्मिलित शक्ति जवाबी लेखों तथा न्यायालयों की सहायता से भी बन्द न करा सकी, उसे कायर छुरी के द्वारा बन्द करा दिया।

मुहम्मदियों के प्रारम्भिक आक्रमण

(१) सबसे पहले १८८७ ई० में अमृतसर में 'तकजीब' और 'नुस्खा' के छपने पर मुसलमानों ने बड़ी हलचल मचाई, परन्तु वकीलों ने नालिश की सम्मति न दी।

(२) सबसे पहला वास्तविक आक्रमण मिर्जापुर के मुसलमानों ने किया। शुक्रुल्ला नामी व्यक्ति की ओर से "तकजीब बुराहीन अहमदिया" तथा "नुस्खा-खुवत अहमदिया" को मुसलमानों का दिल दुखानेवाली किताबें करार देकर मजिस्ट्रेट जिला के यहाँ अर्जी दी। यह अभियोग बिना पण्डित लेखराम को बुलाये खारिज हो गया।

(३) प्रयाग में भी ऐसी नालिश हुई जो बिना अभियुक्त पुरुषों को बुलाये खारिज हुई।

(४) फिर लाहौर के मुसलमानों ने सन् १८९३ ई० के आरम्भ में 'जिहाद' तथा अन्य पुस्तकों को लेकर, जो अरोडवंश प्रेस में छपी थीं और उनमें अश्लील लेख बतलाकर नालिश की। इस मुकद्दमे में लाला लाजपतराय जी ने बड़ी पैरवी की और मुकद्दमा खारिज हुआ।

(५) फिर मेरठ के मौलवियों ने भी बड़े जलसे किये और मुहम्मदी जगत् को भड़काया, परन्तु वहाँ भी नालिश करने की सम्मति वकीलों ने न दी।

(६) दिल्ली में नालिश की गई। यह नालिश २८ अगस्त १८९६ को कप्तान डेविस साहेब डेपुटी कमिश्नर देहली की अदालत में पेश हुई। डेविस साहेब ने सब पुस्तकें मँगाकर मुनीं जिनके उत्तर में पण्डित लेखराम ने पुस्तकें लिखी थीं और बिना ग्रन्थकर्ता तथा छापनेवाले को बुलाये नालिश खारिज कर दी।

तब मुसलमानों के बड़े पुरजोश जलसे हुए, बहुत-सा धन एकत्र हुआ और कप्तान डेविस साहेब के हुकुम की निगरानी की गई। वह निगरानी फिर १० सितम्बर १८९६ को खारिज हुई। इस अन्तिम फैसले में साहेब मजिस्ट्रेट ने लिखा — 'यह मुकद्दमा मजहबी बुनियाद पर उठाया गया है। सारे शहर में जलसे किये गए और सब प्रान्तों से मुसलमान बुलाये गए हैं जिससे आज न्यायालय में जमा

होकर अपनी सहानुभूति प्रकट करें।.....

“इस स्थान में यह बतलाना आवश्यक है कि पण्डित लेखराम आर्य अग्रणियों में से एक हैं... अब इस प्रश्न के विषय में कि क्या यह पुस्तक अश्लील है वा नहीं, मैंने वे सब विशेष-विशेष वाक्य अवलोकन किये जिन्हें अश्लील बतलाया जाता है। यह बात विचारणीय है कि इनमें बहुत अधिक तो ऐसे वाक्य हैं जो कि अश्लील कहे ही नहीं जा सकते। दूसरों में प्रश्न यह है कि शब्दों का किस प्रकार से प्रयोग हुआ है... मेरी सम्मति में पुस्तक के शब्द इन (अश्लील वा असभ्य) अर्थों में नहीं लिये जा सकते... मैं निश्चय करता हूँ कि कोई भी जुर्म (अपराध) लेखराम... के विरुद्ध प्रकट नहीं किया गया और इसलिए अभियोग को ‘जाब्ता फौजदारी’ की धारा २०३ के अनुसार खारिज करता हूँ।”

(७) दिल्ली से निराश होकर मुसलमानों ने बम्बई में बड़ी हलचल मचाई और दिसम्बर १८९६ में वहाँ नया अभियोग चलाया। जब वह अभियोग भी बिना पण्डित लेखराम को बुलाये खारिज हो गया तब—

(८) पेशावर में धर्मवीर लेखरामरूपी ज्वलन्त शक्ति को, जो इन अदूरदर्शी दृष्टियों में इस्लाम की जड़ों को खोखला कर रही थी, सदा के लिए शान्त करने का यत्न सोचा गया। पेशावर में दिल्ली का मुकद्दमा खारिज होते ही आग भड़की थी। यद्यपि पहले नालिश का ही विचार था, परन्तु जब बम्बई के अभियोग की भी समाप्ति का समाचार आया तो फिर पेशावर, बम्बई, अमृतसर, पटना इत्यादि सब नगरों से यह समाचार आने लगे कि मुसलमान पण्डित लेखराम को मरवा देने के मन्सूवे बाँध रहे हैं।

आर्य भाइयों ने विविध स्थानों से सचेत करने लिए लाहौर आर्यसमाज को पत्र भेजे, परन्तु लेखराम की रक्षा कौन कर सकता था ! धर्मवीर ने डर का शब्द ही अपने कोष से निकाल छोड़ा था। वे मनुष्यों की धमकियों की क्या परवा करते थे !

अन्तिम जवनिका, धर्म पर बलिदान

फरवरी १८९७ के मध्य भाग में एक काला, गठे हुए बदन का भयानक नाटा युवक दयानन्द कॉलेज में पण्डित लेखराम को पूछता गया; वहाँ से पता लेकर वह पण्डित लेखराम के निवास-स्थान पर पहुँचा और पण्डित जी से निवेदन किया कि वह असल में हिन्दू था, दो वर्षों से मुसलमान हो गया है और अब शुद्धि के लिए आर्यपथिक की शरण में आ गया है। पण्डित लेखराम ने प्रतिज्ञा की कि वह उस पतित को शुद्ध कर लेंगे।

पण्डित लेखराम को कई स्थानों के आर्य भाई सचेत कर चुके थे कि मुहम्मदी लोग उनको मरवा डालने की फिरा में लगे हुए हैं, परन्तु ऐसी चेतावनियों का पण्डित लेखराम पर उलटा असर हुआ करता था। उन्होंने इस अनजाने व्यक्ति के विषय में पता भी न लगाया कि वह कौन और कहाँ से आया है, और न उस ही से कुछ पूछा। कुछ आर्य भाइयों ने पता लगाना चाहा जिनसे उसने अपने-आपको बंगाली बतलाया, परन्तु प्रत्येक ८ शब्दों में से केवल दो बंगाली शब्द समझ सकता था। जिसने उसकी शकल देखी, बिना सोचे कह दिया कि वह बूचड़ है। अनुमान होता था कि वह पटना प्रान्त का रहनेवाला है।

यह पटनवी बूचड़ छायावत् पण्डित लेखराम के साथ फिरता रहा। दो-तीन बार पण्डित जी के घर में रोटी खाता भी देखा गया। दिन को वह पण्डित जी के साथ रहता था, परन्तु यह किसी को पता न था कि रात कहाँ काटता है। धर्म-वीर के बलिदान के पश्चात् पुलिस के आन्दोलन के समय पता लगा था कि वह रात को उस स्थान में सोता था जहाँ कि लेखराम के वध के मन्सूवे गाँठे जाते थे।

१ मार्च को पण्डित लेखराम सभा की आज्ञानुसार मुल्तान पहुँचे जहाँ ४ मार्च तक ४ व्याख्यान दिये। सभा ने सख्खर जाने के लिए तार भेजा परन्तु प्लेग के कारण मुल्तान समाज के सभासदों ने वहाँ जाने से रोक लिया। उनको क्या मालूम था कि वे सन्दिग्ध कंष्ट से बचाकर अपने वीर धर्मोपदेशक को सीधा मौत के मुँह में भेज रहे हैं! फिर पण्डित लेखराम मुजफ्फरगढ़ के लिए तैयार हुए, परन्तु न जाने क्यों सीधे लाहौर को लौट पड़े जहाँ वह ६ मार्च की दोपहर को पहुँच गये।

४ मार्च को ईद का दिन था। इससे बढ़कर, मुहम्मदी मत की जड़ खोखली करनेवाले को, वध करने का श्रेष्ठ दिन कब मिल सकता था ! उस दिन बूचड़ घातक ने आर्यपथिक के निवास-स्थान, आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यालय तथा रेलवे स्टेशन पर १८ वा १९ चक्कर काटे। ६ मार्च के प्रातः फिर पण्डित जी के घर पहुँचा, वह अभी लौटे न थे; फिर सभा के कार्यालय में गया परन्तु वहाँ से भी निराश लौटा।

२ वजे पण्डित लेखराम के साथ सभा के कार्यालय में फिर पहुँचा। गली की ओर मुंह करके खिड़की में बैठ गया। वह उस दिन थूकता बहुत था। सभा के मुनीम ने कहा—“पण्डित जी ! यह स्थान खराब करता है।” भोले आर्यपथिक बोले—“भाई ! बैठा रहने दो; तुम्हारा क्या लेता है !”

उस दिन नियम-विरुद्ध सारा शरीर कम्बल से ढके हुए था। सभा से चलते समय काँपा। पण्डित जी ने पूछा कि ज्वर तो नहीं है ? धीरे से बोला—“हाँ, और कुछ दर्द भी है।” पण्डित लेखराम उसको इलाज के लिए डॉक्टर विष्णुदास के पास ले गये। नाड़ी देखकर डॉक्टर ने कहा—“बुखार-बुखार तो मालूम नहीं होता, इसका खून जोश में है और थकान मालूम होती है, यदि दर्द है तो ब्लिस्टर लगा दिया जावे।” घातक ने कहा कि लगाने की नहीं, कोई पीने की दवा दीजिए। यदि उस समय कम्बल उतार, उसके दवाई लगवाने का विचार होता तो कमर में लगी छुरी पकड़ी जाती। परन्तु आर्यपथिक तो स्वयं बलिदान की तैयारी कर रहे थे; सिफारिश की कि पीने की दवाई ही दी जावे। डॉक्टर ने कहा कोई शरबत पी लेवे। न जाने कहाँ से शरबत पिलवाकर बजाज की दुकान पर गए और इसी घातक के हाथ एक थान माताजी को दिखाने भेजा। बजाज ने घातक के चले जाने पर कहा—“पण्डित जी ! क्या भयानक आदमी साथ लिये फिरते हो ?” धर्मवीर शुद्धि की धुन में मस्त, उत्तर देते हैं—“भाई, ऐसा मत कहो ! यह धर्मात्मा आदमी है, शुद्ध होने आया है।” घर जाकर पण्डित जी जिस खुले वरामदे में काम करते थे वहाँ चारपाई पर बैठकर जीवन-चरित्र-सम्बन्धी काम करने लगे। उनकी बाईं ओर कुर्सी पर घातक बैठ गया। ६ वजे लाला जीवनदास और लाला केदारनाथ जी आए और अगले रविवार के लिए व्याख्यान की प्रतिज्ञा कराके चले गए। घातक बैठा रहा। माता जी रसोई में थीं, धर्मपत्नी जी दूसरे कमरे में अलग पढ़ रही थीं। तब पण्डित लेखराम ने घातक को कहा—“अब देर हो गई है, भाई ! तुम भी आराम करो।” घातक न हिला। दस मिनटों के पीछे माता जी ने चौके से कहा—“पुत्र लेखराम, तेल नहीं आया।” पण्डित लेखराम उस समय ऋषि दयानन्द की मृत्यु का अन्तिम दृश्य खींच रहे थे; पत्रे वहीं रख दिये और चारपाई पर से उस ओर उतरकर जिधर घातक बैठा था, अपने अभ्यासानुसार आँख बन्द कर और दोनों बाँहें ऊपर उठाकर जोर से अँगड़ाई लेते हुए कहा—“ओफ्-फोह ! भूल गया।”

इस समय आर्यपथिक ऐसे सीना तानके खड़े हुए कि जिस समय की घात में दुष्ट घातक प्रतीक्षा कर रहा था, वह आन पहुँचा। एकदम से अभ्यस्त हाथ ने छुरी पेट के अन्दर घुसेड़कर इस प्रकार घुमा दी कि आठ-दस घाव अन्दर आये और अन्तड़ियाँ बाहर निकल पड़ीं।

परन्तु क्या आर्यपथिक इस निष्ठुर पिशाच के आक्रमण से विवश होकर गिर पड़े और अपनी चिल्लाहट से मुहल्ले को जगा दिया? वहाँ न कोई हृदय-वेधक आर्तनाद ही सुनाई दिया और न कोई चिल्लाहट की आवाज माता और धर्मपत्नी ने सुनी। यदि धर्मवीर में यह निर्बलता होती तो लोग दौड़ पड़ते और घातक उसी समय पकड़ा जाता। परन्तु वहाँ पतितों पर दया का भाव अभी तक स्थिर था जिसने घातक को स्पष्ट बचा दिया।

अन्तड़ियों का बाहर निकलना था कि बायें हाथ से बाहर निकली हुई अन्तड़ियों को सम्भाल दाहिने हाथ को घातक के हाथ पर डाल दिया। साधारण पुरुष अपने रक्त के दर्शनमात्र से होश गँवा बैठता है, परन्तु वीर लेखराम सिंहपुरुष था; सिंह के अन्दर चाहे रक्त की नदी बह जाय उसकी सावधानता में भेद नहीं आता। पहली झपट में लड़ते-भिड़ते सीढ़ी के पास जा पहुँचे और घातक के हाथ से छुरी छीन ली। घातक ने दो हाथ और धर्मवीर का केवल एक, और फिर रक्त की धारा बह रही थी; सम्भव था कि घातक फिर छुरी छीन ले कि लक्ष्मी देवी ने, झूठी लोक-लज्जा को परे फेंककर, हाथ जा मारा और छुरी धर्मवीर के हाथ में रह गई। लक्ष्मी देवी ने इस डर से कि कहीं जब तक फिर आक्रमण न करे, धर्मवीर को रसोई की ओर खींचा परन्तु घातक के दुष्ट हृदय को इसपर भी सन्तोष न हुआ और वह खूनी आँखों से डराता हुआ फिर पीछे दौड़ने लगा। फिर माता जी ने दोनों हाथों से उसे पकड़ लिया। इस समय घातक भी हँपने लग गया था और उसने पास पड़ा एक बेलन झपटकर उठाया और माता जी को दो-तीन चोटें लगाईं। वह अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ीं और घातक सीढ़ियों से नीचे न जाने कहाँ लुप्त हो गया।

कुछ पलों के पश्चात् लाला जीवनदास जी बाहर से लौटे तो बड़ा हृदय-विदारक दृश्य देखा। चारपाई पर धर्मवीर सिंह लेटे हुए हैं; अन्तड़ियाँ एक हाथ से दबाये हुए हैं और रक्त का स्रोत बह रहा है। वृद्ध जीवनदास जी घबरा गए। फिर और लोग आ गए। परन्तु आर्य सिंह के मुख पर कोई मलिनता न थी; पृच्छने पर उसी सरल परन्तु वीरतापूर्ण वाणी से उत्तर दिया—“वही दुष्ट, जो शुद्ध होने आया था, मार गया” तो फिर बोले—“डॉक्टर को बुलाओ, शीघ्र बुलाओ।” चारों ओर समाचार फैल गया। डॉक्टर तथा डॉक्टरी के विद्यार्थी जमा हो गए। चारपाई पर धर्मवीर को लिटाकर हस्पताल की ओर ले चले। मैं उस दिन अकस्मात् ४ बजे शाम की गाड़ी से लाहौर पहुँचा था। समाचार पाते ही धर्मवीर के निवास-

स्थान की ओर चल दिया। आगे गली के मुहाने पर “शहीद-सवारी” आती हुई मिली और मैं कलेजा थाम साथ हो लिया।

हस्पताल पहुँचते ही आर्यवीर को मेज पर लिटाया गया। दुःखित मन को सँभालकर मैं आगे बढ़ा। उस समय अन्तड़ियाँ हाउस-सर्जन के हाथ में थीं। मुझे देखते ही दोनों हाथ, जो सिर के नीचे थे, उठा लिये और हाथ जोड़े। मेरी अश्रुधारा निकलने को ही थी कि प्यारे लेखराम ने अपनी साधारण वीर-वाणी से कहा—“नमस्ते लाला जी ! आप भी आ गए।” इस असाधारण दृश्य ने मेरा दिल दहला दिया। अन्तड़ियों की ओर देखकर विश्वास नहीं आता था कि मैं अपने प्यारे मित्र लेखराम से बात कर रहा हूँ। ऐसा प्रतीत होता था कि मानो शिमले के वार्षिक-उत्सव से लौटकर मुझे नमस्ते कर रहे हैं। फिर बोले—“लाला जी, वे अदबियाँ माफ करना !” मैंने बलपूर्वक रोने-बोने को रोककर कहा—“पण्डित जी ! आप तो परमात्मा पर पक्का विश्वास रखनेवाले हैं, प्रत्येक संकट में उसी का आश्रय ढूँढ़ा करते हैं, उसका ध्यान कीजिए।” वह वीर-वाणी उत्तर देती है—“अच्छा तो शायद मैं अच्छा हो जाऊँगा, परन्तु लाला जी ! मेरे अपराध क्षमा करना।” यह कहा और वेद-मन्त्र का पाठ करने लगे—

“ओ३म् । विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ।”

मरते दम तक इस मन्त्र तथा गायत्री मन्त्र का जप करते रहे। बीच-बीच में “परमेश्वर, तुम महान् हो ! परम पिता !” इत्यादि शब्द बोलते रहे।

छुरी लगने से पौने दो घण्टों के पश्चात् डॉक्टर पेरी साहब आए। फिर बराबर दो घण्टों तक डॉक्टर महोदय कटी हुई आँतों को सीते रहे। एक स्थान की आँत कटकर दो टुकड़ों हो गई थी, आठ बड़े-बड़े घाव और बहुत-से छोटे-छोटे घाव भी थे। डॉक्टर पेरी हैरान थे कि दो घण्टों तक जिसके अन्दर से रक्त खुला वहता रहा हो वह कैसे जीवित रह सकता है ! इसलिए उन्होंने कहा कि साधारण अवस्था में तो ऐसे घाव लगने पर कोई मनुष्य बच नहीं सकता, परन्तु जिसकी अब तक यह चेतना शक्ति है वह शायद बच जावे। यदि यह समझा भी जाय तो Miracle (चमत्कार) ही समझना चाहिए।

डेढ़ बजे रात तक बराबर सचेत थे। केवल परमेश्वर के नाम का जप था; न घरवालों की चिन्ता और न घातक पर अप्रसन्नता और न मौत का डर। यदि चिन्ता थी तो आर्यसमाज की और यदि ध्यान था तो उस महायज्ञ की ओर जो ऋषि दयानन्द रच गये थे। धर्मवीर ने न तो माता और न धर्मपत्नी की चिन्ता की क्योंकि उनको विश्वास था कि परमेश्वर उनका सहायक है और न ही घातक का पता लगाने को कहा क्योंकि जिस वैदिक धर्म के वह सच्चे सेवक थे वह बदला लेने की शिक्षा नहीं देता। अन्तिम आदेश अपने सहधर्मियों को यह दिया कि—

“आर्यसमाज से लेख का काम बन्द नहीं होना चाहिए।”

दो बजे के करीब लेखराम का तौर बदल गया। दो बार जोर से हाथ हिलाये और ५ मिनटों में हाथ सीधे करके सदा की नींद सो गये।

पौ फटते ही धर्मवीर की मौत का समाचार विद्युतवत् सारे लाहौर नगर में फैल गया। क्या हिन्दू, क्या जैनी, क्या ब्राह्म, क्या सिक्ख, सब दुःखी प्रतीत होते थे। अपने प्यारे-से-प्यारे बच्चे की मौत पर इतना कष्ट न हुआ होगा जो इस समय आर्य-सन्तानमात्र को लेखराम का वध के समाचार सुनकर हुआ। सबने छोटे-छोटे विरोधों को भुला दिया। दस बजे के अनुमान धर्मवीर के मृतक शरीरवाले कमरे के सामने का मैदान आर्य-सन्तान से भर गया। वे लोग जिन्होंने आर्य-मन्दिर में कभी पैर नहीं रक्खा था, इस जन-समूह में दिखलाई देने लगे। सिविल-सर्जन ने बड़ी सहानुभूति की दृष्टि से किसी मुसलमान को मृतक शरीर के पास फटकने न दिया और दस मिनट में दो घण्टों का काम करके लेखराम का जो कुछ बचा था हम लोगों के हवाले करके चल दिये।

अन्दर जाकर जो देखा तो आर्यपथिक को सदा का यात्री पाया, परन्तु फिर भी स्थिर बिछोड़े का निश्चय न हुआ। आँख मुँदी हुई, परन्तु मुख में कोई परिवर्तन नहीं, मानो लेटे हुए सन्ध्या कर रहे हैं। वही हृष्ट-पुष्ट शरीर, वही विशाल छाती, कुछ भी भेद न था। अश्रुधारा बहाते हुए सब भाइयों ने प्रेमपूर्वक वस्त्र पहनाये। बाहर अर्थी लाते ही सारा शरीर श्वेत पुष्पावली से ढाँपा गया। कैमरा (Camera) तैयार था, मुँह खोलकर अन्तिम चित्र फ़िलिया गया। इस समय दो सहस्र पुरुष अन्तिम दर्शन के लिए खड़े थे।

अर्थी उठाई गई और शहीद की सवारी सीधी अतारकली में पहुँची। थोड़ी ही देर में २० सहस्र का ताँता साथ था। यहाँ माता भी आ पहुँची जिसका विलाप सुनकर २० सहस्र आँखों से नदियाँ बहने लगीं। एक युवक अचेत होकर गिर पड़ा।

अर्थी ने शहर में प्रवेश किया। प्रत्येक स्थान में आर्य-जाति की देवियों के नीचे छतें फटी पड़ती थीं। प्रत्येक देवी को ऐसा दुःख था जैसा उनका कोई प्यारा बच्चा सदा के लिए जुदा हो गया हो। वे लोग जो कभी अपनी दुकान से हिलकर किसी सभा या सुसाइटी में नहीं गए, गुलाब जल के कण्टर अर्थी पर बहा रहे थे। किसी-किसी स्थान पर तीस-तीस हजार की भीड़ हो जाती थी। फूल बेचनेवालों ने मुँह माँगे दाम लिये। भूमि पुष्प-वर्षा से रँगी पड़ी थी। अन्त को सवारी नगर से बाहर निकली और वेद-मन्त्रों का उच्चारण करते तथा वैराग्य के भजन गाते सात सहस्र से अधिक भाई श्मशानभूमि तक पहुँचे। ज्ञान होता था कि चिरकाल से सोई आर्य-जाति जाग उठी है और धर्म पर सर्वस्व न्यौछावर करनेवालों का सत्कार करना सीखने लगी है।

श्मशान में अर्थी को रक्खा गया और फिर अन्तिम दर्शन की अभिलाषा हुई।

पढ़े-लिखे और अनपढ़, राव और रंक सबने दर्शन किये। एक भक्ति-रस से भरा भजन गाया गया और उपस्थित सज्जनों की शान्ति के लिए ईश्वर-प्रार्थना हुई। मृतक शरीर का वेद-मन्त्रों की आहुतियों से दाह किया गया और जब वह बहु-मूल्य शरीर केवल एक भस्म-ढेरी रह गया तो सब भाई घरों को लौटे।

उस समय आर्य-धर्मरूपी देवी का आर्तनाद स्पष्ट सुनाई देता था—

“हा वीर लेखराम ! पुत्र ! क्या तुम सदा के लिए मेरी सेवा से जुड़े होते हो ?”

इस प्रश्न का उत्तर मेरे अन्दर से निकला। मैंने श्रद्धापूर्वक मन-ही-मन में उत्तर दिया—“देवी ! धर्मवीर के रक्त के एक-एक बिन्दु से एक-एक वीर उत्पन्न होगा और वे सब तुम्हारी सेवा करेंगे।” और सचमुच उन रक्त-बिन्दुओं ने वीर प्रचारक उत्पन्न किये और सोमनाथ, वजीरचन्द्र, मथुरादास, तुलसीराम, योगेन्द्रपाल, जगतसिंहादि ने ओ३म् का झण्डा उठाते हुए प्राण दिये और अन्य भी बीसियों वीर काम कर रहे हैं, परन्तु आज पौने अठारह वर्षों के पश्चात् भी देवी का वही आर्तविलाप सुनाई देता है—

“हा पुत्र लेखराम ! वीर क्या सदा की यात्रा में ही चले गए ? फिर दर्शन न दोगे ?”

क्या देवी की पवित्र पुकार बहरे कानों पर ही पड़ती रहेगी और ब्राह्मण धर्म का पालन एक स्वप्न ही बना रहेगा ?

बन्दीघर के विचित्र अनुभव

“अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो, यथा क्रतुरस्मिल्लोके पुरुषो भवति तथेतः
प्रेत्य भवति सक्तुं कुर्वीत ॥” (उपनिषद्)

भावार्थ—अब वह (पुरुष) कर्म करे (क्योंकि) इस लोक में जैसे कर्म-
वाला पुरुष होता है वैसे ही आगे भी होता है अतः उसको करना
चाहिए।

भूमिका

चिरकाल से मैं जेल की प्रतीक्षा में था। रॉलेट विल बड़े लाट की काउंसिल
(Council) में पेश हुआ। समस्त भारत में हलचल मच गई। देश ऐसे उठ
खड़ा हुआ जैसे गाढ़ निद्रा में निमग्न मनुष्य भिड़ों के काटे से घबराकर उठ
खड़ा होता है। गुरुकुल के एक स्नातक को आशीर्वाद देकर मैंने ही दिल्ली में
“विजय” दैनिक पत्र खड़ा करवाया।^१ उसमें ३ मुख्य लेख क्रमानुसार निकले।
उनका शीर्षक था—‘हमारी छाती पर पिस्तौल’। उन लेखों ने संयुक्त प्रान्त,
पंजाब, राजपूताना और मध्य भारत में ‘विजय’ की धूम मचा दी। दिल्ली में
उसकी इतनी विक्री हुई कि ७००० प्रति छपने पीछे भी सैकड़ों उत्सुक मनुष्य
निराश लौट जाते थे। दिल्ली—दिलदाद (उर्दू, दिल्ली) में हिन्दी के दैनिक का
इतनी खपत होती थी, यह आश्चर्यजनक घटना प्रतीत होती है। परन्तु जब
बतलाया कि आर्या देवी को ‘विजय’ के साथ प्रेम था, जब यह जान लिया
जावे कि वीर बहादुरों तक को देवियाँ घर में पैर नहीं रखने देती थीं जब तक
वे ताजा ‘विजय’ का पर्चा हाथ में लेकर न आवें, जब इसे भी न जाना जाए कि
मुसलमान भाई भी ‘विजय’ को नित्य खरीदकर और हिन्दी जाननेवालों से उसे
सुनकर चैन लेते थे, तब इसपर आश्चर्य न होगा कि विजय ७००० की संख्या
में बिककर भी पर्याप्त नहीं समझा जाता था। मुसलमान भाइयों का मतलब था
कि ‘विजय’ उर्दू में भी निकला करे। यदि ‘विजय’ को उर्दू का चोला भी पहना
दिया जाता तो २५००० प्रतियों से भी दिल्ली की तृप्ति करनी कठिन हो जाती।
आन्दोलन खूब हुआ। दिल्ली, रोहतक और गुड़गाँव के ग्रामों में भी ‘विजय’

की पताका फहराने लगी और ग्रामीण भी अपने अधिकारों और उनपर नौकर-शाही के अत्याचारों को समझने लग गए। उस समय महात्मा गांधी ने सत्याग्रह की घोषणा निकाली। मैं उस आन्दोलन में कैसे सम्मिलित हुआ, उसकी कहानी कई बार पत्रों में निकल चुकी है। मेरे परम मित्र स्वर्गवासी गोपालकृष्ण गोखले के मुख्य शिष्य मिस्टर श्रीनिवास शास्त्री (मिस्टर और शास्त्री का मेल वेदब है परन्तु नायक को स्वीकार यही है) को मैं, माननीय मालवीय जी की प्रेरणा से मिलने गया। मेरे मिलने का उद्देश्य यह था कि यदि नौकरशाही रॉलेट बिल के पास करने पर तुली ही रहे, और हिन्दोस्तानी सभासद अपनी अप्रसन्नता प्रकट करने के लिए काउंसिल से उठ खड़े हों तो मिस्टर शास्त्री भी उनके संग ही उठ जाएँ। मैंने तो शास्त्री जी के साथ यह चर्चा छेड़ी और उन्होंने गांधी जी की सत्याग्रह-सम्बन्धी घोषणा का जिक्र करके लीडर^३ का पचाँ (जिसमें वह घोषणा छपी थी) मेरे आगे कर दिया और कहा कि वह उस घोषणा के विरुद्ध अपनी लेखनी उठाना कर्त्तव्य समझते हैं। मैंने बहुतेरा समझाया कि जब वह गांधी जी के मत और कर्मों के जिम्मेदार नहीं तो खाहमखाह दाल-भात में मूसलचन्द बनने का क्या लाभ? जब उन्होंने एक न सुनी और कहा, "It is my duty to protest against this." तब मैंने उत्तर दिया—"Then I must sign the Satyagrah Vow." और तब मेरे लिए सत्याग्रह के प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर कर देना आवश्यक हो गया। मैंने मिस्टर शास्त्री के ग्रहों से लीटते ही महात्मा गांधी को तार दे दिया। तीसरे दिन वह दिल्ली आए, तब मैंने शायद ५ या ६ मार्च सन् १९१९ को पहली बार राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेने की घोषणा कर दी। फिर मैं बम्बई में महात्मा जी के साथ काम करके सूरत, भड़ौच और अहमदाबाद होता हुआ ११ मार्च को दिल्ली लौटा। वहाँ २५, २६ और २७ को मेरे तीन व्याख्यान हो चुके थे। जब लॉर्ड चैम्सफोर्ड (उस समय के वायसराय) ने भारत-सचिव मिस्टर मानटिगू को एक पारिभाषिक तार (Cipher Cable) भेजा जिसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद कोई दैवी शक्ति मुझे दे गई। वह लेख तो महात्मा गांधी को दिखाकर मैंने फाड़ डाला था परन्तु उसके शब्द-शब्द मुझे स्मरण हैं। तार यह था :—

"The agitation is proceeding a pace. Mahatma Munshiram who has now assumed the name of Swami Shraddhanand, has joined hand with Gandhi. He has been a well-known religious head for a long time and has gained considerable reputation as a social reformer also. He appears to be anxious to gain notriety as a political agitator too. It is still to be seen what stamina he has got when the time for suffering comes. His elder son was for some time the guest of the well-known revo-

lutionist as Buenos Aryes. His younger son is running a rabid Anti Government Vernacular daily in Delhi. Let us wait and see."

अर्थात् आन्दोलन खूब चल रहा है। महात्मा मुन्शीराम ने, जिसने अब स्वामी श्रद्धानन्द नाम रख लिया है, गांधी जी के साथ हाथ मिला लिया है। बहुत काल से वह प्रसिद्ध धार्मिक नेता रहा है और सामाजिक सुधार में उसने बहुत नाम पैदा किया है। अब मालूम होता है कि वह राजनैतिक आन्दोलन में भी मशहूर होना चाहता है। अभी देखना है कि उसमें सहन करने की कितनी शक्ति है। उसका बड़ा लड़का^१ कुछ काल तक प्रसिद्ध राजनैतिक विप्लवकर्त्ता..... का व्यूनीस एरिस (दक्षिण अमेरिका के एक प्रजातन्त्र राज्य की राजधानी) में अतिथि रहा है। उसका छोटा लड़का दिल्ली से गवर्नमेण्ट के विरुद्ध एक देशी भाषा का गरम दैनिक निकालता है।^२ हम प्रतीक्षा करते हैं कि क्या होता है।

स्वामी श्रद्धानन्द का रामराज्य

३० मार्च सन् १९१९ को दिल्ली में हड़ताल हुई। उसी दिन वर्तमान आन्दोलन के अन्दर ब्रिटिश नौकरशाही की सेना से, प्रजा पर गोलियों की बाढ़ भोंकवाई गई। हमारी मैदान में जमा हुई सभा को उस दिन दो बार मशीन-गनों और फौज ने घेरा। इन सब समयों में, फौजी जनरल और सिविल के चीफ कमिश्नर के सामने में ही हुआ था। बीस दिन बराबर (अर्थात् ३० मार्च से १५ एप्रिल सन् १९१९ तक) हड़ताल रही। उस बड़े समय के अन्दर ऐसा रामराज रहा जिसे दिल्ली-निवासी अभी तक न भूले होंगे। सेंध लगना बन्द, ताले टूटने बन्द, जूएखानों और शराबखानों के ठेकेदार बैठे शराबियों की प्रतीक्षा ही करते रहते थे। उस सारे समय में डिण्टी और चीफ कमिश्नर सारे फिसाद की जड़ मुझे ही समझते रहे। यदि कोई गवर्नमेण्ट का बागी था तो मैं था। शेष सब नेता खिंचे हुए काम करते थे, परन्तु, जहाँ उनमें से बहुतों को स्पेशल कान्स्टेबल बनाकर अपमानित किया गया, वहाँ मुझे किसी ने पूछा भी नहीं कि किधर रहते हो।

कई बार प्रसिद्ध हुआ कि मेरे नाम का वारण्ट कट गया है। मुझे पहली बार, शायद १० एप्रिल को बतलाया गया कि मेरी गिरफ्तारी रात को होगी। तब मैंने, ऊपर का और नीचे सीढ़ी का, दोनों किवाड़ रात को भी खुले रखने शुरू कर दिये। मैं उन दिनों इतना तंग था कि यदि मुझे जेल ले जाते तो मुझे आराम मिलता। डेढ़-दो लाख प्रजा को अहिंसा धर्म का क्रियात्मक पालक बनाना कोई छोटी बात न थी। परन्तु कोई भी यमदूत मुझे विश्रामगृह में ले जाने को न पहुँचा।

१६ एप्रिल को हड़ताल खुल गई। मेरे भाई एण्ड्रूस^१ के चीफ कमिश्नर को मेरा सन्देश पहुँचाने पर हिन्दू-मुसलमान नेताओं ने दो दिनों में ही स्पेशल कान्स्टेबली की अपमानजनक अवस्था से मुक्ति पाई। उनमें से कुछ रईस मुक्त होते ही शिमले की हवा खाने चले गए; देहली की हवा उनके लिए बहुत गरम हो चुकी थी।

दूसरी बार—मालूम हुआ कि चीफ कमिश्नर साहब की तलबी शिमले में हुई है। पंजाब के छोटे लाट, ओडवायर (O Dwyer) ने जोर दे रक्खा था कि सारी विपदा पंजाब में देहली से जाती है। गांधी तो केवल कार्य-प्रणाली बतलानेवाला है, उसको क्रिया में लानेवाला मैं हूँ। ओडवायर के हाथ वह चिट्ठी आ गई थी जिसमें ला० दुनीचन्द्र को मैंने लिखा था कि यदि मेरी आवश्यकता हो तो मैं लाहौर पहुँचूँ। ओडवायर का उसपर जो अपना हुक्म लिखा हुआ था उसकी नकल मुझे एक सप्ताह में २५ जून १९१६ के पीछे दिखाई थी जब मैं लाहौर मार्शल लॉ से पीड़ित परिवारों को आर्थिक सहायता देने गया था। उसमें लिखा था कि मुझे अमृतसर न रोका जाए वल्कि लाहौर पहुँचने दिया जाए। वहाँ मेरे पैर में और हाथ में हथकड़ी लगाकर बाजारों में से घुमाकर ले-जाया जाए। यह भी हुक्म था कि शहर में मशीनगनें लगा दी जाएँ, दो हजार हथियारबन्द फौज बाजारों में खड़ी हो जाए और मुझे इस प्रकार अपमानित करके घुमाया जाए कि जिससे लोग दहल जाएँ। परन्तु मैं उन दिनों लाहौर न जा सका और ओडवायर की और मेरी इच्छा दोनों की दिल-ही-दिल में रह गई, अस्तु।

चीफ कमिश्नर से वायसराय ने, या यूँ कहें कि सर विलियम विन्सेंट ने कहा कि मुझे गिरफ्तार कर लिया जाए। सुना है चीफ कमिश्नर ने उत्तर दिया कि दिल्ली को तबाही से और उस समय की गवर्नमेण्ट को बदनामी से स्वामी श्रद्धानन्द ने बचाया है। इसलिए मैं उसे गिरफ्तार नहीं कर सकता। उन्होंने यह भी कहा कि दिल्ली में न कोई खराबी है और न वहाँ से कोई विपत्त बाहर जाती है। विन्सेंट के बहुत जोर देने पर सुना है चीफ कमिश्नर ने कहा कि यदि स्वामी श्रद्धानन्द को गिरफ्तार करना है तो गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया स्वयं दिल्ली का प्रबन्ध कुछ दिनों के लिए अपने हाथ में लेवे। दो-चार दिन बाद वह जन-अपवाद भी ठण्डा पड़ गया।

तीसरी बार—अफवाह उठी, उसकी सचाई तो नाटक के एक नट से ही मालूम हो गई। जो नेता शिमले की सड़ हवा खाने गये थे उनमें से एक रायबहादुर और वकील को गुप्तचर दल (C.I.D.) के डायरेक्टर सर चार्ल्स क्लीवलैंड ने बुलाके पूछा कि यदि अन्न और शान्ति स्थिर करने के लिए स्वामी श्रद्धानन्द को गिरफ्तार किया जाये तो आपकी क्या राय है? तीनों ने (जिनमें से दो मेरे

साथ लीडरी का कार्य कर चुके थे) कहा कि यदि अम्न कायम करवाने के लिए गरिप्तार करना पड़े तो क्या हर्ज है? गुप्तचराधीन बोले—“तब आप लोग जरूर सरकार का साथ देंगे।” ये सब सिर हिलाकर चले आए। घर पर जाकर वकील साहब बोले—“यार, तुम बहुत चूके। अगर स्वामी जी के पकड़े जाने पर लोग भड़क उठे तो गजब हो जाएगा! फिर हमपर हर्फ आएगा। चलो बात सुलझा आवें।” तीनों उल्टे पैर गये और साहब से बोले—“हुजूर, एक बात कहनी हम भूल गए। स्वामी श्रद्धानन्द को गरिप्तार देहली में न कीजिए, देहली से बाहर कीजिए। देहली में फिसाद हो जाने का डर है।” साहब ने कुछ उत्तर न दिया और ये लोग लज्जित-से लौट आए। उस समय भी गरिप्तारी न हुई।

चौथी बार—पुलिसवालों ने प्रसिद्ध किया कि देहली से बाहर जाने का मुझे हुक्म नहीं है। पं० मोतीलाल नेहरू के निमन्त्रण पर मैं ४ जून १९१९ को प्रयाग पहुँच गया। अलीगढ़ तक जो सी० आई० डी० ने पीछा किया उससे तो मालूम होता था कि गरिप्तारी होगी परन्तु वहाँ भी ढाक के तीन पात ही निकले।

पाँचवीं बार—जब अमृतसर में नेशनल कांग्रेस की बैठक को अन्य प्रकार कृतकार्य करना असम्भव देखकर मैंने स्वागतकारिणी सभा के सभापति का पद स्वीकार किया, उस समय भी (नवम्बर १९१९ के अन्त में) प्रसिद्ध हुआ था कि कांग्रेस की बैठक बन्द करने के लिए मुझे पंजाब से देशनिकाला दिया जायेगा। उस समय वर्तमान गवर्नर, सर एडवर्ड मैक्लैगन को मिलते ही जन-अपवाद का खण्डन हो गया था। फिर मैं गुरुकुल चला गया। वहाँ ‘श्रद्धा’ साप्ताहिक निकाला।^{१०} उसके दो विशेष लेखों के निकलने पर छठी बार प्रसिद्ध हुआ कि मुझपर मुकद्मा चलाया जाएगा। एक आर्थसामाजिक लेखक ने मेरी, जेल-यात्रार्थ, सिफारिश भी की और सरकार-अंग्रेजी को युक्तियाँ भी बतलाई, परन्तु फिर भी लॉर्ड चैम्सफोर्ड की गवर्नमेण्ट न हिली।

सातवीं बार—मेरे ब्रह्म देश में रंगून पहुँचते ही उस सूबे के छोटे लाट और लॉर्ड हार्डिञ्ज के समय के मेरे मेहरबान होम मैम्बर, सर रेजिनल्ड क्रेडक, ने लॉर्ड चैम्सफोर्ड से मेरी गरिप्तारी की आज्ञा माँगी। यह पत्र-व्यवहार भी किसी दैवी चिड़िया ने लाकर मुझे दिखा दिया। मैं एक मास तक ब्रह्म देश में घूमा। एक डिप्टी सुपरिन्टेण्डेण्ट, एक इन्स्पेक्टर और दो सब-इन्स्पेक्टर, इतने सी० आई० डी० के सभ्य बराबर मेरे साथ रहे और स्थानीय पुलिस का तो कुछ ठिकाना ही न था। लाट साहब के कैम्प ‘भेमियो’ में भी दो व्याख्यान दिये। माण्डले, श्वेबो, मोलमीन, पीगू, प्रोम, मचीना और अन्य कई छोटे-छोटे स्थानों में स्वराज्य और स्वतन्त्रता का खुला प्रचार किया। सारे काम की समाप्ति रंगून की ईदगाह पर पच्चीस सहस्र की उपस्थिति में हुई। मेरे ब्रह्म देश में रहते हुए

पत्ता तक नहीं हिला, परन्तु मेरे जहाज पर पैर रखने के दूसरे दिन से ही मेरे साथ कामकरने वालों को तंग करना आरम्भ हो गया।

नागपुर कांग्रेस में मुझे इन्फ्लुएन्जा (Influenza) हो गया, और देहली पहुँचने पर वह गुर्दे की बीमारी (Bright's disease) के रूप में परिवर्तित हो गया। मैं गुरुकुल भूमि कांगड़ी में पहुँचकर साढ़े तीन महीने खटिया पर पड़ा रहा। उस व्यवस्था में भी जो सन्देश मैंने प्रेस द्वारा भेजे, वे भी बहुत स्पष्ट थे। एप्रिल सन् १९२१ के अन्त में फिर बाहर निकलकर कानपुर, इलाहाबाद, जबलपुर आदि स्थानों में खुले व्याख्यान देता हुआ देहली पहुँचा। फिर गुरुकुल में तीन महीने रहकर जो लौटा तो देहली की नौकरशाही की दलित जातियों को फुसलाते और उन्हें हिन्दू-मुसलमान के विरुद्ध खड़े करते देखा। मैंने पूरा योग देकर उन्हें सीधे मार्ग पर चलाने की कोशिश की और उनके लिए अपने व्याख्यानों में कोई कसर न उठा रखी। उस समय चमारों के चार-पाँच चौधरियों ने, जिनका हलवा-माँडा उसी काम पर निर्भर था, मेरा विरोध किया।

आठवीं बार—मशहूर किया कि मेरी और दलितोद्धार सभा के मन्त्री (डॉ० सुखदेव) की गरिपतारी के वारंट निकल रहे हैं, परन्तु परिणाम कुछ न निकला। सन् १९२१ का अन्त मैंने अहमदाबाद कांग्रेस में सम्मिलित होकर बिताया और वहाँ से बम्बई जाकर दस दिनों तक विविध स्थानों में तीन व्याख्यान दिये। फिर अकोला, अमरावती आदिक स्थानों में आर्यमन्दिरों और उनसे बाहर भी शुद्ध वैदिक स्वराज्य और मनुष्य के स्वाभाविक स्वातन्त्र्य की घोषणा की। देहली लौटकर प्रिन्स ऑफ वेल्स के स्वागत में राजधानी के अन्दर पूरी हड़ताल का यत्न किया। देहली में पहले विज्ञापन हिन्दू सभा की ओर से मैंने लगवाए। प्रेस द्वारा गौघातकों के पुष्टपनाह, प्रिन्स के स्वागत से अलग रहने को हिन्दू मात्र को प्रेरणा की और हिन्दू युनिवर्सिटी के संचालक पण्डित मदनमोहन मालवीय जी से भी, प्रेस द्वारा ही, प्रश्न किया कि जिस प्रिन्स के साथ मनो गौमांस जहाज के द्वारा कई दिनों की खुराक मद्धे आया है उसको किस मुँह से हिन्दू संस्था की ओर से उपाधि देने के लिए बुला रहे हैं? उन दिनों हकीम अजमल खाँ साहब ने बतलाया कि उनके और डॉक्टर अन्सारी के नाम के वारंट कट चुके हैं और मुझे प्रेरणा की कि वालण्टियरों के साथ न निकलूँ, जिससे उनके पीछे कांग्रेस का काम चल सके। फिर भी एक बार मैं एक दस्ते के साथ गया, परन्तु किसी ने कुछ न पूछा।

फिर बारदोली का प्रसिद्ध ठहराव आया। उसके विषय में जो तार मैंने दी और उसपर जो वाद-विवाद चला, वह सिद्ध कर रहा था कि नौकरशाही के विचार मेरे सम्बन्ध में अनिश्चित हैं। मार्च १९२२ में मैं गुरुकुल चला गया। वहाँ से एप्रिल में, अन्तिम निवृत्ति सहित, लौट आया। जून के आरम्भ में लखनऊ-

कांग्रेस कमेटी की बैठक में भाग लिया। वहाँ दलितोद्धार पर जोर दिया, जिसका परिणाम एक सब-कमेटी के रूप में निकला जिसका सभासद भी मुझे बनाया गया। जो आन्दोलन सभा वहाँ बनी उसके मैं विरुद्ध था और उसका परिणाम भी वही निकला जो मैंने बतला दिया था। अछूतोद्धार के प्रश्न पर कारकुन (working) कमेटी की आनाकानी देखकर मैंने दलितोद्धार उप-सभा से त्याग-पत्र देने के अतिरिक्त कांग्रेस के सब वर्तमान कार्यों से किनारा कर लिया और आर्य (हिन्दू) जाति के संगठन को ब्रह्मचर्य द्वारा दृढ़ करके अछूतोद्धार की ओर विशेष ध्यान देने की तैयारी कर रहा था कि बिना अगाऊ नोटिस दिये मुझे गरिपतार कर लिया गया और मैं—बिना खून लगाए ही शहीदों में दाखिल हो गया। ६ सितम्बर शाम को गाजी मुस्तफा कमालपाशा को उनकी जगद्विख्यात विजय के लिए, एक बड़े जलसे में, बधाई देकर मैं रात की बाँवड़े मेल से अमृतसर चल दिया। उसी ट्रेन से मसीहुलमुल्क, हकीम अजमल खाँ, मौलाना कफायतुल्ला और पण्डित प्यारेलाल शर्मा भी अमृतसर जा रहे थे। दिल्ली से चलते हुए बतलाया गया कि सब हिन्दू-मुसलमान अकाली भाइयों को रुपया और आदमियों से सहायता देने को तैयार हैं। मुझसे यह भी प्रतिज्ञा ली गई कि यदि 'शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी' आदमियों को अमृतसर पहुँचने की आज्ञा दें तो तत्काल १०० भाइयों को भेज दिया जावेगा। ५०० नाम लिखे जा चुके थे और ५००० तक भरती करने का विचार था। मेरा विचार था कि अमृतसर का काम पूरा करके सोमवार ११ सितम्बर की शाम को मुल्तान के लिए चल दूँ।

खालसा भाइयों को सन्देश

१० सितम्बर को प्रातःकाल अमृतसर पहुँचते ही माननीय मालवीय जी का सन्देश पहुँचा कि सबसे पहले उन्हें मिला जाए। मैं स्तानादि नित्य कर्मों से निवृत्त होकर बाहर बाग में मालवीय जी के पास पहुँचा। हकीम साहब अभी नहीं पहुँचे थे। मुझे बतलाया गया कि वह अकाल तख्त के दीवान में गये हैं। मैं भी सीधा वहाँ चला गया। मैंने दिल्ली-निवासियों को सन्देश दे दिया और साथ ही आशा दिलाई कि संयुक्त प्रान्त (U.P.) से भी बहुत मनुष्य आने को तैयार होंगे।

अकाल तख्त से उठकर मैं मालवीय जी के पास गया। वहाँ सब भाई जमा थे। उस शाम जलियाँवाला बाग में होनेवाली मीटिंग में पेश होने के लिए रेजोल्यूशन तैयार हो रहे थे। मैंने इस प्रकार का प्रस्ताव पेश करना चाहा कि जिससे ज्ञात हो जाए कि सब हिन्दू-मुसलमान अकाली दल के साथ, पिटने और जेल में जाने के लिए तैयार हैं। माननीय मालवीय जी ने इसको टालना चाहा कि शायद गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी सहायता लेने से इन्कार करे, इसलिए उनसे पूछ लेना चाहिए। मैंने उत्तर दिया कि कमेटी की शान इसी में है कि वह इन्कार

करे, परन्तु हमारा कर्तव्य यही है कि हम अपने भाइयों के साथ योग देने के लिए तैयार रहें। रेजोल्यूशन तैयार करके मुझे दिखा लाने का बोझ प्रोफेसर रुचिराम साहिनी पर डाला गया और उन्होंने गुरु के वाग जाते हुए मेरी सम्मति भी ले ली। मुझे मालूम नहीं कि फिर वह रेजोल्यूशन उस शाम की मीटिंग में पेश हुआ या नहीं।

लगभग एक बजे मोटरगाड़ी में थोड़ा-सा स्थान लेकर मैं गुरु के वाग को चल दिया। वहाँ क्या हुआ और मैंने क्या देखा, वह मैं अपने 'अदालती' बयान में लिखवा चुका हूँ। ५.१५ बजे शाम को अमृतसर से लौटने लगे। एक पुलिस-इन्स्पेक्टर ने पुलिस सुपरिण्टेण्डेंट का हुकम-गरिफ्तारी दिखाया। भारत दण्ड-संग्रह की धारा ११७, १५७ और १०६ के अनुसार अभियोग चलाने के अभिप्राय से मुझे गरिफ्तार किया गया। दो इन्स्पेक्टर (एक हिन्दू, एक मुसलमान) साथ हुए, परन्तु उनके पास कोई सवारी न थी। हुकीम अजमल खाँ साहब ने अपना मोटर दिया। दोनों इन्स्पेक्टरों सहित मलिक लाल खाँ और लाला दुनीचन्द्र भी मेरे साथ आए और जेल के द्वार पर मुझे इन्स्पेक्टरों सहित छोड़कर मेरा यैला और बिस्तरा भिजवाने लाला राधाकृष्ण जी के आर्य-भवन की तरफ चले गये जहाँ मैं उतरा था।

अमृतसर जेल में पहली रात

जेलर अपने मकान के अन्दर थे। मैंने उनके भृत्य से जल लेकर हाथ-पैर धोए। उसने आसन बिछा दिया और मैं संध्या में बैठ गया। इन्स्पेक्टरों के पास कोई वारंट न था, इसलिए जेलर ने किसी अंग्रेज अफसर के साथ टेलीफोन द्वारा बातचीत की और मेरे लिए जेल का संगीन दरवाजा खोल दिया। पुलिस-इन्स्पेक्टर रसीद लेकर चले गये और मुझे ले-जाकर एक दो-मंजिला वार्ड की निचली मंजिल के पहले पिजरे में बन्द कर दिया गया। उस समय रात के ८.१५ बज चुके थे। कोठरी लगभग १२ फीट लम्बी और आठ फीट चौड़ी थी। एक ओर दीवार के साथ लगा हुआ डेढ़ बीता ऊँचा, तीन फीट चौड़ा, और पौने छः फीट लम्बा, मिट्टी का चबूतरा था; उसपर एक टाट बिछा था। दो कम्बल पड़े थे जिनमें से एक को लपेटकर सिरहाना बना लिया और अपना कुर्ता लपेटकर उसी पर धर लिया। दूसरा कम्बल टाट पर बिछाकर लेटने को ही था कि ऊपर से किसी सभ्य ने पूछा कि कौन आया है? मेरा नाम सुनकर एक लम्बे खालसा जी उतर आये जिन्होंने एक गिलास और एक पंखी दे दी। मैंने उन्हें कुछ पहिचाना। जब गुरु के जंड़ियाले में गया था उस समय वह मुझे मिले थे। जंड़ियाले से जो छः कांग्रेस के कारकुन पकड़े गए थे, उनमें वह भी आये थे, और एक वर्ष की कड़ी कैद का हुकम इनके लिए लग चुका था। उन्होंने बतलाया

कि छः में से चार हिन्दू-मुसलमान क्षमा माँगकर चले गए हैं, एक जैनी डग-मगाया हुआ है, परन्तु खालसा जी दृढ़ हैं।

इतने में पानी की घड़ी भी आ गई और नम्बरदार कोठरी का ताला ठोक-कर चला गया। गरमी उस रात बहुत थी। मैं पंखा हाथ में लिये लेटा हुआ था। १०-११ बजे फिर कोठरी खुली, लालटेन भी साथ आई। मेरा थैला और बिस्तर भी आ गया, परन्तु बिस्तरे की सूतली उतारकर जेलर साहब ले गए। कैदी के पास किसी प्रकार की भी रस्सी, सूतली या डोर नहीं रहने पाती। एक तो शायद यह भय कि रस्सी बांधकर २० या २२ फीट ऊँची दीवार न फाँद जाये और दूसरा भय यह कि गले में डालकर आत्मघात न कर ले।

रातभर पंखा झलते व्यतीत हुई। कोई हमदर्द न था। केवल पहरेवाला हर घण्टे पीछे बोलता है, 'बोल जवान, बोल जवान'। यदि कोई न बोला तो उसको गाली से खबर लेकर बुलाया जाता। मैं हर बार पहली हाँक पर ही उत्तर देता रहा। पहरेवाला बोलता तो चारों ओर से नम्बरदार चिल्ला उठते—'सब अच्छा'। मैंने भी उनसे उसी रात शिक्षा ली और 'बोल जवान' का उत्तर दिया—'सब अच्छा'। अन्दर ही शौच के लिए बर्तन रक्खा था; अन्दर ही मिट्टी का लोटा लघुशंका (पेशाब) के लिए; यह नया अनुभव भी लिया। शौच होकर पास रखी मिट्टी ऊपर डाल दी, लोटे में लघुशंका की। हाथ धोकर शुद्ध मिट्टी से अपना जलपात्र माँगा और फिर हाथ धोकर बैठ गया। ५.३० बजे नम्बरदार आया, 'उठ जवान, बुहारी लगा।' सब कमरों के सामने यही हाँक लगाता घूम गया। बुहारी अन्दर पड़ी थी। मैंने बुहारी भी लगा डाली। तब हमारे अफसर नम्बरदार ने दरवाजे खोल दिए। और कैदी तो चीलों की तरह पाखाने पर जा पड़े और मैंने नलके पर जाकर हाथ और पैर धोये। फिर मैं तेल मलने कमरे में चला गया और स्नान करके लौटा तो भंगी पाखाना-पेशाब उठा ले गया। तब मैंने बाहर निकलकर सूर्य भगवान् के दर्शन किये और अकाली नेताओं से मिला।

कारण्टीन (Quarantine) गृह का वर्णन

जिस गृह की निचली कोठरी में मैंने रात काटी, उसका नाम कारण्टीन है। सत्रह पिजरेनुमा कोठरियाँ नीचे और इतनी ही ऊपर हैं। उससे आठ-दस कदम की दूरी पर जेल की पिछली बड़ी दीवार है। कारण्टीन के ठीक मध्य, इमारत और दीवार के ठीक बीचों-बीच पाखाना है। पाँच बजे पिजरे खुलने को घंटी बजी फिर पीने छः बजे रोटी बाँटने की। पाखाने में केवल छः आदमियों के लिए पीठ से पीठ जुड़ी हुई, बैठने की जगह, ईंटों की खुड्डी भी नदारद और पर्दा ऐसा, जैसा भंग पीनेवाले पुत्र ने पिता की आँख बचाने के लिए तिनके का कर लिया था। इस पाखाने में ३५ कारण्टीन के और ५२ छौलदारियों वाले कैदियों को निवृत्त

होना होता था। फिर दो-तीन नम्बरदारों और उतने ही चपरासियों का भी इसी पर निर्वाह था। नहाने का तो उस समय नाम लेना भी कैदी के लिए पाप ! घंटी बजी और अपना-अपना लोहे का दो-ढाई आने मूल्यवाला (दरोगा जी ने यही मूल्य बतलाया था), बाटा हाथ में लिये कैदी पंक्ति में उकड़ू बैठने लग गए। कोई भाई अभी पाखाने बैठा ही है कि एक पठान नम्बरदार ने पकड़कर उसे गर्दनिया दी। वह गरीब आवदस्त लेकर ही पंक्ति में बिना बाटे के बैठ गया और उस अध-कच्ची जली हुई रोटी पर ही दाल डलवाकर खाने लगा। यदि उस समय इस उत्तम भोजन को खाना शुरू न करे तो दिनभर भूखा रहे और घेलुए (पंजाबी हंगे) उसे शायद पाँच-सात दिन के लिए डंडा-वेड़ी भुगतनी पड़े।

हवालाती (पोलिटिकल) कैदियों को ऊपर की मंजिल में रक्खा हुआ था। सुपरिण्टेंडेंट मि० जेन्किन्स असिस्टेंट बजे आया। जेलर ने उससे पूछकर मुझे ऊपरली मंजिल में जाने की आज्ञा दी। वहाँ शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी का मानो कार्यालय ही था। सरदार महताबसिंह बैरिस्टर प्रधान, डिपुटी प्रेसिडेंट पंजाब काउंसिल, सरदार भागसिंह बी० ए० एल० बी०, सरदार नारायण-सिंह बैरिस्टर मैनेजर गुरुद्वारा ननकाना साहब, प्रोफेसर साहबसिंह बी० ए०, उप-मन्त्री सरदार रवेलसिंह, सरदार मुकन्दसिंह, सरदार तेजासिंह लड़काना-निवासी तथा सरदार तेजासिंह अकालियों के जनरल और सेनाध्यक्ष, सरदार उमरावसिंह जिला-मन्त्री खालसा लीग और सबसे बढ़कर खालसा पंथ के माननीय वृद्ध बाबा केहरसिंह पट्टी वाले और अन्य थे। सरदार महेन्द्र गोपाल और लाला रत्नचन्द्र कांग्रेस के प्रचार में पकड़े आए थे जिनमें से खालसा जी तो एक साल की कैद आनन्द से भुगत रहे थे, परन्तु रत्नचन्द्र जी उसी दिन पेशी के लिए जो गए तो क्षमा-प्रार्थना करके चम्पत हुए और मुझे न मिले और उन्हीं के खाली किये हुए पिजरे में मुझे स्थान दिया गया। ऊपर की कोठरी-बैरिक के आगे साढ़े चार फीट लकड़ी का बरामदा है जिसमें सब रात को सोते थे। नीचे से ऊपर इतना भेद था कि हमारे दरवाजे दिन-रात खुले रहते थे। हाँ, दो बंदिशें थीं—एक तो जब आठ और नौ बजे के बीच में सुपरिण्टेंडेंट आता तो दस-पन्द्रह मिनट पहले ही हम सब को पिजरे में बन्द कर दिया जाता। सुपरिण्टेंडेंट साहब खटखट करते, कवायद की चाल बरामदे में नाक की सीध पर देखते अपने लाव-लशकरसहित एक मिनट में गुजर जाते। लशकर उनका क्या था ? उनके पीछे जेलर, फिर जमादार, वार्ड के चपरासी, नम्बरदार क्रमानुसार बूट खटखटाते, एक सीढ़ी चढ़ते और दूसरी सीढ़ी उतर जाते। यदि किसी हवालाती को कुछ कहना हुआ तो दो-तीन मिनट और लग गए।

दूसरी बंदिश यह थी कि जब साधारण कैदियों को खिला-पिला करके 'सब अच्छा' की घंटी (जुदा-जुदा तीन टकोर) बजती, उससे पीछे हम लोग नीचे न रहे

सकते और प्रातःकाल चार वजे से पहले नीचे नहीं उतर सकते थे।

सब-जेल का पूरा नक्शा

अमृतसर का जेल सब अर्थात् छोटा है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई इतनी ही है, जितना मियाँवाली जेल में ४५ विशेष राजनैतिक कैदियों के लिए अहाता। अमृतसर में उतनी ही डेढ़ वा सवा बीघे जमीन के अन्दर २४६ कैदियों की जगह है और मेरे सामने जब अकाली दल की चढ़ाई हुई तो ५५० तक एक समय में नई छोलदारियाँ लगीं और २० के स्थान में ४० वा ४५ घुसेड़कर रखे गए। जब संख्या और बढ़ गई तो चार-पाँच सौ गोविन्दगढ़ के किले में रखकर भोजन नौ सौ से एक हजार तक का उतने ही लांगरी (पाचक) उसी १८ फीट लम्बी और १४ फीट चौड़ी कोठरी में (जिसकी खिड़कियों और रोशनदानों में भी जाली लगी हुई है) दाल-रोटी प्रातः और शाक-रोटी सायंकाल बनाते थे।

जेल का दोहरा दरवाजा मजबूत लोहे का बना है। दोनों दरवाजों के मध्य में एक डेवढ़ी है जहाँ जेल का संत पितरस (कुंजी-वरदार) इधर-उधर चक्कर लगाया करता है। जेल के अफसरों के लिए बड़ा दरवाजा खोल देता है, परन्तु कैदियों के लिए छोटी खिड़की ही खोली जाती है। संत पितरस (Saint Peter) तो वारण्ट-दाखिला देखकर स्वर्ग की कुंजी खोलता है; जेल का पितरस वारण्ट-खाजिया देखकर बाहर भी निकाल देता है।

डेवढ़ी में प्रवेश करते ही दाहिनी ओर जेलर का ऑफिस (दफ्तर) है और बाईं ओर के कमरे में एक मेज-कुर्सी पड़ी रहती है, जिसपर बैठकर साहब सुपरिण्टेण्डेंट हस्ताक्षर आदि का काम करते हैं। अन्दर घुसते ही दाहिनी ओर एक दोमंजिला बैरिक है, आगे बढ़कर फिर दुमंजिला बैरिक और वस्तु-भण्डार (Store) इत्यादि। बाईं ओर रसोईघर, बुड्डीघर अर्थात् स्त्री कैदियों के लिए चार कोठरियाँ और बंद आँगन, छोटा-सा हस्पताल और बस। छोलदारियों की भरमार ने निकलना-पैठना कठिन कर छोड़ा था।

पाखाने-पेशाब का प्रबन्ध

बहुत ही खराब और मनुष्यों को पशु बनाने और निर्लज्जों को भी बेशर्मी की पराकाष्ठा पर पहुँचानेवाला है। पाखानों का वर्णन मैं कर चुका हूँ। ऊपरवाली मंजिल की बीचवाली कोठरियोंवाले दो घण्टों तक नाक नहीं सम्भाल सकते थे और नीचे एक खुड्डी का दूसरे से नाममात्र का पर्दा और बाहर से तो सर्वथा अरक्षित; खुड्डीयों पर बैठना भी मुश्किल। पेशाब के लिए मिट्टी के लोटे रखे हुए परन्तु उनमें पेशाब छोड़ने के लिए वैज्ञानिक शिक्षा (Scientific Training) की जरूरत और केवल पेशाब करने के लिए लोहे के खुले ढोल रखे हुए जिनमें जेल-सृष्टि के सामने

खड़े होकर पेशाब करना पड़ता। यदि जरा चूका तो नम्बरदार ने पीछे से लात ठोक दी, और नम्बरदार बेचारा भी क्या करे, यदि कोई चपरासी वा जमादार देख ले तो नम्बरदार की पेशी कर दे और उसे भी दण्ड मिल जाए। जो दण्ड जेल में मिलते हैं उनकी तो समाचारपत्रों में काफी छानबीन हो चुकी है।

जेलर गरीब को तो पूछता ही कौन है ! एक पले हुए मोटे-ताजे बीबे खत्री राय साहब दर्शक (Visitor) नियत थे। उनका ध्यान मैंने इस ओर खींचा और साथ यह भी बतलाया कि जिस पानी से भरी हुई नाली पर बैठकर कैदियों को इकट्ठे आवदस्त लेना पड़ता है उससे संचारी रोगों के फैलने का डर है तो उत्तर मिला, “मैंने दो बार रिपोर्ट की, परन्तु कोई सुनता नहीं।” मैंने कहा, “आप तो कैदियों के दुःख दूर कराने के लिए नियत हो। यदि कोई सुनता नहीं तो त्यागपत्र दे दो।” बोले, “आप सुपरिण्डेण्ट को कहो।” ठीक उत्तर मिला। ऊपर से तो विजिटर साहब हमारे दर्द पूछने आते, परन्तु असल मतलब और ही था। आप जब आते तो ब्रिटिश सरकार की हुकूमत की प्रशंसा करके सरदार महताबसिंह जैसे दृढ़-संकल्प, धर्मप्रिय सज्जन तक को अंग्रेजों के साथ झुककर भी राजीनामा करने की प्रेरणा करते और इधर की उधर लगाने का शुभ कार्य भी करते। इन्होंने सी० आई० डी० का इतना जबरदस्त काम किया होगा कि अब रायबहादुरी के अधिकारी हो चुके।

भोजन का प्रबन्ध

लंगर के कमरे के पिछले सिरे पर, द्वार के ठीक सामने भट्टी पर एक बड़ी देग (अजमेर शरीफ की दरगाहवाले नमूने की) रक्खी रहती है। अजमेरवाली उतारकर साफ की जाती है, तांबे की है और उसमें कलई भी की होती है। यहाँ लोहे की, बिना कलई की हुई है और कभी भट्टी पर से उतारी नहीं जाती। जब साफ की जाती है तो थोड़ा पानी डाल उसके अन्दर एक आदमी खड़ा होकर पैरों से मल-मलके साफ करता है। पानी कटोरे से बाहर निकाला, कुछ बाहर निकला कुछ अन्दर रहा और आदमी ने बाहर निकलकर आग जलाई। पानी अन्दर डाला और उसमें दाल छोड़ दी। जब रंध गई तो १ १/२ तोला प्रति कैदी हवालाती के हिसाब से तेल डालकर छोंक लगा दिया। शाम को इसी हिसाब से शाक-भाजी में तड़का लग गया। दाल और शाक दोनों काले स्याह हो जाते, क्योंकि लोहे की जंग भी तो नित्य उसमें मिल जाती होगी। मैंने डॉक्टर साहब का ध्यान इस ओर खींचा। उत्तर मिला कि दाल-भाजी तो कैदियों की कमजोरी दूर करने के लिए Tonic का काम देती है। डॉक्टर साहब ने पाखानों के बारे में भी कुछ ऐसा ही उत्तर दिया था।

जेल की डॉक्टरी का खात्मा टिंचर आयोडीन (Tincture Iodine) और

कोनीन की गोलियाँ पर ही हो जाता। यदि बुखार १०४ दर्जे का है तो सरदार नारायणसिंह जैसे श्रीमानों को भी जवाब मिलता, “आध सेर दूध लगवा दूँगा।” मैंने डॉक्टर साहब को प्रसिद्ध ‘सनाय’ से १००१ बीमारियों को दूर करनेवाले हकीम साहब का ही अवतार पाया।

जेलर (बाबू जीवनलाल कश्मीरी) सज्जन पुरुष प्रतीत हुए। कैदियों को आराम भी पहुँचाना चाहते थे, यथाशक्ति भोजन भी अच्छा देना चाहते थे। परन्तु जो वश की बात न थी उसमें क्या करते! भाजी वह जहाँ तक हो सके अच्छी मँगाना चाहते थे परन्तु, हुकम यह था कि जो सबसे सस्ती भाजी हो वही मँगानी चाहिए। मैंने सम्मति दी कि कुछ हल्दी दाल-भाजी में डाल दी जाय जिससे खाना पच जाय। उत्तर मिला कि लाल मिर्चें जितनी चाहें दाल-शाक में डाल सकते हैं परन्तु हल्दी की आज्ञा नहीं। मैंने सम्मति दी कि तेल के मूल्य का ही धी यदि दाल-शाक में डाला जाय तो व्यंजन अरुचिकर न रहेगा। उत्तर मिला कि जेल-कमीशन के मैमर मद्रास, गुजरात और बंगाल तीनों तेलप्रधान प्रान्तों के निवासी थे। यदि पंजाब और संयुक्त प्रान्त के भी प्रतिनिधि होते तो शायद धी का प्रश्न भी छिड़ता। मैंने सम्मति दी कि देग को यदि कलई करा लिया जाए तो दाल-शाक का रंग आँखों और जिह्वा को इतना न अखरे। दरोगा जी तैयार भी हुए। एक पोलिटिकल कैदी कलई का काम जाननेवाला भी आ गया। उजरत तो उसको कुछ लेनी ही न थी, कलई आदि सामान पर शायद छः या सात रुपये लगते। गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी से मैंने मनवा लिया कि यदि कलई के दाम जेल-फण्ड से न दिये जा सकें तो वे दे देंगे। दरोगा जी ने यह शुभ समाचार भी सुना दिया कि एक और देग का सौदा कर रहे हैं; नई देग कलई कराके चढ़ाएँगे तब पुरानी देग को उतारकर कलई हो जाएगी। परन्तु चार-पाँच दिन पीछे सब मामला टाँय-टाँय फ्रिज हो गया और जेलर साहब ने कह दिया कि नये सुपरिण्टेण्डेंट मिस्टर बोरन नहीं मानते।

जब ५०० अकाली सब-जेल में और ५०० गोविन्दगढ़ में थे, उस समय १००० की रोटी जेल से वनकर जाती थी। दो दिन गेहूँ की और शेष दिनों सतनाजे (चना आदि मिश्रित) की दो-दो मोटी रोटी प्रत्येक कैदी हवालाती को मिलती थीं। सरदार महतावसिंह इत्यादिक खालसा नेता भी वही रोटी खाते थे। उनका अधिकार था कि जैसा भोजन चाहें मँगाकर खाएँ, परन्तु वह सब भाइयों की-सी रोटी ही खाना ठीक समझते थे। यदि प्याज वा गुड़ वा अचार मँगाते तो जितने भाई जेल में होते सबमें बाँटकर खाते। सरदार महतावसिंह के घर से उनके पुत्र प्रेमसहित फल और मिठाई लाते, परन्तु सरदार जी सब भाइयों के हिस्से कर, बाँटकर, उतना ही बचा हुआ भाग आप खाते। मैंने खालसा नेताओं के तप तथा विनय-भाव को देखकर निश्चय किया कि स्वराज्य-प्राप्ति का भविष्य ऐसे ही वीर

अत्रियों के हाथों में हैं। मेहूँ की हो या मिस्सी, ऐसी तो रोटी खाकर पचाई जा सकती थी, परन्तु कच्ची वा जली हुई को पचाना बड़े शूखीर का ही काम था। सुपरिण्टेण्डेण्ट का ध्यान इस ओर सरदार महताबसिंह ने खींचा। उत्तर मिला कि यदि यह भोजन पसन्द नहीं तो जमानत देकर घर चले जाओ। यह अत्याचार इस-लिए था कि ना-मिल-वर्तन सत्याग्रह के वीरों को उनकी प्रतिज्ञा से गिराया जाए। परन्तु यहाँ गिरनेवाला १४ वर्ष का बच्चा भी न मिला जिसने जेल के अन्दर सब भाइयों के जोड़े साफ करने का व्रत लिया था। मेरी अमृतधारा^{११} की शीशिएँ यहाँ बहुत काम आईं। चक्षु रोग, पेट दर्द, कब्ज, शिर पीड़ा आदिक में इससे बहुत सहायता मिली और बहुतों ने सादे भोजन का अभ्यास कर लिया।

मैंने जो परिवर्तन चाहे थे उनमें कुछ व्यय भी नहीं होता था और पोलिटिकल कैदी ही नहीं अन्य साधारण कैदियों की शिकायत कम होकर गवर्नमेंट का कुछ भला ही हो जाता। परन्तु वहाँ फिर रोबदाव (Prestige) का प्रश्न नौकरशाही गवर्नमेंट को आ घेरता है। मुझे दीखता है कि यह गवर्नमेंट प्रेस्टीज (रोबदाव) पर सब-कुछ कुर्बान करने को तैयार है। और यदि यही हालत बरस-छः महीने और रही तो प्रजा के विश्वास और मान, सभ्य जगत् की सहमति तथा सहयोग, यहाँ तक कि ३० करोड़ पर साम्राज्यीय^{१२} शासन के स्थान में, नौकरशाही की बदौलत, ब्रिटिश गवर्नमेंट के पास सिवाय प्रेस्टीज के और कुछ शेष न रह जाएगा।

मेरा मुकद्दमा

मेरे मुकद्दमे का सारा हाल समाचारपत्रों में छप चुका है। मजिस्ट्रेट बनवारी-लाल का फैसला भी छप चुका है और उसपर प्रेस की सम्मतियाँ भी निकल चुकी हैं। मजिस्ट्रेट को मेरी बदौलत मनुस्मृति के विशेष स्वाध्याय का अवसर मिला, उसकी पड़ताल श्री स्वामी कृष्णतीर्थ जी महाराज शंकराचार्य^{१३} शारदापीठ ओजस्विनी भाषा में कर चुके हैं। मुझे उसके विषय में बहुत नहीं लिखना है। पहली बात यह है कि मेरी आयु ६७ वर्ष की थी, मजिस्ट्रेट ने बिना मुझसे पूछे ६० वर्ष की आयु लिख ली। जेल-रजिस्टर में आयु ६७ साल और फैसले में ६० साल। दूसरी बात यह कि मेरा बयान लिखकर मजिस्ट्रेट ने कहा था—“स्वामी जी ! आप सब अदालतों पर कटाक्ष करते हैं। अपनी आत्मा की आवाज सुननेवाले भी विद्यमान हैं।” मैंने उत्तर दिया था कि—“आप लोग विवश हैं, आपको आज्ञा माननी पड़ती है।”

फिर उस दिन वकील सरकार बहस कर रहा था तो उसकी सब दलीलों को मजिस्ट्रेट ने स्पष्ट शब्दों में रद्द कर दिया था, जिससे सब श्रोताओं तथा समाचार-पत्रों के संवाददाताओं ने भी यही नतीजा निकाला था कि मजिस्ट्रेट मुझे अभियोग

से मुक्त कर देगा। वकील सरकार ने भी ऐसे ढंग से बातचीत की थी जैसे कमजोर, हारे हुए मुकद्दमे का वकील करता है। दूसरे दिन एक भद्रपुरुष ने जेल में आकर मुझे कहा कि मजिस्ट्रेट अपने एक सुहृदय से कह चुका है कि मुकद्दमा कुछ नहीं, आप छूट जाओगे। मैंने उत्तर दिया—“यदि छोड़ना होता तो दो पृष्ठ लिखकर उसी समय छोड़ देता। अब बीच में सात दिन हैं। सुपरिण्टेण्डेण्ट मैकफर्सन गवाह गुजरा है। मजिस्ट्रेट के रुख की रिपोर्ट डिप्टी कमिश्नर के पास होगी और वह बिना सजा दिलाए न रहेगा। यदि नौकरी छोड़ने को तैयार हो जाए तो मुझे छोड़ने का हौसला करेगा।” मेरे परिचित ने कहा—“यदि सजा देगा तो दो-तीन महीने से अधिक न देगा।”

मेरा उत्तर था—“एक वर्ष से कम सजा दिये बिना उसका काम नहीं चलेगा। पाँच अक्टूबर को देख लेना।” वैसा ही हुआ, और मैंने मजिस्ट्रेट को कह भी दिया था कि मैंने एक वर्ष की ही भविष्यवाणी की थी।

हिन्दुस्तानी मजिस्ट्रेट का अपराध क्या है? जीवन ऐसे भोगप्रधान बन चुके हैं कि थोड़े में निर्वाह नहीं होता, और नौकरी छूटने पर काम क्या करें? बाधित होकर उन्हें आत्मा का घात करना पड़ता है। यही कारण है कि मैंने आज से २४ वर्ष पूर्व गुरुकुल-शिक्षाप्रणाली के लिए अपील की और अब चार वर्ष के विविध आन्दोलनों के पीछे फिर मेरी सम्मति स्थिर हुई है कि यदि मातृभूमि को स्वतन्त्र कराना है और उसके साथ ही संसार में भोग और स्वार्थ को दूर कराके शान्ति का राज्य स्थापन करना है तो बालकों तथा बालिकाओं को गुरुकुल-शिक्षाप्रणाली के ढाँचे में ढालकर ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी बनाना चाहिए।

एक बात का विचार वाकी है। एक दैनिक पत्र के सम्पादक महाशय ने अकाल तख्त वाले व्याख्यान के अन्य भागों का समर्थन करते हुए यह सन्देश प्रकट किया था कि मुझे गृहस्थ पुरुषों का सन्देश शिरोमणि प्रबन्धक कमेट्री तक पहुँचाना नहीं चाहिए था, क्योंकि यह संन्यास धर्म के बाहर है। मैंने संन्यास का अर्थ कर्म का न्यास (त्याग) नहीं समझा प्रत्युत गुरुवर आचार्य दयानन्द के चरणचिह्नों पर चलने का यत्न करते हुए कर्मफल में अनासक्ति अर्थात् त्याग को ही संन्यास समझा है। इसलिए मैं उन सर्वसाधारण से सहमत नहीं हूँ जो कहते हैं कि “सर्व कर्मनासी संन्यासी” होता है। यदि दिल्लीवालों का सन्देश धर्मानुकूल था तो संन्यासी से बढ़कर सन्देश पहुँचानेवाला उन्हें कहाँ से मिल सकता था? और यदि गुरु के बाग (तहसील अजनाला) का आन्दोलन धर्मविरुद्ध था तो मेरी सारी वक्तृता ही निन्दनीय समझनी चाहिए। ऋषि दयानन्द लिखते हैं, “जिससे दुष्ट कर्मों का त्याग किया जाए वह उत्तम स्वभाव जिसमें हो वह संन्यासी कहाता है। इसमें सुकर्म का कर्त्ता और दुष्ट कर्मों का नाश करनेवाला संन्यासी कहाता है।”^{१४}

५ अक्टूबर १९२२ ई० के दिन मुझे धारा ११७ में एक वर्ष और धारा

१४३ में चार मास का सादा कारागार (Simple Imprisonment) मिला और मैं जेल में लौट आया। २६ अक्तूबर को साढ़े सात बजे शाम के मुझे वहाँ से ग्रन्थ भेज दिया गया। २६ अक्तूबर सन् १९२२ ई० तक कुल ४७ दिन मैं अमृतसर सब-जेल में रहा।

सब-जेल का जीवन

नित्य प्रातः दो बजे—कभी-कभी एक बजे—उठकर मैं कोठरी के अन्दर रक्खे कोलतार से चुपड़े हुए मिट्टी के लोटे में लघुशंका कर हाथ-पैर धो लेता और वरामदे में आसन लगाए, चार बजे तक आत्म-विचार करता। चार बजे कोठरी के अन्दर धरे वर्तन में शौच करके उसपर बहुत खुश्क मिट्टी डाल चल देता। जाता हुआ कोठरी के अन्दर और आसन के आगे वरामदे में धूपबत्तियाँ जलाकर और नम्बरदार की पुकार कर आज्ञा ले नीचे चला जाता। वहाँ हाथ-पैर धोकर ऊपर आ तेल की मालिश कर फिर धोती-तौलिया बगल में और लोटा हाथ में ले उतर जाता। नलके में उस समय जोर की धार आती क्योंकि अन्य नलके बन्द होते। मेरे साथी प्रायः सरदार महतावसिंह और बाबा केहरसिंह होते। धोती-तौलिया धो और लोटे में जल लेकर ऊपर आ वरामदे के सामने धोती-उपरना सुखाने के लिए लटका, आसन पर बैठकर उस समय तक बराबर ध्यान लगाने का यत्न करता जब तक कि पिंजरों में बन्द भंगी कैदी छुटकारा पाकर कोठरी के मलसहित वर्तन उठा ले जाता। उस समय मैं उठकर टहलने लगता और जेलर की विशेष कृपायुक्त आज्ञा के अनुकूल जब भंगी कोठरी में फिनायल छिड़क जाता तब मैं अन्दर जाकर नयी धूपबत्ती जला फिर टहलने लगता। साढ़े सात बजे मैं किसी धर्मग्रन्थ के स्वाध्याय के लिए बैठ जाता और साढ़े आठ बजे तक उसी में लगा रहता। इसी अन्तर में सुपरिण्टेण्डेंट अपनी पलटनसहित कवायद करते निकल जाते। मैं अपनी आँख पुस्तक पर से न उठाता और वह दूसरी ओर दृष्टि करके निकल जाते। फिर प्रातःकाल का भोजन होता।

भोजन प्रथम दिवस (११ सितम्बर) को रोटी-भाजी आदि यथापूर्व आया था। एक बार जेल की गेहूँ और सतनाजे की रोटी और काली लोह-चूर्णयुक्त दाल-भाजी का आनन्द लिया और एक गुल्ला^१ भी चखा। फिर भोजन की विधि बदल ली। मुझे दिन को शौच के लिए जाना अखरता था और अन्नादिक ग्रहण करने से वह आवश्यक हो जाता था। मैंने इसका हल उसी समय सोच लिया। प्रातः साढ़े आठ बजे तीन केले और एक छटांक अंगूर खाकर एक मीठा नींबू चूस लिया और जलपान हो गया, फिर नीचे उतरकर टहलता रहा और अकाली

नेताओं से बातचीत होती रही। साढ़े दस बजे दूध आया—तीन पाव दूध पी; आधा घण्टा टहल और एक घण्टा लेटकर आराम किया, फिर एक घण्टा इधर-उधर भ्रमण करके कुछ लिखा और कुछ पढ़ा। चार बजे नये अकाली जत्थे से मिलने सब भाइयों के साथ चला गया। कभी पूरा जत्था अर्थात् सौ अकाली और कभी दो और कभी तीन जत्थों के दर्शन होते। सरदार महतावसिंह जी नित्य उन्हें शान्तमयी वृत्ति को स्थिर रखने और जेल के सब कष्ट सहकर भी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने का उपदेश देते। सरदार जी के उपदेश को सुन और उनके विनय-भाव को देख सारा दीवान प्रभावित दिखाई देता और खालसा सिंहीं के चेहरों पर वीररस की पान चढ़कर उनके मुख तेज की अग्नि से दहकने लगते। फिर मन्त्री, जत्थेदार आदि पंथ की आज्ञाएँ उनको सुनाते। अन्त में कुछ कहने की मुझे प्रेरणा होती है और मैं अपनी तुच्छ बुद्धि तथा योग्यता-अनुसार भारत माता का उज्ज्वल स्वरूप खींच और उसकी वर्तमान दिशा का चित्र दिखलाकर कलगी-धर गुरु गोविन्दसिंह के स्थापित खत्री वंश से माता का क्लेश निवारण करने के लिए अपील करता। जो प्रेम मैंने तीन हजार से अधिक अकाली वीरों के हृदयों में लहरें मारते देखा है उससे मुझे निश्चय हो गया कि सारे संसार को विद्या, धर्म और जीवन का उपदेश देनेवाली देवी भारत फिर से संसार की शिरोमणि बनेगी। इस अपूर्व दृश्य से आत्मिक प्रसाद लेकर मैं फिर कोठरी में पहुँचा और तीन केले और शेष एक छटांक अंगूर खाकर और तीन पाव दूध फिर पीता। फिर एक घण्टा भाइयों से बातचीत करते हुए टहलता। ऊपर पहुँचकर एक घण्टा फिर आत्मविचार, जिसके पश्चात् मैं सो जाता। अमृतसर जेल में ४७ दिन बड़े आनन्द से व्यतीत हुए। भोजन पहुँचाने और मेरी अन्य सब आवश्यकताओं को स्वयं अनुभव कर, उनको पूरा कराके आर्य-भवन के निवासी श्रद्धासम्पन्न आर्य सज्जन श्री राधाकृष्ण जी ने मेरी कठिनाइयाँ दूर कर दी थीं। परन्तु अकाली नेताओं के सत्संग और अकाली जत्थों के प्रेम के परिचय ने मुझे भारतीय जाति के भविष्य पर उसी शुभ स्थान में पूरा विश्वास दिलाया।

अमृतसर जेल से प्रस्थान

२६ अक्तूबर को पाँच बजे दारोगा जी ने खबर दी कि मुझे दो साथियों समेत किसी अज्ञात स्थान के लिए प्रस्थान करना होगा। मेरे साथ सरदार उमराव-सिंह मन्त्री सिख लीग जिला अमृतसर और सरदार ठाकुरसिंह सम्पादक 'संसार' और 'स्वतन्त्र' दफा १०८ जाबता फौजदारी में एक-एक वर्ष के गफ्ते लेकर चले थे। अकालियों ने गुरुद्वारा सुधार के धार्मिक मोर्चे में कैद के हुक्म का नाम गफ्ता रखवा था। अमृतसर में जिस जत्थे को छः मास कैद मिलती उसके सभ्य कहते—'कुछ न मिलया जी, छे महीने !' और जिन्हें २½ वर्ष की कैद का हुक्म होता वे

खम ठोकते आते और कहते—‘बड़े गफके मिले!’ अकाली खालसा वीरों के लिए जेल का जीवन कड़ाह प्रसाद का स्वादिष्ट भोजन था।

छः बजे हम तीनों दफ्तर में आ बैठे। ठीक साढ़े सात बजे मोटर लारी घड़-घड़ाती हुई पहुँची। आगे दो गोरे ड्राइवर (चलानेवाले), अन्दर उनकी पीठ-से-पीठ मिलाए दो गोरे फौजी और १० राइफल लिये संगीन चढ़ा मुसलमान मिलिटरी पुलिस के सिपाही। हमारा सामान दारोगा जी ने बीच में रखा दिया और हम तीनों ऊपर चढ़कर अपने सामान पर बैठ गए। मोटर लारी घड़घड़ाती हुई फिर चल दी। मुसलमान सिपाही खड़े थे और सड़क के वृक्षों की डालियाँ झुकी हुईं। जब-जब उनकी पगड़ियों में डालियाँ लगतीं, तब-तब वे अंग्रेजों को भरपेट गालियाँ देते। दोनों गोरे राइफलें टेककर बैठे थे।

ला० राधाकृष्ण के वहाँ मेरे दो कम्बल पड़े थे, उनके माँगने का भी अवकाश न मिला। एक ठण्डी हवा और दूसरे गर्द के गोले मुँह को आते। ड्राइवर पीकर मस्त थे। हमें उतारना था खासा के स्टेशन पर साढ़े ६ बजे रात की ट्रेन में बैठने के लिए, और ले गए तीन मील आगे। वहाँ कुछ खटकी तो उतरकर मील देखा। तब फिर पीछे लौटे। खासा के स्टेशन पर गोरा पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट और एक पुलिस इन्स्पेक्टर (जो हमारे साथ जानेवाला था) मोटर में पहुँचे हुए थे। लारी पर से खाक छानकर नीचे उतरे। मेरा सामान एक पुलिसमैन ने लिया। दोनों सरदारों का सामान भी सिपाही उठाने को तैयार थे, परन्तु गोरे पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट ने कहा, “He is an old man, hence the concession. You are young men, you must carry your own luggage.” अर्थात् वह बूढ़ा है इसलिए उनको रियायत की गई है; तुम जवान आदमी हो, तुम्हें अपना सामान स्वयं ले चलना चाहिए।

हम लोग अन्दर पहुँचे। एक पूरी पाँच कमरोंवाली सींखचें लगी कँदियों की गाड़ी तैयार थी। हमको इन्स्पेक्टर ने एक ओर के कमरे में चढ़ा दिया। सुपरिण्टेण्डेण्ट ने आकर हमें उसमें से उतरवा बीच के कमरे में करके दोनों ओर के ताले बन्द करा दिये और ताकीद कर दी कि दरवाजे मार्ग में सर्वथा न खोले जाएँ। मैं तो मौन साधे रहा, सरदारों ने हाथ-मुँह धोने को पानी माँगा। साहब बहादुर ने बड़ी कृपा करके पानी माँगा दिया, परन्तु किवाड़ खोलने की आज्ञा न दी। सींखचे ऐसे घने थे कि उनमें से लोटा तो क्या गिलास तक नहीं निकल सकता था। गोरे के चले जाने पर इन्स्पेक्टर ने अपने कमरे में से पानी खुले सींखचों द्वारा हमारे पास पहुँचाया। हाथ-मुँह धोकर बिस्तरे बिछा लिये। गाड़ी थर्ड क्लास की थी। एक बैच पूरा मेरे लिए छोड़कर दूसरे पर मेरे दोनों साथी सो गए।

एक बात का यहाँ बतलाना आवश्यक है जिससे इस समय की गिरावट का पता लगता है। लारी पर मार्ग में तीन पास के सिपाहियों ने मुझे फकीर देखकर

दवाई पूछी। तीनों को प्रमेह रोग था और तीनों ने मेरे पूछने पर ऐसी भयंकर दशा वर्णन की, जिससे मुझे फिर से विश्वास हुआ कि पहले देश के अन्दर मनुष्यत्व का पुनरुत्थान होना चाहिए, तब सत्य, अहिंसा, स्वाधीनता और अन्य गुण राष्ट्र में आ सकते हैं, और उसके पीछे स्वराज्य हाथ बाँधे सामने आ खड़ा होगा।

मार्ग में लालामूसा तक कोई नहीं मिला। लालामूसा स्टेशन पर, तीन बजे प्रातः, बहुत-से भाई मौजूद थे। दसों सिपाहियों ने राइफलें सीधी करके गाड़ी के आगे पंक्ति बाँध ली। वहाँ हमारी गाड़ी कटकर मियाँवाली जानेवाली ट्रेन में लगाई गई। मार्ग में सब स्टेशनों पर विशेष पुलिस शायद इसलिए भेजी जाती रही कि कहीं लोग हमला करके हमें छुड़ा न ले जाएँ। लालामूसावाली पुलिस मलकवाल तक साथ आई। वहाँ दो घण्टों से अधिक समय तक ट्रेन ठहरी। मैंने इन्स्पेक्टर से कहा कि गाड़ी के अन्दर तख्ता उठाकर शौच जाना मेरे लिए सम्भव नहीं, बीमार हो जाऊँगा। तुम स्टेशन के पाखाने के चारों ओर बन्दूक का पहरा लगा दो, परन्तु मुझे गाड़ी से उतरकर पाखाने फिर जाने दो। इन्स्पेक्टर ने उत्तर दिया कि साथ की गाड़ी में ही सी०आई०डी० वाले भेजे गए हैं, इसलिए इजाजत नहीं दे सकता। मुझे अपनी निर्बलता पर शोक हुआ। मुझे कुछ भी नहीं कहना चाहिए था। हमने कमरे के बीचों-बीच एक चादर टाँग दी और शौच के लिए बैठे। मुझे तो हानि ही हुई, न बैठता तो अच्छा रहता। स्टेशन-स्टाफ के सब आदमी आ गए। उन्होंने ताला खोला और पानी की बाल्टियाँ हाथ-मुँह धोने और गाड़ी साफ करने के लिए लाकर दीं, परन्तु इन्स्पेक्टर ने प्लेटफॉर्म पर उतरने की इजाजत न दी।

शासन भूखा रखना चाहता था परन्तु श्रद्धालु फलों की भेंट लेकर पहुँच गए

सरदार उमरावसिंह ने इन्स्पेक्टर से कहा कि हम लोगों के भोजन का क्या प्रबन्ध है? इन्स्पेक्टर ने कहा कि उसे तो कुछ दिया नहीं गया, वह अपने पास से खर्च करने को तैयार है। परन्तु यहाँ तो लालामूसा, मलकवाल और उससे आगे हमें खूब फल मिले। मेरे पास भी फल साथ थे। मैंने कुछ खाकर और दोनों सरदारों को भी खिलाकर शेष पुलिस को बाँट दिये। सरदारों को पूरी तरकारी भी काफी खाने को देशभक्तों से मिल गई। मेरे सामने एक महाशय ने अंगूरों को छोटी टोकरी लाकर रख दी। मुझे क्या मालूम था कि मियाँवाली में फल न मिलेंगे! मैंने वह अंगूरों की टोकरी भी पुलिसवालों को बाँट दी।

दो बजे से पहले कुदियाँ जंकशन पर पहुँचे। वहाँ मियाँवाली से पुलिस का खास दस्ता आया हुआ था और मियाँवाली के कुछ भाई भी आए हुए थे।

कुदियां से चलकर ट्रेन सीधी मयावाली पहुँची। स्टेशन पर बहुत भाई उपस्थित थे। उन्होंने मुझे बाधित किया कि जेल की ओर पैदल चलूँ। गुर्दों की बड़ी बीमारी भुगतने के पीछे मुझे अधिक परिश्रम से मेरे चिकित्सकों ने रोका हुआ था, परन्तु जब प्रेम प्रेरित करके भाइयों ने खींच लिया, तो पैदल ही चल पड़ा।

मार्ग में बहुत भीड़भाड़ हो गई। फिर फरमाइश हुई कि कुछ सन्देश भी दूँ। मैंने खदर के प्रचार, अछूतोंद्वारा और ब्रह्मचर्य के प्रसार पर बल देते हुए कुछ और बातें भी कही होंगी। पौने तीन बजे जेल का द्वार खुल गया और हम पुलिस की हिरासत से सुपरिण्टेण्डेंट के ऑफिस पहुँचकर बैठ गए। दारोगा बड़ी सभ्यता से मिले, हमारा सामान देखा। मेरी पेन्सिल और लिखे हुए कागज पर कहा कि बिना सुपरिण्टेण्डेंट की आज्ञा के ये वस्तुएँ अन्दर नहीं जा सकतीं। पीछे से पेन्सिल, कागज और दवात-होल्डर भी मिल गए।

मियाँवाली जेल का संक्षिप्त वर्णन

मैं जेल से बाहर भी मियाँवाली जेल के सुपरिण्टेण्डेंट डॉ० रामजीदास के स्वभाव, वर्तव्य तथा सहनशक्ति की बड़ी प्रशंसा सुन चुका था। हाँ, पहले जेलर की सख्ती की कुछ शिकायत थी। मैंने अपने अनुभव से वर्तमान जेलर ला० ज्ञानचन्द को बड़ा सहनशील तथा सहानुभूति रखनेवाला पाया और पूर्व के जेलर ला० शहजादाराम के विषय में जब बड़े-से-बड़े अक्खड़ कैदी से पूछा तो मुझे उसके विषय में भी कोई शिकायत न मालूम दी। क्या वह रिश्वतखोर था? “रिश्वत के तो वह नजदीक न जाता था; जेल की कोई वस्तु न वर्तता था।” क्या वह गाली देता था? “नहीं, प्रत्युत गाली सुनकर भी सहन करता था।” क्या किसी कैदी का पेट काटता था? “यह भी नहीं” फिर उसकी क्या शिकायत थी? उत्तर मिला—“वह जेल के नियमों की अक्षरशः पाबन्दी कराना चाहता था। परन्तु हम लोगों ने उसे तंग किया कि वह हम लोगों से घबराता था।” पास खड़े एक बड़े सभ्य, शान्त, पाँच वर्ष की कैद भुगतने आए कैदी ने कहा। शहजादाराम की सम्मति यह थी कि पोलिटिकल कैदी की शान इसी में है कि जेल के नियमों का पूरी तरह पालन करे। महात्मा गांधी और कांग्रेस की भी तो यही आज्ञा है। यह भी कहा कि उसे अपने स्वदेशी भाइयों के नियम-भंजक होने पर लज्जा आ जाती है। अक्खड़ महाशय को भी ऊपर के कथन का समर्थन करने के लिए बाधित होना पड़ा।

सुपरिण्टेण्डेंट डॉ० रामजीदास तो सचमुच सहनशीलता के सिद्ध हैं। सबके सामने हाथ बाँधे आते हैं और जो कुछ भी उनकी शक्ति में हो वह आराम सब कैदियों को देते हैं। इसलिए अपने दीर्घ अनुभव के होते हुए भी अंग्रेज अफसरों

की आँखों में काँटे की तरह खटकते हैं और चिरकाल से स्थानापन्न सिविलसर्जन होते हुए स्थिर किए जाने योग्य नहीं समझे जाते। मुझसे कई भाइयों ने कहा कि यदि यह चाकरी त्यागकर असहयोगी हो जाएँ तो गांधी जी के भाव को समझकर उसपर चलनेवाला शान्त आत्मा इनसे बढ़कर कोई न होगा। मैंने उत्तर दिया यदि यह चले जाएँ तो शायद आपको सतानेवाली ऐसी शैतान की रूह आ जाए कि बहुतों के लिए जेल असह्य हो जाए। उस मनुष्य को देवता कहेंगे वा क्या, जिसे प्रेम से उसके कर्त्तव्य जतलाते हुए एक युवक कांग्रेस वालण्टियर बेटी की गाली देता है। और वह कहता है “काका! तू भी तो मेरा बच्चा है और वह तेरी बहिन है। बच्चा, ऐसे अपशब्दों से मुँह अपवित्र नहीं करते।” जब अनुभवी काम करनेवालों ने सुना तो उसकी आँखों में आँसू निकल आए। जब अफसर ऐसे हों और यदि उनके मातहत सब सेवा-भाव से काम करें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

मियाँवाली जेल की ड्योढ़ी भी अमृतसर फैशन की है, परन्तु यहाँ की सफाई बड़ी प्रशंसनीय है। अन्दर जाते ही दाहिनी ओर जेल-कार्यालय-कमरा है जहाँ नायब जेलर और क्लर्कदि भी बैठते हैं, और बाईं ओर सुपरिण्टेण्डेंट का कमरा। दरवाजा खुलते ही दोनों ओर ऊँची दीवारें दिखाई दीं। दाहिनी ओर जेरे-तजवीज^{१०} अपराधियों (हवालातियों) की दो बैरिकें और बाईं ओर साधारण कैदियों की बैरिकें, फिर यूरोपियन वार्ड, सेशन कमरा आदि, सामने बड़ा गोल कमरा साधारण बड़े लंगर का, अमृतसर के लंगर से चार गुना बड़ा जिसमें सवा दो सौ वा डाई सौ कैदियों का भोजन बनता है। उसके ऊपर पानी की टंकी जिससे खींचकर पानी सारे हौज की बैरिकों में बाँटा जाता है और उसके ऊपर मध्य में एक गोल छता हुआ, चारों ओर से खुला बुर्ज जिसमें जाड़े, बरसात और धूप से सुरक्षित पहरवाला खड़ा रहता है। रात के पहरदार हर १५ वा २० मिनट पीछे सब नम्बरदारों को बुलाते हैं, और यदि कोई न बोले तो गश्तवाला चपरासी उसे हिला देता है।

लंगरखाने के आगे गोदाम का कमरा है। उससे आगे चार कोठरियोंवाला अहाता लड़के मुलजिम्ओं के लिए जिसका नाम मुण्डखाना है। उससे आगे बड़ी मियाद के कैदियों की कोठरियों के अहाते हैं। लंगरखाने के ठीक बाईं ओर हस्पताल की बड़ी स्वच्छ और सुन्दर इमारत है जिसमें २४ बीमारों के लिए चार-पाइयाँ बिछी हुई हैं। टहलने के लिए काफी अहाता और रविशे सुन्दर है। लंगरखाने की दाहिनी ओर अमृतसर के अहाते लगभग बराबर का एक अहाता है जिसमें तीन बैरिकें, पन्द्रह-पन्द्रह कोठरियाँ हैं। उनमें स्पेशल क्लास के पोलिटिकल कैदी रक्खे जाते थे।

स्पेशल क्लास में दाखिल

२७ अक्टूबर १९२२ ई०, ३½ बजे स्पेशल क्लास वार्ड का द्वार खुलवाया। जेलर मुझे साथ लिये अन्दर गए। सत् श्री अकाल ! बन्दे मातरम् ! अल्लाहु अकबर के नारे सातवें आसमान को भी गुँजाने लगे। सब भाई द्वार पर जमा थे। श्री नानक जहाज के निर्माता और अंग्रेजी गवर्नमेण्ट के घाव खाए हुए बृद्ध बाबा गुरदित्तसिंह को सबसे पहले पहचाना। सरदार लद्धासिंह गुजरांवाला के प्रसिद्ध गणितज्ञ और वकील, देहली के मौलाना, अब्दुल्ला पानीपत के मेरे पुराने मित्र और गोरक्षा के प्रेमी मौलाना जकाउल्ला जो पहली खेप के साथ ही पाँच वर्षों के असीरेफरंग¹⁵ हुए थे, मार्शल लॉ के हटते ही मेरे साथ पीड़ितों की सहायता में सम्मिलित मेरे पुराने चिरंजीव महात्मा नन्दगोपाल, पीरजादा अताउल्ला शाह जमींदार¹⁶ के महाशय सालक और चौधरी अख्तर अली खाँ इत्यादि चालीस से अधिक भाइयों से गले मिला और पहली कोठरी में ही मुझे निवास दिया गया। पहले सब भाइयों ने जमा होकर बाहर के समाचार सुने, फिर मैं नलके पर नहाया और शाम को कुछ दूध पीकर सो रहा।

भोजन में परिवर्तन

मियाँवाली में फल नहीं होते और बाहर से भी कम आते हैं, अतः भोजन में फिर परिवर्तन करना पड़ा। जेल की ओर से मुझे डेढ़ सेर दूध और आधा सेर दही तथा आवश्यक चीनी दी गई। फलों के स्थान पर फिर से रोटी खानी शुरू कर दी। यहाँ शौचालय पर्देदार और साफ मिला, इसलिए फिर दो बार शौच जाने में कठिनाई प्रतीत न हुई। इस स्थान में प्रातः शाक व चने के रस के साथ दो-तीन फुल्के खा लेता और ऊपर से आधा सेर दही का मठा बनाकर पी लेता। तीसरे पहर आधा दूध और ५½ बजे शेष आधा सेर पीकर निवृत्त हो जाता। तीन दिन पीछे सन्तरे बराबर आने लग गए और इस प्रकार फल भी मिलते रहे। नित्य दो व तीन संगतरे खाता रहा। उसके छिलके भी व्यर्थ नहीं जाते थे। दो युवकों के शरीर पर थिम्ब के दाग थे, उन्हें रगड़ने को दे देता। इससे उनको बहुत लाभ हुआ।

दूध, दही, मीठा जेल की ओर से मिलता। फलादि सबकुछ बाहर से सज्जन भक्त भेजते, शाक जेल से बिना दाम मिलता व बाहर से आता, परन्तु दो-तीन रोटी लंगर से भिक्षा में मिल जाती। मेरे बहुत मना करने पर भी बाबू हाकिम-राय, डाक्टर सन्तराम आदि सज्जनों और विशेषकर अभयसिंह राजपूत कैदी के प्रेम ने मुझे घृत अधिक खिलाया जिससे मैं तीन दिन फिर पुरानी बीमारी में फँसा रहा। वैसे तो सबने ही सहानुभूति दिखाई परन्तु दो युवकों (प्रतुलचन्द्र तथा महेन्द्रपाल सिंह) ने विशेष सेवा की। डाक्टर ने बुद्धिमत्ता से चिकित्सा मुझपर

छोड़ी और इसीलिए शीघ्र नीरोग हो गया। उससे पीछे सब प्रेमी भाइयों ने आग्रह छोड़ दिया और भोजन का क्रम और व्यवस्था मेरे अनुकूल हो गई। अधिक सर्दी पड़ने पर दस दिसम्बर से दही के स्थान में दूध लेना आरम्भ कर दिया।

नैतिक समय-विभाग

प्रातःकाल दो बजे नियम से उठता। तीक्ष्ण वायुयुक्त सर्दी में भी यह नियम शिथिल नहीं हुआ। लघुशंका कर और हाथ-मुँह पोंछकर ध्यान में बैठ जाता। चार बजे उठकर फिटकरी के पानी से छः-सात गरारे करता। दाँत न होने के कारण दन्तधावन तो कर नहीं सकता, इसी से कण्ठ के कफ की निवृत्ति तथा नाक की सफाई हो जाती। उसके पश्चात् शौच से निवृत्त हो ४½ बजे से ६½ बजे तक लेख का काम करता। ६½ बजे कोठरी के अन्दर कपड़े से सफाई करके बरामदे और बाहर चबूतरे पर भाड़ू लगाता। फिर हाथ धोकर कृत्रिम दाँत पहिन २० मिनट तक शारीरिक व्यायाम करता। डॉक्टरों के मना करने पर भी इस अभ्यास को छोड़ नहीं सका; शायद काम भी इसी की वदौलत करता हूँ। व्यायाम के पीछे सारे वदन में नित्य सरसों का तेल मलता। यहाँ की वायु शुष्क और स्वास्थ्य-प्रदायिनी है, इसलिए नित्य तेल-मर्दन से लाभ रहता है। ७½ बजे स्नान करके नैतिक उपासना-विधि के पीछे भगवद्गीता का और पीछे (उपनिषद् का गुटका आ जाने पर) उपनिषद् का पाठ। इतने में आठ बज जाते। कुछ आर्य भाइयों ने स्यालकोट के युवक रामलाल की प्रेरणा से इकट्ठे सन्ध्या करने का नियम कर लिया।

कारावास, मुनि का तपोवन बन गया

वे उसी समय सन्ध्या समाप्त करते और मैं सन्ध्या के समय में ही सन्ध्या-मन्त्रों व अन्य किसी वेदमन्त्र की व्याख्या करता। फिर नौ बजे तक टहलता रहता। नौ बजे तीन खुश्क रोटी और केवल नमक-हल्दी से रेंधी हुई भाजी आ जाती। उसे खाकर फिर इधर-उधर की बातचीत होती। साढ़े दस बजे प्रातःकाल को एक सेर गर्म दूध पीकर और बीस मिनट टहलकर पौन से एक घण्टे तक लेटकर पाचनक्रिया का आरम्भ हो जाता। बारह बजे उठकर दो वतीन संगतरे खाए और दो बजे तक स्वाध्याय किया। दस मिनट टहलते ही कथा का आरम्भ हो जाता। पहले भगवद्गीता की कथा होती रही, उसके पश्चात् उपनिषद् तथा अन्य किसी धर्मग्रन्थ से कथा का क्रम चलता रहा। साढ़े तीन बजे कथा से निवृत्त होकर शौच, फिर आधा सेर दूध पीकर पाँच बजे तक टहलना और बातचीत करना। छः बजे से पहले शेष दूध पीकर फिर टहलना। जो कुछ भी बातचीत करना व

प्रश्न पूछना किसी को अभीष्ट होता, वह टहलते समय ही हो जाता ।

ठीक साढ़े छः बजे मोमबत्ती जलाकर लिखने बैठता तो आठ बजे तक लिखता ही जाता । फिर उठकर पाँच मिनट बाहर वायु-सेवन करके, लघुशंका कर, हाथ-मुँह धो पृथिवी पर सोने का सब सामान ठीक कर आधे घण्टे के लिए अपने आत्मा को एकाग्र करने का यत्न करता और रजाई ओढ़कर ठीक नौ बजे सो जाता । इस नियम के निरन्तर पालन ने ही मुझे जेल में स्वस्थ रखा है ।

इस स्थान में एक ही बार लिख देना चाहता हूँ कि मियाँवाली के आर्य भाइयों ने न केवल मेरे लिए ही स्वयं वस्तुएँ भेजीं प्रत्युत मेरे कहला भेजने पर स्वामी विश्वानन्द तथा अन्य भाइयों को भी आवश्यक वस्त्र बना भेजे । किन्तु इन सब में से भाई तेजभान का विशेष वर्णन उचित है जिन्होंने न केवल अपने कारोबार को ही शिथिल करके अपने भाइयों की सेवा की, प्रत्युत सैकड़ों रुपयों से गम भी खाया जो कुछ राजनैतिक बंदियों के हिसाब खुलवाने और फिर बिना हिसाब करके शेष धन दिये चल देने के कारण उनके पल्ले न पड़ा । मियाँवाली के भाइयों ने जो सेवा अपने स्वदेशी भाइयों की है, वह सदा स्मरण रहेगी ।

२६ दिसम्बर १९२२ तक की घटनाएँ

मेरे जेल में पहुँचने से पहले पंजाब काउंसिल के मेम्बर सर जॉन मेनार्ड (Sir John Maynard) जेल का मुलाहिजा कर गए थे । उनके साथ जो वातचीत बाबा गुरदित्तारसिंह जी की हुई थी, वह समाचारपत्रों में छप चुकी है । उस समय भोजन के लिए प्रति स्पेशल क्लास के कैदी पीछे नित्य आधा पाव घी मिलता था । जब मेनार्ड जी आए तो लंगर में गुल्ले घी से तले जा रहे थे । वहाँ से फिर लौटकर बाबा जी से उसने पूछा कि भोजन तो अच्छा मिलता है । बाबा जी ने उत्तर में कहा था—“साढ़े सत्तर बरेहाँ दे दोस्त ! रोटी की पुछ्छाएँ । एह दस्सदा जा कि कोई जुत्ती ठोकनवाला आवे तां ओहदी बल्ल होइए कि तेरी बल्ल ?” (अर्थात् “हमारे सत्तर वर्ष के पुराने मित्र ! तू रोटी की बात क्यों पूछता है ? तू यह बात बताता जा कि यदि कोई जूते मारनेवाला—बल प्रयोग करने-वाला आए तो हम उसका पक्ष लें अथवा तेरा ?”—सम्पादक)

मेनार्ड साहब उलटे पाँव लौटे और पीछे फिरकर न देखा । उधर मेनार्ड यह देख-सुन गए और उधर सुना है कि हिन्दुस्तानी जेल-विजिटर ने यह रिपोर्ट भेजी कि एक छटाँक घी इन कैदियों के लिए काफी होगा । यह हिन्दुस्तानी विजिटर कोई उमरहयात टिवाना के लघु संस्करण ही होंगे । इस कहानी को यहाँ ही विराम देता हूँ । इसका परिणाम आगे निकलेगा ।

अपने कुछ भाइयों का एक काम मुझे अखरा । जहाँ अन्य कुरान शरीफ, गुरुवाणी और अन्य धर्मग्रन्थों के पाठ में समय बिताते, वहाँ भोजन पीछे कुछ-एक

दिनभर शतरंज, ताश और चौपड़ में रत रहते, और फिर दोहराते चौपड़, ऊई-ऊह, गप-शप और जेलवालों को तंग करने के अपने कारनामे। मेरे मियाँवाली पहुँचने से शायद ७-८ दिन पीछे ही जेलों का इन्स्पेक्टर-जनरल आया। उसका आना इस अंश में अच्छा हुआ कि सारे जेल की खूब सफाई की गई। पिछली बार जब आया था तो इस अहाते में नारे बड़े जोर से लगने शुरू हो गए थे और बिना सारा अहाता देखे ही वह दुम दबाकर भाग गया था—ऐसा मुझे एक अभिमानी युवक ने सुनाया। इस बार सुपरिण्टेण्डेंट और दारोगा के निवेदन को मान लिया और कोई नारा नहीं लगाया। सख्त कैदवाले अपनी मशक्कत का चरखा कात रहे थे, महज सादी वाले कोई कोठरी के अन्दर और कोई बाहर बैठा था। मैं कोठरी के अन्दर ऊँची खड्डी पर बैठा स्वाध्याय कर रहा था। पहली कोठरी मेरी थी। गोरा दरवाजे में खड़ा होकर बोला—सुपरिण्टेण्डेंट को उत्तर देते सुना—“इन्हें कैद महज की सजा है।”

गोरे को सलाम न की

मैंने उसकी ओर देखा। जब उसने देखा कि मैं न उठता हूँ और न उसे सलाम करता हूँ तो एक मिनट प्रतीक्षा करके वह आगे चला गया। पीछे सुना कि दो-तीन उठे, शेष सब बैठे रहे। दारोगा जी ने सुनाया कि इन्स्पेक्टर जनरल ने हम लोगों की प्रशंसा की है और कहा कि ये लोग जेण्टलमेन (Gentle men) मालूम देते हैं।

मुसलमान का मांस—सिख का मांस

इसके पीछे एक घटना हुई। प्रत्येक स्पेशल कैदी को नित्य प्रातः एक दाल, सायं का शाक, १२ छटांक आटा और आधा पाव धी दोनों समयों के लिए दिया जाता है। इसके अतिरिक्त तीन दिन मांस या आध-आध सेर दूध और मीठा और दो दिन हलवा दिया जाता है। मुसलमान तो मांस लेते और सिख-हिन्दू दूध लेते थे। सिखों में से कुछ चाहते थे कि मांस लें, परन्तु भटका न मिलने के कारण वे हलाल को कुबूल नहीं करते थे और मियाँवाली में भटके की कोई दुकान न थी। उन सिखों ने मांस के स्थान में अण्डे माँगे। दारोगा जी ने ला दिये। कुछ ब्राह्मणों को एतराज था कि चौके में अण्डे न बर्तें। सिख भाइयों को जुदा पतीला दिया गया कि अलग बना लें जिससे परस्पर शान्ति रहे। उन्होंने ऐसा ही किया। इसको बुरा माना। लंगर में एक भोजन बनानेवाला खालसा, दूसरा पानी भरने वाला खालसा और बर्तन साफ करनेवाला राजपूत अभयसिंह था। ब्राह्मण देवताओं के एतराज के तीसरे दिन मैनेजर और नानकसिंह पाचक की शिकायत पर दारोगा ने एक खालसा निकाल दिया और उसके स्थान पर दूसरा खालसा

भेज दिया। चार-पाँच खालसों ने एक तो यह जोर दिया कि अभयसिंह बाहर से तम्बाकू खाकर आता है। जब हमारा खालसा निकाला गया है तो उसको भी न रहने देंगे। दारोगा ने उन्हें शान्त करने के लिए अभयसिंह को भी अलग करके उसके स्थान में रामकृष्ण को भेज दिया। फिर अण्डों से भी तसल्ली न हुई (क्योंकि नियमपूर्वक न मिलते थे) तो भटका माँगा गया और यह कहा गया कि मैनेजरो पर विश्वास नहीं इसलिए हमारा आधा पाव घी हमें अलग दिया जाए। दारोगा ने तो यह कहकर अपना छुटकारा कराया कि रिपोर्ट भेजी है, आपका चालान किसी ऐसे स्थान को ही जाएगा जहाँ भटके की दुकान हो और मुसलमान भाइयों ने बीच में पड़कर, मेरी उपस्थिति में, घी के विषय में परस्पर सहमति करा दी। पुराने दोनों मैनेजर यद्यपि बहुत अच्छा काम करते थे और सभा में फिर चुने भी जा चुके थे, उन्हें अलग करके रुठे भाइयों की सम्मत्यनुसार ही अन्य प्रबन्धकर्ता चुन लिये गए।

शासन द्वारा घी में कटौती के कारण असन्तोष

इस सन्तोष को स्थापित हुए अभी थोड़े दिन ही गुजरे थे कि दारोगा ने इन्स्पेक्टर जनरल द्वारा आया पंजाब गवर्नमेंट का हुक्म बतला दिया कि आगे आध पाव के स्थान में छटांक घी मिला करेगा। कहाँ तो आधा पाव घी भी अलग-अलग लेना चाहते थे और कहाँ एक छटांक उसमें से छिन गया। इसपर दो-तीन तेज तबीयतवालों ने शोर मचा दिया कि इसके विरुद्ध प्रोटेस्ट (असहमति) के तौर पर शेष छटांक भी छोड़ देना चाहिए। सभा की गई। मेरा घी से कुछ वास्ता ही न था, इसलिए सभा में तो मुझे जाना ही न था। जिन तीन-चार भाइयों ने मेरी सहमति पूरी, मैंने उनसे कह दिया कि यह कुछ गिरी हुई-सी बात है; इससे हम कांग्रेस का नाम घटवायेंगे। सभा के प्रधान बाबा गुरुदत्तसिंह जी को बनाया। वह घी छोड़कर प्रोटेस्ट करने के पक्ष में न थे, परन्तु जब महात्मा नन्दगोपाल ने बतलाया कि गवर्नमेंट कहती यह है कि मामूली यूरोपियन कैदी के खाने के दाम का खाना स्पेशल क्लासवाले हिन्दुस्तानियों को दिया जाता है और हमारे भोजन पर कम खर्च करती है, तब बाबा जी भी छोड़ने के पक्ष में हो गए, और भारी बहुपक्ष से प्रस्ताव पास हुआ। दूसरे दिन सुपरिण्टेण्डेंट ने बुलाकर समझाया। मैंने भी फिर कहा घी मत छोड़िए, प्रोटेस्ट लिखकर दे दीजिए, समाचारपत्र स्वयं आन्दोलन करेंगे। परन्तु किसी ने एक न सुनी।

इसके पीछे गवर्नर के आने की खबर मिली। खूब सफाई हुई। जेल की सड़कों ने रोशनारा बाग की सड़कों को मात कर दिया। इन्स्पेक्टर जनरल २५ नवम्बर को आकर सफाई देख गया। उनके आने से पहले दारोगा और सुपरिण्टेण्डेंट ने अपील की कि नारे न लगे। सबको सुपरिण्टेण्डेंट की सौम्यता का खयाल

था। उन्हें विश्वास दिला दिया कि उनकी शिकायत का मौका अंग्रेजों को न देंगे। गवर्नर आए, साथ रावलपिण्डी के कमिश्नर, जेल के इन्स्पेक्टर जनरल, मिर्या-वाली के डिप्टी कमिश्नर 'करी' इत्यादि थे। मैं उस समय कोठरी के आगे धूप सेंक रहा था। मुझे उस समय क्षौर कराए ढाई महीने से अधिक हो चुके थे। सिर और दाढ़ी के बाल बड़े हुए थे। मैंने उसकी ओर ध्यान दिया ही नहीं था, परन्तु सर एडवर्ड मेक्लेगन ने दो बार फिरकर मेरी ओर देखा। बाबा गुरुदत्तसिंह जी ने अपने साथ हुए सब अन्यायों की कहानी अंग्रेजी में देकर ब्रिटिश इण्डियन गवर्न-मेंट के नाम अन्तिम नोटिस गवर्नर के हाथ में दिया और कुछ कागज भी दिखलाए और पूछा कि जब सिद्ध है कि मेरे सब कागज गवर्नमेंट के पास हैं तो यह कहाँ की ईमानदारी है कि उत्तर में यह लिखा जाता है कि मेरे कोई कागज गवर्नमेंट के पास नहीं हैं? गवर्नर साहब कागज लेकर आगे बड़े और कुछ भाइयों से अपराध आदि पूछते रहे। जब सारा चक्र समाप्त हुआ तो मेरे विषय में पूछा। सुपरिण्टेण्डेण्ट ने कहा जो पहले कमरे के पास खड़े थे, बोले, पहले तो सिर-दाढ़ी सब मुंडाते थे और खुले हुए दरवाजे को छोड़कर अभिवादन कर और प्रत्यभिवादन लेकर मुझसे पूछा—“Are not you a bit changed Swamiji?” “स्वामी जी, क्या आप में कुछ तब्दीली नहीं हो गई?” मैंने उत्तर दिया कि “आपके जेल में मैंने क्षौर नहीं कराया।” बोले—“क्या आपको छः महीने यहाँ हो गये?” मैंने उत्तर में ढाई मास बतलाए। चुप करके कुछ ठहरे, शायद मतलब यह था कि मैं कुछ कहूँगा।

जब मैं न बोला तो फिर प्रश्न किया, “Are you quite comfortable here?” क्या आप यहाँ सर्वथा आराम से हैं? मैंने उत्तर दिया—“I am comfortable everywhere.”—मैं सब जगह आराम अनुभव करता हूँ। यह सुन टोपी पर हाथ लगाया और बाहर चले गए।

कारावास में धार्मिक पुरुषों के अधार्मिक विवाद

गवर्नर चले गए। महात्मा नन्दगोपाल जी पर एक-दो भाइयों की ओर से कुछ कटाक्ष हुए थे। इसीलिए उन्होंने पंचायत की ओर से वकालत करना अस्वीकार कर दिया था। फिर दस-ग्यारह भाइयों ने प्रार्थना की कि सभा बुलाई जावे और घी छोड़ने के फैसले पर पुनः विचार किया जावे, क्योंकि अधिक संख्या घी लेने के पक्ष में है। इसपर सभा जमा न हुई। तब महात्मा नन्दगोपाल और आठ-दस अन्य भाइयों ने यह बतलाकर फिर लेना शुरू कर दिया कि जबरदस्ती दबाने से वे लोग न छोड़ेंगे। फिर एक ओर घी लेने के लिए और भाई उद्यत होने लगे और दूसरी ओर से उनपर दबाव डाला जाता रहा कि न लें। बाबा जी ने यह अपनी निज की प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया और उन्हीं के लिहाज से बहुतों ने छोड़े रक्खा। परन्तु जहाँ दो-तीन आदमी मिलते, चर्चा घी की ही

रहती। घी लेनेवालों और न लेनेवालों में वैभनस्य बहुत बढ़ गया। कोठरी में बैठे हुए भी मेरे एकान्त मन में विघ्न पड़ने लगा। एक दिन चौपड़ या शतरंज खेलते हुए तीन भाइयों में लड़ाई हो गई। फिर एक दिन घी न लेनेवाले एक पर कुछ अपशब्द कहने का आरोप लगाया गया। उसने पहले इन्कार किया। जब फिर उसे दबाया तो उसने गालीपूर्वक उत्तर दिया कि कहा है तो क्या कर लोगे? घी लेनेवाले एक ने गाली का उत्तर भी गाली से दिया। वस फिर एक जबरदस्त भगड़ा हो गया।

दो दिन पीछे फिर एक घटना ऐसी हुई कि घी लेनेवाले १४ मई को पास के दो बैरिकोंवाले दूसरे अहाते में चले गए। मैंने उन्हें न हिलने की सम्मति दी परन्तु उन्होंने न माना। दो दिन पीछे पहले अहाते में बहुत-कुछ अशान्ति और अपने काम में विघ्न देखकर मैं भी दूसरे अहाते के सबसे अन्तिम एकान्त कमरे में आ रहा।

दूसरे अहाते में अब शान्ति थी। पहले अहातेवालों में फिर भी घी की चर्चा रहने लगी। एक युवक बहुत कमजोर हो गया था। उसको डॉक्टर ने कमजोरी को दूर करने के हेतु डेढ़ छटांक घी दिलाया। उसके कमरे में उसे जा दबाया, यहाँ तक कि वह चीख उठा और घी छोड़ने की प्रतिज्ञा की। स्वराज्य और स्वतन्त्रता प्राप्त करने की इच्छुक सेना के कुछ सभ्यों ने बतला दिया कि यदि उन्हें स्वराज्य मिल जाय तो उसका कैसा प्रयोग करेंगे।

फिर एक सभा हुई जिसमें १५ वा १६ की उपस्थिति थी। उसमें बहुपक्ष में घी लेनेवालों पर मलामत का वोट पास हुआ। फिर शेष के आग्रह पर एक न लेनेवालों की सभा बुलाई गई। उनमें बहुपक्ष से पास हुआ कि छटांक घी ले लिया जावे। फिर भी दो-चार ने ही लिया क्योंकि बाबा गुरुदत्तसिंह जी प्रधान ने सबको लेने की स्वतन्त्रता देकर यह कह दिया था कि वह स्वयं हलवा खाना भी छोड़ते हैं। इसके पीछे मध्य दिसम्बर में १८ स्पेशल क्लासवाले भाई स्यालकोट और हिसार से चालान होकर मियाँवाली जेल में पहुँचे। उनमें से एक कुछ रोग-पीड़ित को अलग वार्ड में, ८ को पहले अहाते में और शेष ९ को दूसरे अहाते में स्थान दिया गया। इन सब ने आते ही घी ले लिया। १८ दिसम्बर को प्रातः इनमें से स्यालकोटी ६ भाइयों का डेपुटेशन बाबा गुरुदत्तसिंह जी की सेवा में गया। उनसे अपील की गई कि वह स्वयं घी लेकर शेष को भी घी लेने की आज्ञा दें, नहीं तो घी न खाने के कारण जिनके शरीर क्षीण हो रहे हैं उनका पाप बाबा जी के सिर लगेगा। बाबा जी को अपनी प्रतिज्ञा तोड़ने पर जो क्लेश हुआ वह देखा न जा सकता था, परन्तु अन्त को उन्होंने भी घी लेना स्वीकार किया और सब लेने लग गए। यह सब-कुछ हुआ परन्तु जो द्वेषाग्नि प्रदीप्त हो चुकी थी शान्त न हुई।

घो की चर्चा क्यों छेड़ी ?

पाठक आश्चर्य में होंगे कि मैंने यह सारी कहानी यहाँ क्यों विस्तारपूर्वक लिखी है। जेलों में जो अत्याचार पोलिटिकल कैदियों पर किये जाते हैं उनको चर्चा तो समाचारपत्रों में बराबर की जाती है, परन्तु कभी-कभी यह भी मालूम होना चाहिए कि हमारी अपनी क्या है और कहाँ तक हमने उस शान्ति, एकता और भ्रातृभाव के पाठ पर आचरण किये हैं जिनके बिना स्वराज्य के दर्शन दुर्लभ हैं। जहाँ व्यक्तियों के लिए आत्म-परीक्षा लाभदायक है वहाँ जाति के लिए भी आत्म-परीक्षा हानिकारक नहीं हो सकती।

मैं यहाँ लिखना भूल गया कि नवम्बर में गुरु नानकदेव के जन्मदिवस पर बड़ा शानदार सह-भोज हुआ था। २५ दिसम्बर सन् १९२२ राजर्षि कलगीधर गुरु गोविन्दसिंह जी का जन्मदिवस था। इसपर इकट्ठा सब ६५ भाइयों का सहयोग तो कठिन था, परन्तु मेरे लिए यह पर्व मनाना आवश्यक था। मैं गिरी हुई आर्य-सन्तान में ध्वाज धर्म का पुनरुत्थान करनेवाले राजर्षि गुरु गोविन्दसिंह का चिरकाल से मान करनेवाला रहा हूँ। स्वामी विश्वानन्द के साथ यह सलाह की गई कि हम संन्यासियों की ओर से उस दिन सब भाइयों को निमन्त्रण देकर, पहले हवन हो, फिर गुरु साहब के गुणों का चिन्तन हो और अन्त में कड़ाह प्रसाद बाँटा जाय।

२१ दिसम्बर को प्रातः भाई आसिफअली अचानक जेलर के साथ मेरे पास आ पहुँचे। बड़ा आश्चर्य हुआ कि जब वह एक साल से अधिक दिल्ली जेल में काट चुके थे तो ५॥ महीने के लिए उनको इतनी दूर क्यों लाया गया। परन्तु हुई हम दोनों को बड़ी खुशी। तब जेलर जी से पता लगा कि सारे पंजाब के स्पेशल क्लास के पोलिटिकल कैदी इस जगह लाये जाने की आज्ञा है। मैंने इसका कारण यह समझा था कि सबको उनके घर से बहुत दूर भेजने में कल्याण समझा गया है, परन्तु भाई आसिफअली को इसमें कुछ और ही गंध आई। यदि सब पोलिटिकल कैदियों के साथ एक-सा बर्ताव करना हो या सबको ही समाप्त कर देना हो तो इससे बढ़कर और स्थान कहाँ मिलेगा ! इस दिन एक और काम भी हुआ। अब तक पाखानों में फिनाइल नहीं छिड़का जाता था, मेरे कहने पर दोनों अहातों में दो बोतलें रखी गई। मियाँवाली में जाड़ा और गर्मी दोनों सख्त सुनी जाती थीं। गवर्नर के चले जाने के पीछे वर्षा हुई, तब जाड़ा कुछ चमका। फिर बादल जमा होते दिसम्बर के मध्य भाग पीछे फिर दो दिन बूँदा-बाँदी हुई। २१ दिसम्बर की रात को बिजली की कड़क के साथ १२ बजे वर्षा हुई। ठण्ड बढ़ गई। २२ को दिनभर बादल रहे और शाम को थोड़ा-सा सूर्य दिखाई दिया। बुद्धिमानों ने अनुमान किया कि झड़ी लगेगी, परन्तु रात को ही आकाश स्वच्छ होकर तारे छिटक आये और २३ को धूप ऐसी निकली कि दोपहर पीछे एक घण्टे के लिए

असह्य हो गई। २४ को फिर कोहरा के बादल बने परन्तु रात फिर साफ हो गई। इन तीन दिनों स्यालकोट से आए नये भाइयों ने बहुत यत्न किया कि दोनों अहाते मिलकर गुरु गोविन्दसिंह का जन्मदिवस मनावें। मेरे अहातेवालों ने दो मिनटों में कह दिया कि वे उद्यत हैं और साथ ही बिना कारण भी क्षमा माँगने के लिए उन्हें कहा जाये और उससे परस्पर का मेल हो जाए तो वह क्षमा माँगने को भी तैयार हैं, परन्तु प्रथम अहाते में सब तैयार न हुए। इसका असर श्री बाबा गुरुदत्त-सिंह जी पर यह हुआ कि वह बीमार हो गए। २४ दिसम्बर की रात तक बहुत निराशा थी।

२५ दिसम्बर को प्रातः स्नानादि से निवृत्त हो मैं दोनों अहातों की आसा की वार में^{२०} शरीक हुआ। फिर द्वितीय अहाते में जो संन्यासियों की ओर से हवन-यज्ञ हुआ उसमें सब मुसलमान तथा दोनों अहातों के खालसा तथा हिन्दू भाइयों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। बाबा गुरुदत्तसिंह जी बीमारी की अवस्था में ही पहुँचे। बहुत भाइयों ने श्री गुरु गोविन्दसिंह जी के गुण वर्णन करते हुए एकता करने के लिए अपील की। अर्दासा होकर कड़ाह प्रसाद बाँटा गया। तीसरे पहर अहाता नम्बर एक में दीवान लगा। कवि महासिंह जी की हृदयविदारक अपील पर महात्मा नन्दगोपाल जी ने क्षमा माँगी। दूसरे भाइयों के हृदय भी हिल गये। भाई भाई से मिल गये। गुरु नानकदेव और गुरु कलगीधर की यादगार में बिछड़ों का मिलाप हुआ। रात को खूब मोमवत्तियों की रोशनी हुई और लोटे-गिलास के साज बनाकर कौमी गीत गाते हुए जूलूस दोनों अहातों में गश्त को गया और रातभर दीवान लगाकर गुरु गोविन्दसिंह जी के गुण-वर्णनपूर्वक समाप्त किया गया।

२६ दिसम्बर को नित्य कर्म के पीछे उठकर सब भाइयों का मिलाप देखा। ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे कभी अशान्ति की लहर आई न थी। दो रोटियाँ खाकर टहलता रहा। विनयशील सुपरिण्टेण्डेंट डॉक्टर रामजीदास ९^१/_२ बजे ही आ गए। उनसे मैंने पूछा कि यदि जेल के नियम के विरुद्ध न हो तो नए आए हुए भाइयों के लिए अखाड़ा खुदवा लिया जाए। उत्तर मिला कि नियम के विरुद्ध होगा। मैंने जिस प्रकार सिविल मिलिटरी गजट तक के मँगाने की आज्ञा न मिलने पर मौन धारण किया था, अखाड़े के प्रश्न पर भी कह दिया कि जेल के नियम के विरुद्ध मैं कुछ भी करना नहीं चाहता। उस दिन जेलर साथ न आए। असिस्टेंट जेलर भी साथ न थे। फिर दूध पिया और नियमपूर्वक ठीक १२ बजे कथा के लिए बैठ गया। अभी पहले वाक्य का ही पाठ करके अर्थ किये थे कि बहुत भाई, जेलर-सहित दौड़ते आए। मैंने समझा कहीं भूचाल आ गया है। आते ही दारोगा साहब ने कहा, "चलिए बाहर, अब आप यहाँ नहीं रह सकते। रिहाई का ऑर्डर आ गया।" मैंने उत्तर दिया कि कल जाऊँगा। उत्तर मिला कि अब दस मिनट से अधिक

आपको नहीं रख सकते। मैंने कह दिया कि बिना उस दिन की कथा समाप्त किये और बिना सब भाइयों से मिले नहीं जा सकता। दारोगा जी चले गए। शान्ति-पूर्वक कथा समाप्त हुई। मैं सब भाइयों से मिला। सब भाइयों ने मिलकर कांग्रेस के लिए सन्देश दिया। बाबा गुरुदत्तसिंह जी ने अपना सन्देश अलग दिया। दोनों सन्देश प्रेस में भेज चुका हूँ और इस लघु पुस्तक के अन्त में भी देता हूँ। दो बजे के पीछे मैं जेल की ड्योढ़ी में पहुँचा। मुझे मियाँवाली से दिल्ली तक का तीसरे दर्जे का पास दिया गया; दो रुपये मार्ग का भत्ता मिला। अपनी चीजें सम्भालने की रसीद पर मेरे हस्ताक्षर कराए गए और टमटम पर (जो १२ बजे से खड़ी थी) सवार होकर मैं मियाँवाली शहर पहुँचा जहाँ मुझे देखकर सब आर्य भाई चकित हुए। शाम को सिंह सभा में बोलना पड़ा। रात को चारपाई पर नींद न आई क्योंकि भोमासन का अभ्यासी था। २७ दिसम्बर को प्रातः ८½ बजे से ९½ बजे तक समाज-मन्दिर में धर्मोपदेश दिया और भोजन पीछे ११ बजे दिन की गाड़ी से चल दिया। मार्ग में मिलनेवालों की भीड़ और बने-बनाये एकान्त से बिछोड़ा हो गया।

२८ दिसम्बर को आठ बजे अमृतसर पहुँचा। आगे बहुत-से भाई स्टेशन पर मौजूद थे। स्टेशन से बाहर निकला तो शहर की ओर से अकाली जत्था आता दिखाई दिया। मुझे उसी समय दरबार साहब चलने के लिए आग्रह किया गया, मैंने भाइयों की आज्ञा के आगे सिर झुका दिया। साढ़े दस बजे उधर से लौटना हुआ। तब स्नान, भोजन हुआ। एक से दो बजे तक नया वैदिक पुस्तकालय देखा। दो बजे समाज-मन्दिर के फल-भोज में शरीक हुआ।

स्वामी जी का अकाल तख्त से उपदेश हुआ

अकाल तख्त और समाज-मन्दिर, दोनों स्थानों में बोलना पड़ा। ३½ बजे की कलकत्ता मेल में सीधे जाने के विचार से बैठा, परन्तु बिस्तरा अमृतसर भूल गया। जालन्धर में सैकड़ों भाई ट्रेन पर आ गए और खींचकर बाहर ले गए। रात को गांधी-मण्डप में बोलना पड़ा। ११ बजे बॉम्बे मेल में बिस्तर भी आ गया और २९ दिसम्बर के प्रातः ८½ बजे के पीछे दिल्ली पहुँच गया।

एक बात यहाँ पर स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। मियाँवाली जेल से चलते हुए मुझे प्रसन्नता नहीं हुई। स्वतन्त्रता बड़ी प्यारी अवस्था है और उसके लिए प्रसन्न होना चाहिए था, और स्थूलदर्शियों के लिए जेल में मनुष्य परतन्त्र हो जाता है, परन्तु मैंने जेल के एकान्त में आत्मचिन्तन के आनन्द को ही स्वतन्त्रता समझ लिया था। उसकी अपेक्षा बाहर आकर शायद मैं किसी समय भी बिना अधिक परिश्रम, धर्म और देशसेवा के प्रेमियों को अप्रसन्न किये, स्वतन्त्र न रह सकूंगा। अस्तु, अवस्थाएँ अपने अधीन कहाँ हैं!

मैं बहुत सन्तुष्ट होता यदि पूरी एक वर्ष की हबसबेजा (परन्तु मेरे लिए

शान्त एकान्त आश्रम) पूरी भुगत के मैं लौटता। उस अवस्था में मुझे जेल के 'सन्त पितरस' मिर्यावाली की गर्मी का मजा चखकर आत्म-परीक्षा कर सकता कि कहाँ तक सहनशक्ति बढ़ सकती है। परन्तु इतने दिनों के अनुभव से जो परिणाम निकलता है, वह पाठक सज्जनों के सामने करता हूँ।

१. ब्रिटिश इण्डियन सरकार ने जेल का प्रबन्ध ऐसा रक्खा है जिसमें दुराचारी कैदी (Moral Convicts) अधिक दुराचारी हो जाएँ। उनके भोजन-छादन, उनके पाखाना-पेशाब, उनके वस्त्र, रहन-सहन को ऐसा दूषित बना दिया है कि नया फँसा अपराधी तो अनुभवी और निर्लज्ज बदमाश बन जाता है और 'पुराना पापी' ऐसा डूबता है कि फिर उसके उठने की आशा नहीं रहती। जेल-खानों में एक ओर तो पठान लम्बरदार कैदियों को गन्दी-से-गन्दी गालियाँ देने, उनकी बात-बात पर गर्दनिया नापने, धकेलने और लातों-घूँसों से मारने के लिए नियत किये हुए हैं और दूसरी ओर ऐसी ढीली निगरानी है कि बड़े जेलों में रिश्तत देकर न केवल शराब, अफीम, चरस, सिग्रेट आदि मँगाए जा सकते हैं, प्रत्युत हजारों का जुआ भी हो सकता है।

एक विचित्र बात यहाँ बतलाना आवश्यक है। जहाँ कैदियों को सताने के काम पर पठान लम्बरदार नियत होते हैं वहाँ भोजन बनाने और अन्य प्रकार की सेवा से कैदियों को सुख पहुँचाने का काम खालसा लम्बरदारों के सुपुर्द होता है।

२. राजनैतिक बन्दिनों पर जितना अत्याचार जेल के चाकरों की ओर से होता है, वह गवर्नमेंट की ठीक मर्जी के मुताबिक होता है। यदि ऐसा न होता तो जो हिन्दुस्तानी सुपरिण्टेण्डेंट या जेलर राजनैतिक देशभक्त सभ्य कैदियों के साथ जेल-नियमों को न तोड़ते हुए सभ्य व्यवहार करते हैं, उनकी उन्नति क्यों रोकी जाती और जो रिश्तत लेते, जेल के कारखानों में से भी सरकार का घर लूटते परन्तु पोलिटिकल कैदियों के साथ बुरा सलूक करते हैं उनको प्रशंसा और उन्नति का पात्र क्यों समझा जाता? मिर्यावाली जेल सुपरिण्टेण्डेंट डॉक्टर रामजीदास का मामला मेरे अनुभव में आया। वह न सिविल सर्जन पद पर स्थिर किये जाने के योग्य समझे जाते हैं और न जेल-नियम का उल्लंघन होने देते हैं। या यूँ कहा जाए कि उनकी सहनशीलता पर मोहित होकर कोई सभ्य पोलिटिकल असौर जेल-नियम तोड़ने को अच्छा नहीं समझता। मुझसे बढ़कर और किसकी खातिर वह जेल-नियम तोड़ सकते थे? परन्तु जब मैंने सब स्वदेशप्रिय अखबारों को छोड़ लाहौर के स्वदेश-शत्रु अखबार सिविल मिलिटरी गजट के माँगने की आज्ञा माँगी तब भी उन्होंने मुझे इनकार ही किया। वाणी से बड़ा सभ्य व्यवहार करते और जेल-नियम के अनुसार जो भी दुःख पोलिटिकल कैदियों से वह दूर कर सकते थे, दूर करते हुए भी वह एक भी नियम-विरुद्ध काम नहीं होने देते थे।

कारावास में सर्वप्रथम आत्मकथा लिखी

अमृतसर जेल के सुपरिण्टेण्डेंट मिस्टर जेनर्किज ने वहाँ के जेलर द्वारा मुझे अपने जीवन की घटनाएँ लिखने की इजाजत दे दी थी। मैंने १० पृष्ठ फुलस्केप कागज के काले भी कर छोड़े थे। मिर्यावाली में उन पृष्ठों को पढ़कर कुछ दिन पीछे आज्ञा मिली। परन्तु जब मैंने १२० पृष्ठ लिखकर पहले साथ लाए कागजों को समाप्त किया और अपने व्यय पर विशेष कागज माँगे तो उस समय न मिले, जब तक मेरा पूर्व का लेख देखने को न माँग लिया गया। उसमें सन् १८८४ ई० तक की घटनाएँ देखकर (जब नेशनल कांग्रेस की बुनियाद भी न पड़ी थी) उन्होंने फिर एक दस्ता कागज दिया और यदि मैं उसके चार-पाँच दिन पीछे ही न छूट जाता तो फिर भी बिना उन कागजों पर लिखे लेख देखे वह मुझे और कागज न देते। मैंने सुना है कि डॉक्टर रामजीदास के अतिरिक्त तीन और हिन्दुस्तानी सुपरिण्टेण्डेंट हैं जो राजनैतिक बन्धियों पर सख्ती न करने के कारण गवर्नमेंट की आँखों में खटकते हैं।

जेल-मैनुअल केवल दिखावा है

जब कभी जेल के अत्याचारों का जिक्र समाचारपत्रों में आता है तो गवर्नमेंट उत्तर में जेल-मैनुअल का हवाला देती है, परन्तु क्या जेल-कानून पर अमल होता है? उदाहरणों से मालूम होगा कि कानून केवल दिखावा है।

जेल-मैनुअल के वाक्य १४३ (२) में लिखा है कि कोई जेल-आफिसर किसी कैदी को सम्बोधन करते हुए सख्त, बदजवान, अपमानयुक्त वा अनावश्यक प्रकार से छेड़नेवाली भाषा का प्रयोग न करेगा और न हरेक कैदी के साथ कौशल, शील, मनुष्यत्व और दृढ़ निष्पक्षपात का व्यवहार करेगा, परन्तु मैंने देखा है कि साधारण कैदियों के साथ इसके विरुद्ध वर्तवि होता है। काले वस्त्रोंवाले कैदी अन्यो के साथ और पीले लम्बरदार उनके साथ भी बड़ा बुरा वर्तवि करते हैं। रिश्वत का बाजार गरम रहता है। जो पैसे खर्चें, वह जेल में आनन्द उड़ाता है। जो निर्धन है उसके लिए जेल जहन्नुम हो जाता है। वाक्य १४४ में कैदी को मारने की मनाही है। यहाँ तक लिखा है कि किसी वहाने से भी न मारना चाहिए। परन्तु यहाँ वहाना क्या? अमृतसर जेल में देखा कि यदि किसी कैदी को कुछ समझाना भी हो तो गर्दनियाँ और लात-धूँसा मारके ही चपरासी और लम्बरदार उसे समझाते थे।

वाक्य ६४५ में भोजन की सफाई और पकाने की उत्तमता पर बल दिया है। जली-कच्ची रोटी की सख्त मनाही की है। वर्तनों को साफ रखने की हिदायत है। परन्तु मिर्यावाली-से सर्वोत्तम जेल में भी वर्तनों की सफाई का पूरा प्रबन्ध नहीं, और भोजन की सफाई का जो हाल अमृतसर जेल में देखा वह पहले वर्णन कर चुका हूँ।

३. आगे चलकर यह भी हिदायत है कि खराब मौसम में छत के नीचे बैठा-कर खिलाने का प्रबन्ध चाहिए, परन्तु इसके लिए उचित प्रबन्ध नहीं है। साधारण कैदियों को घूम, वर्षा तथा सर्दी से बचाव का प्रबन्ध पूरा नहीं है। मियावाली जेल पोलिटिकल कैदियों के लिए सबसे उत्तम समझा जाता है। जहाँ जाड़ा सख्त होता है परन्तु नलके पर नहाने के लिए कोई पर्दा नहीं। तीन बैरिकों के कैदियों के लिए वर्षा ऋतु में भोजन करने के लिए कोई अलग कमरा नहीं है।... सुपरिण्टेण्डेंट होते हुए भी जब ऊपर के आफिसर तैयार न हों तो अच्छे-से-अच्छे कानून धरे ही रह जाते हैं। मेरा यह मतलब नहीं है पोलिटिकल कैदी सुखी जीवन व्यतीत करें। सहन करने के लिए तो वे जेल को स्वराज्याश्रम कहकर आलिंगन करते ही हैं और जितना अत्याचार उनपर होगा उतना ही इस नौकरशाही गवर्न-मेण्ट के पंजे से रिहाई की इच्छा उनके हृदयों में दृढ़ होगी। परन्तु यह सूर्य के प्रकाश की तरह प्रसिद्ध हो जाना चाहिए कि यहाँ हाथी के दाँत खाने के और तथा दिखाने के और हैं।

४. यद्यपि मैंने केवल अमृतसर सब-जेल और मियावाली जेल में ही निवास किया जहाँ बुरा सलूक नहीं हुआ, परन्तु जो भाई अन्य जेलों को भुगत आए उनकी ज़बानी जो घटनाएँ सुनी गईं और जो कुछ व्यंग्यपूर्ण प्रश्न (Cross Questions) करके उनसे अधिक जाना गया, उससे मैंने यही परिणाम निकाला कि यद्यपि बहुत-सी जेलों में अत्याचार होते हैं परन्तु उनसे दुःख उन्हीं को होता है जो महात्मा गांधी की कांग्रेस द्वारा सम्पादित इस प्रतिज्ञा को भूल जाते हैं कि जितना भी हम निरपराध होते हुए अत्याचारों को सहन करेंगे उतना स्वराज्य हमारे समीप आवेगा। ऐसे अत्याचारों पर कांग्रेस से बाहर के व्याख्यानदाता जो चाहें टिप्पणी चढ़ावें, परन्तु शान्तमय असहयोग एक शब्द भी अपने मुँह से शिकायत में न निकालना शान्तमयी (अदम-तशद्दुद = Non-Violence) के विषय में भी ऐसे विचार मैंने मियावाली जेल के कुछ राजनैतिक कैदियों से सुने। आपस के घीवाले भागड़े के पीछे बाबा गुरुदत्तसिंह, सरदार लद्धासिंह और पीरज़ादा अताउल्लाशाह की पंचायत ने अपराधियों को परस्पर क्षमा-प्रार्थना करने और शान्ति-स्थापना करने के लिए बुलाया। मेरी कोठरी सामने पास ही थी और मैं सुन रहा था। एक सिक्ख कैदी जो अकाली तहरीक से पहले जेल में थे, इस बात पर अड़े रहे कि जिसने उनपर आक्रमण किया है, उसको वह भी पुनः अवसर आने पर अवश्य ठोकेंगे। बाबा जी ने इन्हें कांग्रेस और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी की आज्ञाओं की याद दिला ऐसा विचार मन से निकालने के लिए अपील की। उनका उत्तर था—खालसा वीर बोले, “शान्तमयी का मतलब — नौकरशाही की पुलिस चाहे जूते-ल्लाठी मारे चाहे.....।”

(इसके आगे का अंश जो बहुत अल्प था, ग्रन्थ-सम्पादक को प्राप्त नहीं हो सका)

कतिपय भूमिकाएँ

ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार

(प्रथम भाग)

म० मुंशीराम जी जिज्ञासु द्वारा लिखित

भूमिका'

ऋषि-श्रेणी के महानुभावों के जीवन किसी देश वा मनुष्य-समूह-विशेष की सम्पत्ति नहीं। उनके सम्बन्ध में जो कुछ भी ज्ञात हो सके उसे सर्वसाधारण के लाभ के लिए प्रकाशित करना सच्चे मानवी इतिहास की उन्नति का साधन समझना चाहिए।

यह पत्र-व्यवहार मैंने पहले-पहल 'सद्धर्मप्रचारक' नामी साप्ताहिक पत्र में छपवाना आरम्भ किया था और यह मेरे स्वप्न में भी न था कि इनको पुस्तकारूप में पब्लिक के सामने आने का सौभाग्य मिलेगा। किन्तु घटनाएँ ही कुछ ऐसी होती गईं जिनका परिणाम इन पत्रों का कुछ काल के लिए सुरक्षित हो जाना हुआ।

मैंने इन पत्रों को 'सद्धर्मप्रचारक' द्वारा पब्लिक करते हुए,^१ २४ आषाढ़ सम्वत् १९६६ के अंक में, अपनी इस प्रवृत्ति का कारण यों वर्णन किया था—

ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार

चिरकाल से ऋषि दयानन्द के अपूर्ण जीवन-वृत्तान्त को पूर्ण करने का प्रयत्न हो रहा है किन्तु अब तक पण्डित लेखराम के ग्रन्थ के पश्चात् किसी आर्य महाशय ने भी इस बड़े काम का बोझ उठाने का साहस नहीं किया।

१. यह भूमिका महात्मा मुंशीराम जी ने स्वसम्पादित 'ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार' के प्रथम भाग में प्रकाशित की थी। इसमें कई आवश्यक बातों पर आर्य जनता का ध्यान आकृष्ट किया है।
२. अर्थात् सार्वजनिक रूप से प्रकाशित करते हुए।

परोपकारिणी सभा ने अपने दिसम्बर १९०६ के अधिवेशन में इस कार्य के गौरव को समझकर ऋषि दयानन्द के जीवनचरित्र की पूर्ति के लिए आर्यसमाज तथा परोपकारिणी सभा के इतिहास लिखवाने भी आवश्यक समझे। इसके लिए रेजोल्यूशन भी पास हुआ, किन्तु सालभर में काम कुछ भी न हुआ। इसलिए दूसरे वर्ष अर्थात् १९०७ के दिसम्बर वाले अधिवेशन में यह काम मेरे सुपुर्द हुआ। मैंने एक वर्ष तक बराबर समाजों तथा सामाजिक संस्थाओं के समाचार मँगवाने तथा इनके वृत्तान्त तैयार करने का प्रयत्न किया। दिसम्बर १९०८ तक बहुत-सा मसाला जमा हो गया था। उस अधिवेशन के पश्चात् मैंने ऋषि दयानन्द के पत्र-व्यवहार की पड़ताल की तो बहुत-से पत्र फटे हुए तथा चूहों के काटे हुए पाए गए। कई पत्रों को कीड़े लग गए थे। जो कुछ भी पत्रादि मुझे मिले मैं उन्हें अपने साथ लाया और उनकी जाँच-पड़ताल आरम्भ की। गत वर्ष इस काम पर ५५।।।)॥ व्यय हुए जो बिल देकर ले चुका हूँ। इस वर्ष फिर ६० रु० के लगभग व्यय हो चुका है, और मैंने सारा मसाला इस योग्य बना लिया था कि पूरा अवकाश मिलने पर आर्यसमाज का इतिहास तथा उसकी शिक्षा पर अपने विचार पुस्तकरूप में पेश कर सकता। किन्तु कुछ ऐसे कारण हो गए हैं (जिनका प्रकाश समय आने पर होगा) कि अब परोपकारिणी सभा की ओर से मेरा कोई पुस्तक तैयार करके छपवाना कठिन है। इसलिए सारा तैयार किया हुआ मसाला परोपकारिणी सभा के आगामी अधिवेशन में उक्त सभा के अधिकारियों के सुपुर्द कर दूंगा।^१

किन्तु ऋषि दयानन्द के पत्र-व्यवहार को यदि अब खटाई में डाला गया तो फिर उसके सर्वथा गल जाने की ही सम्भावना है। अतएव इन सब पत्रों को एक-साथ छाप देता हूँ जिससे आर्यसमाज का इतिहास लिखनेवालों को सुगमता से एक ही स्थान में ऋषि के जीवन का ठीक हाल मिल जाय। बड़े आदमियों के जीवन किसी पुरुष वा जातिविशेष की जायदाद नहीं, इसलिए उनके सम्बन्ध में जो कुछ भी पता लगे उससे सर्वसाधारण को लाभ पहुँचाना चाहिए। इस उद्देश्य को मन में रखकर मैं ऋषि दयानन्द के पत्र-व्यवहार को क्रमशः प्रचारक के इसी अंक में छापना आरम्भ करता हूँ।

अभी पाँच अंकों में पत्र-व्यवहार के १६० पृष्ठ निकाले थे कि ग्राहकों ने सर्व विषयों के लेखों को देखने की चेष्टा फिर प्रकट की, जिसपर १० भाद्रपद सम्बत्

१. परोपकारिणी सभा ने अपने १९०६ ई० के अधिवेशन में महात्मा मुंशीराम द्वारा ऋषि दयानन्द के पत्रों को 'वैदिक मैगजीन' तथा 'सद्धर्मप्रचारक' में प्रकाशित करने पर आपत्ति की थी। सभा की दृष्टि में इस पत्र-व्यवहार पर उसका एकाधिकार था।

१९६६ के अंक में पृष्ठ ६ पर निम्नलिखित लेख द्वारा उनका प्रचारक में छपना (३२ पृष्ठ और देकर) बन्द करने का नोटिस दिया गया—

“ऋषि दयानन्द का पत्रव्यवहार जिस विचार से मैंने प्रचारक में निकालना आरम्भ किया था उसके समझनेवाले भी प्रचारक-परिवार के बहुत-से सभासद् हैं; किन्तु फिर भी बहुतों ने शिकायत की है कि वे प्रचारक के कालमों में सर्व विषयों को देखना ही पसन्द करते हैं। इसलिए मैंने उक्त पत्रव्यवहार केवल आगामी अंक के साथ मुद्रित करा भविष्यत् के लिए इन कालमों में छापना बन्द कर दिया है। अब पत्र जुड़े छप रहे हैं और जब ५०० पृष्ठ की पुस्तक तैयार हो जावेगी उस समय पत्रव्यवहार का प्रथम भाग मुद्रित कर दिया जायगा। ऋषि दयानन्द के भेजे हुए पत्र कई महाशयों के पास होंगे। मैं उनसे अपील करता हूँ कि वे असल पत्र रजिस्टरी कराके मेरे पास भेज दें। मैं उनकी ठीक नकल करके पत्र ज्यों-का-त्यों रजिस्टरी द्वारा लौटा दिया कहूँगा, और साथ ही जो व्यय भेजने-वालों का होगा उसके टिकट भेज दिया कहूँगा।

जो पत्रव्यवहार मैं मुद्रित कर रहा हूँ यदि इस समय भी मैं उसकी ओर ध्यान न देता तो ये सर्व पत्र भी कीड़ों तथा चूहों की भेंट हो जाते। मेरा उद्देश्य किसी प्रकार के पत्र को भी पब्लिक करने से रोकने का नहीं है। मेरी सम्मति यह है कि ऋषि दयानन्द का जीवन-वृत्तान्त तैयार करते हुए भी जिन महाशयों ने कुछ पत्र रोक रखे उन्हींने अधर्म का काम किया। ऋषि दयानन्द के पत्रव्यवहार से यदि उनकी कोई निर्बलता भी प्रकाशित हो, वा किसी पत्र से हमारे जमे हुए संस्कारों तथा विश्वासों पर यदि किसी प्रकार की चोट भी लगे तब भी किसी आर्य-समाजी का अधिकार नहीं कि वह इस पत्रव्यवहार में से एक शब्द भी न्यूनाधिक करे। मैं इसलिए आर्यसमाज के बड़े-से-बड़े विरोधियों से भी प्रार्थना करता हूँ कि वे निश्शंक होकर अपने हस्तगत पत्र मुझे भेज दें। यदि उनको अविश्वास हो कि मैं उनके पत्र न लौटाऊँगा तो वे अपने हाथ से अपने अधिकार में आए पत्रों की नकलें करके अपने हस्ताक्षर कर दें और असल मेरे किसी विश्वासपात्र आदमी को दिखा दें, मैं फिर भी उनकी भेजी नकलों को छाप दूँगा। इस पत्रव्यवहार के मुद्रित करने से मेरा तात्पर्य यह है कि ऋषि दयानन्द का जीवन-वृत्तान्त लिखने तथा आर्यसमाज का इतिहास तैयार करनेवालों की सम्मतियों की पड़ताल करने तथा उनकी भूलों को ठीक करने की कसौटी सर्वसाधारण के हाथ में मौजूद रहे।”

मैं अपने पाठकों से विशेष निवेदन करता हूँ कि यदि उनके ज्ञान में कोई ऐसे भद्र पुरुष हों जिनके पास ऋषि दयानन्द के भेजे पत्र हों, वा ऋषि के नाम उनके भेजे हुए पत्रों की लिपि उनके पास हो तो मेरे पास भेजने के लिए उन्हें प्रेरणा करें।

इन पत्रों में पाठकगण ऋषि दयानन्द के अपने भेजे हुए पत्र वा लेख कम देखेंगे,

जिसके लिए उनके साथ मुझे भी बड़ा शोक है। यह आशा रखना कुछ असंगत न था कि वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धकर्ताओं तथा निरीक्षकों के नाम भेजे हुए पत्र तो, कम-से-कम, वैदिक यन्त्रालय में मिलेंगे। और जब यह देखा जाता है कि ऋषि दयानन्द पत्रोत्तर देने के लिए बहुधा स्वयं केवल मसौदा बनाकर ही देते थे और पत्र दूसरों से लिखवाकर भेजते थे, और साथ ही जब यह भी ध्यान में लाया जाता है कि ऋषि दयानन्द साधारण कामों में भी सावधान रहनेवाले थे, तो बड़े गूढ़ तथा आवश्यक पत्रों के मसौदे न पाकर बहुत ही आश्चर्य होता है। वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धकर्ताओं तथा अन्य वैतनिक कर्मचारियों के नाम भेजे पत्रों के वैदिक यन्त्रालय में न मौजूद होने का कारण तो स्पष्ट है। इन लोगों में (वे) कम थे जो निःस्वार्थ होकर काम करते रहे हों। उनके अपने आचरण ऐसे न थे कि वे अपने स्वामी की दी हुई शिक्षाओं को पब्लिक के सामने रखने का हौसला कर सकते। कुछ ऐसे भी होंगे जिन्हें अपने बचाव के लिए ऋषि के दिये हुए प्रशंसापत्रों की आवश्यकता थी। और शेष भाग ऐसा होगा जो ऐसे पूज्य विद्वान् के हस्ताक्षर से आए पत्रों को केवल आत्मप्रसाररूप से ही अपने पास रखना चाहते हों। किन्तु जो पत्र जर्मनी आदि देशों में भेजे गए और जो भारतवर्ष में निवास करनेवाले श्रद्धालु विदेशियों के नाम लिखे गए होंगे, उनके मसौदे अवश्य परोपकारिणी सभा के अधिकारियों के पास मिलने चाहिए थे।^१

किन्तु इसके न मिलने के कारण का अनुमान करना भी कठिन नहीं है। मुझे विश्वसनीय साधनों से पता लगा है कि ऋषि दयानन्द की बहुत-सी हस्त-लिखित पुस्तकें तथा पत्रादि पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या अपने घर उठाकर ले गये थे। मुझे यह भी पता लगा था कि उक्त पण्ड्या जी आर्य पुरुषों को धर्मकियाँ दिया करते हैं कि यदि अपने काबू आई हुई चिट्ठियों को छाप देंगे तो आर्यसमाज को बहुत हानि पहुँचेगी। इसी धमकी को लक्ष्य में रखकर मैंने १० भाद्रपद सं० १९६६ वि० का लेख दिया था, जिसका कुछ भी परिणाम न निकलने का मुझे शोक है।

मैं यहाँ फिर अपने पहले लेख को दुहराते हुए श्री पण्ड्या मोहनलाल विष्णुलाल तथा अन्य ऐसे सज्जनों से, जिनके पास ऋषि दयानन्द का कोई पत्र हो, निवेदन करता हूँ कि जिस शर्त पर भी सम्भव हो सके वे उन पत्रों की नकल मुझे (प्र) दान करें। मैं बिना इस विचार के कि उनके छापने से आर्यसमाज को हानि पहुँचेगी, वा लाभ, उन्हें इस ग्रन्थमाला के द्वितीय भाग निकलते समय (यदि उसकी माँग हुई) छाप दूँगा।

-
१. विगत २ वर्षों में परोपकारिणी सभा के संग्रह में ऋषि दयानन्द का कुछ अद्यतन अनुपलब्ध पत्रव्यवहार प्राप्त हुआ है।

इस पत्रमाला में कुछ पत्र कई-एक सज्जनों को अनावश्यक प्रतीत होंगे और कइयों की भाषा उनको ऐसी अखरेगी कि उन्हें पढ़ते समय वे मुझपर बहुत ही क्रुद्ध होंगे। ऐसे सज्जनों को समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक पुरुष के आचार बहुत-सी छोटी-बड़ी घटनाओं के समूह से ही बनते हैं, जिनमें से एक प्रकार की घटना को भी पाठकों से छिपाने पर वे उस पुरुष के जीवन पर ठीक सम्मति स्थिर नहीं कर सकते। यदि मैं भी इस समय 'पत्रमाला' के संग्रहीता के स्थान में जीवन-वृत्तान्त का सम्पादक होता तो मैं भी काट-छाँट से न चूकता, किन्तु मेरा अधिकार इस समय यह न था और जब ठीक तथ्य (Facts) ही पाठकों के सामने रखने का कर्तव्य हो तो भाषा को बदलना भी एक प्रकार के अनधिकार जमाने के तुल्य ही है।

मुद्रित पत्रों पर एक दृष्टि

स्वामी आत्मानन्द^१ के पत्रों से पता लगता है कि शिमला-समाज के स्थापन करनेवाले पण्डित परमानन्द वाजपेई तथा डॉक्टर ठाकुरदास थे जो दोनों हमसे बिछुड़ चुके हैं। लाला खुशीराम जी भी बड़े पुराने आर्य हैं जो सन् १८८३ ई० से कालिका आर्यसमाज के मन्त्री थे। पृष्ठ ५ पर इटावावाले पण्डित भीमसेन के सम्बन्ध में निम्नलिखित विचारणीय है—“भीमसेन के होने से आपके पास कोई नहीं रहेगा”। इससे ज्ञात होता है कि पण्डित भीमसेन की असलियत को श्री स्वामी दयानन्द जी के देहान्त-समय से कुछ काल पहले ही उनके कुछ सच्चे सेवकों ने समझ लिया था। कैसे शोक की बात है कि कुछ आर्य पुरुषों के बार-बार की चेतावनी देने पर भी श्री स्वामी आत्मानन्द जी से उनके इतिहास-सम्बन्धी अगाध ज्ञान को लेखनीबद्ध करने का किसी सज्जन ने भी प्रयत्न न किया जिससे आर्यसमाज के इतिहास का बड़ा अमूल्य भाग हमारे लिए अप्राप्त हो गया।

ईश्वरानन्द^२ के पत्र बड़े ही मनोरंजक हैं। ज्ञात होता है कि यह महाशय साधारण भाषा लिखना भी आर्यसामाजिक पुरुषों के सत्संग से ही सीखे थे। इनके अन्तिम जीवनचरित्र को इनके यहाँ दिये पत्रों के साथ मिलाया जावे तो स्पष्ट सिद्ध होता है कि जो पुरुष बार-बार पापों के लिए खुले दिल से प्रसिद्ध क्षमा माँगता है वह अपना सुधार करने के स्थान में कई बार अपने-आपको निर्लज्ज बनाकर किसी सुधार के योग्य भी नहीं रहता।

-
१. स्वामी आत्मानन्द ऋषि दयानन्द के प्रमुख शिष्य थे। ऋषि के देहान्त के समय वे अजमेर में ही थे। उन्होंने ही ऋषि की चिता को अग्नि दी थी।
 २. स्वामी ईश्वरानन्द ने स्वामी दयानन्द से संन्यास की दीक्षा ग्रहण की थी, किन्तु कालान्तर में वे आर्यसमाज के विरोधी बन गये।

स्वामी सहजानन्द^१ के पत्रों से ज्ञात होता है कि उनको संस्कृत की योग्यता बढ़ाने की लगन थी। अंग्रेजी सन्ध्या के अशुद्ध अर्थों के लिए शोक प्रकट करने तथा समाजों को पुनर्जीवित करने के जो विचार स्वामी सहजानन्द ने प्रकट किये हैं उनको पढ़कर शोक होता है कि ऐसे योग्य पुरुष को आर्यसमाज क्यों न सम्भाल सका। इनके पत्रों में मास्टर दयाराम, बाबू (वर्तमान रायबहादुर) मंगूमल, बाबू विष्णुसहाय तथा मास्टर मुरलीधरादि के धर्मभाव तथा पुरुषार्थ का बहुत-कुछ वर्णन आता है। इनके पत्रों से यह भी ज्ञात होता है कि स्वर्गवासी महाराजा फरीदकोट वैदिक धर्म के श्रद्धालु थे।

पण्डित भीमसेन^२ के पत्रों से तो वही 'टकाधर्म' की बू आती है, किन्तु उनके साथ

पण्डित सुन्दरलाल जी^३ (रायबहादुर) का पत्रव्यवहार मिलाकर यह भी पता लगता है कि भीमसेन और ज्वालादत्त ने ही वेदांगप्रकाश के सर्व अंक बनाए थे, और इसलिए उन ग्रन्थों की अशुद्धियों के लिए ऋषि दयानन्द को जिम्मेवार ठहराना जहाँ अनुचित है वहाँ उन ग्रन्थों का वह मान्य नहीं करना चाहिए जो उन्हें ऋषि दयानन्द के नाम के सम्बन्ध से इस समय प्राप्त है। रायबहादुर पण्डित सुन्दरलाल के पत्र संख्या ७ से विदित होता है कि सन् १८८२ ई० से पहले ही लाहौर आर्यसमाज के सामयिक अधिकारी वैदिक यन्त्रालय को लाहौर ले जाने के पीछे पड़े हुए थे। (देखिए पृष्ठ ६५)

भारतमित्र के सम्पादक^४ के नाम जो पृष्ठ ६८ से ७३ तक छपा है वह न केवल थियासोफिस्टों की लीला के विषय में ही ऋषि दयानन्द की सम्मति का परिचय देता है, प्रत्युत वेद-विषय पर भी उनकी सम्मति को यथावत् प्रकाशित करता है। निम्नलिखित पंक्तियाँ बहुत ही शिक्षाप्रद हैं—“और जो उन्होंने यह लिखा है कि स्वामी जी ईश्वर वा ईश्वर की प्रेरणायुक्त हों तो उनका भाष्य निर्भ्रम हो सके; मैं ईश्वर नहीं किन्तु ईश्वर का उपासक हूँ। परन्तु वेद मनुष्य के हितार्थ परमात्मा ने प्रकाशित किये हैं। इस ग्रन्थिप्राय से कि यहाँ तक मनुष्यों की विद्या और बुद्धि

१. स्वामी सहजानन्द ने भी स्वामी दयानन्द से ही चतुर्थाश्रम की दीक्षा ली थी।
२. स्वामी दयानन्द के आद्य शिष्य तथा आर्यसमाज के विद्वानों की प्रथम पीढ़ी में अग्रगण्य। कालान्तर में आर्थिक प्रलोभनों के वशीभूत होकर पौराणिक बन गये।
३. पण्डित सुन्दरलाल स्वामी दयानन्द के अत्यन्त विश्वासपात्र तथा प्रीतिभाजन थे। उन्हें स्वामी जी ने परोपकारिणी सभा का सदस्य मनोनीत किया था।
४. भारतमित्र उस समय कलकत्ता से प्रकाशित होनेवाला हिन्दी का प्रमुख पत्र था।

पहुँच सकेगी और इतने तक कार्य मनुष्य कर सकेंगे इसलिए यावत् मेरी बुद्धि और विद्या है तावत् निष्पक्षपात होकर वेदों का अर्थ प्रकाशित करता हूँ.....और सत्यार्थ होने से ही वेदों का निश्चिन्तित्व यथावत् सिद्ध है।”

ठाकुर रघुनारायणसिंह के शत्रुत्व की उत्तेजक कहानी पृष्ठ ८५ पर पढ़ने के योग्य है। यदि उस धर्मभाव का आर्य पुरुष पुनः स्मरण करेंगे तो इस संदिग्ध समय में भी धर्म का वेड़ा पार ही होगा।

ठाकुर नन्दकिशोरसिंह जी^१ आजकल जयपुर की राजसभा के मन्त्री हैं। इनके पत्रों से विदित होता है कि आप वैदिक धर्म के बड़े श्रद्धालु भक्त थे। कैसे शोक की बात है कि ऐसे भद्र पुरुषों की योग्यता से धर्म की वृद्धि में सहायता लेने की शक्ति आर्य पुरुषों में लुप्त होती जाती है ! इसके कारणों पर विचार करके उन्हें निर्मूल करना चाहिए।

गोरक्षा विषय में जो वृहत् कार्य ऋषि दयानन्द करना चाहते थे उसका वर्णन फुटकर पत्रों में कई स्थानों पर आया है। इन पत्रों से विदित होता है कि लाखों क्या करोड़ों हस्ताक्षर, गोवध रोकने के लिए कराके ब्रिटिश गवर्नमेंट की सेवा में भेजने का वे विचार रखते थे, और इस कार्य में राजों-महाराजों को भी सम्मिलित करना चाहते थे।

पण्डित दामोदर शास्त्री (नाथद्वारा वाले) का पत्र बड़ा मनोरंजक है।

भाई जवाहिरसिंह जी^२ के पत्र बहुत ही शिक्षाप्रद हैं। भाई जी पहले लाहौर-आर्यसमाज के मन्त्री थे। जब मैं सं० १९४२ वि० में आर्यसमाज का सभासद् बना उस समय भी आप उसी पद पर सुशोभित थे, और भाई दत्तिसिंह जी के साथ मिलकर वैदिक धर्म-प्रचार का कार्य बड़े उत्साह से करते थे। इनको ऋषि दयानन्द के शाहपुरा राज्य के लिए योग्य आदमी माँगने पर लाहौर आर्यसमाज ने भेजा था। इन पत्रों से लाहौर समाज के आरम्भिक विचारों का भी बहुत-कुछ पता लगता है। भाई जवाहिरसिंह में एक गुण अन्य लाहौरी आर्यसमाजियों से बढ़कर था। जहाँ कुछ एक अन्य लाहौरी आर्यसामाजिक लीडरों ने मरते दम तक आर्यभाषा का लिखना न सीखा वा उसका अभ्यास न किया, वहाँ भाई जी ने जिस मत को ग्रहण किया था उसके प्रवर्तक की इच्छानुसार उस मत का साधारण भाषा का अभ्यास पुरुषार्थ से आरम्भ कर दिया था। पृष्ठ १२५ पर का लेख आजकल के उन नवशिक्षित बूढ़ों और पुरजोश जवानों के लिए विचारणीय है जो

१. ऋषि दयानन्द के प्रसिद्ध भक्त ठाकुर नन्दकिशोरसिंह मूलतः कासगंज (एटा) के निवासी थे।

२. भाई जवाहिरसिंह जन्मना सिख थे, किन्तु ऋषि दयानन्द के सम्पर्क में आकर आर्यसमाज के सभासद् बन गये। कालान्तर में पुनः सिख मत में चले गये।

अंग्रेजी तथा उर्दू की लाठी से ही आर्यसामाजिक सर्वसाधारण के गल्ले को हाँकना चाहते हैं।

भाई जवाहिरसिंह के पत्रों के उत्तर में जो लेख ऋषि दयानन्द की ओर से आते रहे थे उनके प्राप्त करने का मैंने प्रयत्न किया था, और उनकी प्रतियाँ लेने की आज्ञा उक्त भाई जी से माँगी थी। किन्तु भाई जी ने उत्तर में लिखा कि यद्यपि उन्होंने वे पत्र पण्डित लेखराम को दिखलाए थे तथापि अब वे पत्र किसी ऐसे स्थान में रखे जा चुके हैं कि उनका पता नहीं लगता। यदि वे पत्र मिल जाते तो ऋषि दयानन्द की बहुत-सी सम्मतियों का विस्पष्ट ज्ञान हो सकता।

भाई जवाहिरसिंह जी के पत्रों से कई संदिग्ध मामलों पर प्रकाश पड़ेगा और उन लेखों से भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोग भिन्न-भिन्न परिणाम निकालेंगे; इसलिए मैं उन सब पर यहाँ कोई विचार नहीं करना चाहता। केवल एक विषय पर मुझे कुछ वक्तव्य है। यह बात प्रसिद्ध है कि आर्यसमाज के विषय में लाहौर समाज के स्थापित होने के दिन से ही 'पुलिटिकल बाँडी' होने का दोष लगाना शुरू हो गया था। साथ ही यह स्पष्ट था कि उक्त आर्यसमाज के अतिरिक्त अन्य किसी आर्य-समाज पर यह दोष नहीं लगाया जाता था। मुझे भली प्रकार स्मरण है कि जब सम्बत् १९४७ में एक डिपुटी कमिश्नर के इस कहने पर कि आर्यसमाज एक 'पुलिटिकल बाँडी' है, मैंने उनके इस कथन का दृढ़ता से निषेध किया था तो उन्होंने उत्तर में यही कहा था कि जालन्धर आर्यसमाज वा अन्य किसी आर्यसमाज को 'पुलिटिकल बाँडी' कोई नहीं कहता, किन्तु लाहौर आर्यसमाज को प्रायः अंग्रेज राजनैतिक सभा समझते हैं। अब तक यह समझा जाता रहा है कि शायद इसके कारण आर्यसमाज लाहौर के आरम्भिक सर्व अधिकारी तथा कार्यकर्त्ता होंगे। किन्तु भाई जी के पत्र से ज्ञात होता है कि शायद लाहौर आर्यसमाज की इस बदनामी के मूल कारण आप ही हों।^१ आपके दूसरे ही पत्र में (पृ० १२० पर) पाठक नीचे दिये वाक्य पाएँगे—

“हाँ कुछ पुलिटिकल (Political) विद्या का स्वभाव से प्रेम है यांते समाज के सज्जन पुरुष यही कहते हैं कि तुम इस काम को अच्छा निवाहोगे।”

उपर्युक्त लेख से यह भी सिद्ध होता है कि लाहौर आर्यसमाज के पहले काम करनेवालों में से केवल भाई जी ही राजनैतिक विद्या में निपुण समझे जाते थे। अब देखना यह है कि लाहौर आर्यसमाज की राजनैतिक प्रसिद्धि का कारण क्या था। भारतवर्ष में निवास करनेवाले अंग्रेजों (Anglo-Indians) का यह स्वभाव है कि उनका एक भाई भी जिस बात को जिस प्रकार लिख दे, उसी लकीर पर

१. तसवीर का एक दूसरा पहलू यह भी है कि आर्यसमाज में प्रविष्ट होनेवाले आरम्भ से ही राष्ट्रीय प्रश्नों में अभिरुचि दिखाने लगे थे।

सब चल पड़ते हैं; अपने स्वदेशी भाइयों के संदिग्ध लेख पर भी विदेशी युक्ति तथा प्रमाण को सुनने के लिए तैयार नहीं होते। मेरा अनुमान यह है कि आर्य-समाज के विषय में इस प्रकार के विचार मिस्टर जॉन कैम्पबेल ओमन साहेब (Mr. John Campbell Oman) ने फैलाये थे जो गवर्नमेण्ट कॉलेज लाहौर में पदार्थ-विज्ञान के अध्यापक (Science Professor) थे। पण्डित गुरुदत्त जी इन्हीं के शिष्य थे और जब शिष्य गुरु को बहुत पीछे छोड़कर पदार्थ-विज्ञान की अपेक्षा वेदों का अधिक ज्ञान करने लग गए तो गुरु को कुछ शोभ भी हुआ। इन्होंने एक पुस्तक सन् १८८२ ई० के आरम्भ में लिखी थी जिसका नाम रखा था— 'Indian Life : Religious and Social'.

सबसे पहले आर्यसमाज को पुलिटिकल बाँड़ी सिद्ध करने का इस पुस्तक द्वारा प्रयत्न हुआ था। उस पुस्तक में नए हाल, जो प्रोफेसर साहेब को इंग्लैण्ड बैठे ही मालूम हुए, बढ़ाकर उसका नाम अब 'CULTS, CUSTOMS AND SUPERSTITIONS OF INDIA' रखा गया है। इस नई पुस्तक का मुद्रण सन् १९०८ में शायद इसीलिए किया गया कि उस समय की पुलिटिकल हलचल के रौ में बहे हुए पुरुषों में इस पुस्तक का प्रचार होने की सम्भावना थी। इस पुस्तक का निम्न लेख ठीक तौर पर बतला देगा कि आर्यसमाज के विषय में राज-नैतिक दल होने का मिथ्या प्रलाप किस प्रकार आरम्भ हुआ।^१ पृष्ठ १४१ पर मिस्टर ओमन साहेब लिखते हैं—

"He (Dayananda) is also credited with the outspoken expression of an opinion about the Present-day degeneration of Englishmen in India. I have been, the Swami is reported to have said to an English clergyman who came to visit him, I have been an early riser from my childhood. In the beginning, I saw that Englishmen would get up early in the morning, and taking their children with them would go out for a walk. The excess of wealth has made them indolent since. They are seen stretched on their beds in their bungalows till the sun is up, and I cannot but perceive that, like the old Aryas, the days of your

-
१. तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में श्री ओमन के इस कथन को भले ही स्वामी श्रद्धानन्द ने मिथ्या प्रलाप कहा, किन्तु स्वामी दयानन्द द्वारा प्रस्तुत सन्दर्भ में कही गई भविष्यवाणी को एक राजनैतिक चिन्तक तथा राष्ट्र के भाग्यद्रष्टा युगपुरुष का क्रान्तदर्शी विचार ही माना जायगा कि अत्यधिक ऐश्वर्य तथा सुखभोग अंग्रेजों को भी प्रमादी बना देंगे, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें भी भारत में अपनी सत्ता से हाथ धोने पड़ेंगे।

fall are also coming. Without too much straining after the discovery of the more hidden causes of current happenings, we may perhaps be justified in recognizing in this significant condemnation and equally significant Prediction, uttered by or attributed to Dayananda, an encouragement of the later political activities of the sect which he founded; particularly as the reformer was intent upon the regeneration of Aryavarta, and the words patriotism and nationality constantly upon his lips. As early in the history of the Arya Samaj of Lahore as 1882, I find that the programme of the Anniversary celebration contains the following item : "A lecture in Vernacular by Bhai J..... S.....Secretary Arya Samaj Lahore, on "Nationality." and the subject has, I know, been always much in the thoughts of the samajists."

तात्पर्य यह कि एक अंग्रेज पादरी साहेब जब स्वामी दयानन्द को मिलने गये तो उनसे उक्त स्वामी जी ने कहा कि पहिले मैं अंग्रेजों को अपने बच्चों सहित प्रातःकाल ही बाहिर वायु-सेवन के लिए जाते देखता था। किन्तु अब सूर्य उदय होने के पीछे तक लेटे रहते हैं। इससे अनुमान होता है कि पुराने आर्यों की तरह तुम्हारे गिरने के दिन भी समीप आ रहे हैं। एक संन्यासी के मुँह से ऐसा उपदेश अपने अन्दर कुछ विचित्र घटना नहीं रख सकता, किन्तु ओमन साहेब को इसके अन्दर ही आर्यसामाजिक मत की पुलिटिकल उद्योगता का बीज दिखाई देता है और उसकी स्पष्ट साक्षी वह इस प्रकार वर्णन करते हैं—“आर्यसमाज लाहौर के इतिहास में बहुत ही आरम्भ अर्थात् सन् १८८२ ई० में उसके वार्षिकोत्सव के समयविभाग में निम्नलिखित विषय भी हैं; एक व्याख्यान भाई J.....S..... (मतलब जवाहिरसिंह से प्रतीत होता है) मन्त्री आर्यसमाज लाहौर की ओर से Nationality (कौमियत, स्वदेशीयता) पर—और मैं जानता हूँ कि यह विषय आर्यसमाजियों के ध्यान में अधिक रहता है”।^१ यदि प्रोफेसर ओमन साहेब के टेढ़े कटाक्षों की पड़ताल किसी अन्य समय के लिए छोड़ लें, तो भी स्पष्ट दीखता है कि उनके कटाक्षों के प्रबल कारणों में से भाई जवाहिरसिंह जी के एक व्याख्यान का विज्ञापन ही है। अब जब कि भाई जी को आर्यसमाज से जुदा हुए^२ २१ वर्षों

१. सन् १८८२ में आर्यसमाज के उत्सव में राष्ट्रीयता पर व्याख्यान दिया जाना ऋषि दयानन्द की प्रोज्ज्वल देशभक्तिपूर्ण शिक्षाओं का ही फल था।

२. भाई जवाहिरसिंह को अमृतसर के स्वर्णमंदिर में मुख्य ग्रन्थी का पद दे दिया गया तो वे आर्यसमाज से पृथक् हो गये।

से अधिक समय व्यतीत हो गया और आर्यसमाज के सभासदों ने बहुमत से अपने मन्तव्यों तथा कर्त्तव्यों का परिचय भी दे दिया तो उसी लकीर को पीटते जाना अन्य मतावलम्बियों का न्याय नहीं है।

पण्डित कालूराम (सेठों के रामगढ़वाले)^१ के दो पत्र विशेष प्रकार से मनोरञ्जक सिद्ध होंगे। एक तो दीमक ने इन पत्रों को गूढ़ बना दिया है और उसपर पण्डित कालूराम की भाषा विचित्र ! मेरी सम्मति में जिन पाठकों का समय खाली हो उन्हें समय काटने का इससे बढ़कर मनोरञ्जक साधन न मिलेगा कि पण्डित कालूराम के दोनों पत्रों की पहेलियों के बूझने में उसे लगावें।^२

पण्डित कालूराम ऋषि दयानन्द के बड़े श्रद्धालु भक्त थे। आपने रामगढ़ में एक स्थान बनवाया था जहाँ नित्य सत्यार्थप्रकाश की कथा बांगड़ देश के सर्व-साधारण में होती थी। इनके सैकड़ों शिष्य थे जिनकी विशेषता यह हुआ करती थी कि जो आज्ञा उन्हें सत्यार्थप्रकाश में दिखला दी जाय उसे वे शिरोधार्य समझते थे। कालूराम जी के स्थान में दो मेले प्रतिवर्ष होते थे जिनमें भोजन का सत्कार सहस्रों पुरुषों का हुआ करता था।^३ उनकी मृत्यु के पश्चात् न जाने उनके स्थान की यह महिमा रही वा नहीं, किन्तु उनके जीवन में आर्यसमाज का बड़ा उत्तम कार्य होता रहा।

अजमेरवालों के पत्र विशेष विचार से देखने के योग्य हैं। कमलनयन शर्मा तथा मुन्नालाल^४ के पत्रों से विदित होता है कि अजमेर-आर्यसमाज में परस्पर का विरोध ऋषि दयानन्द के जीवन में ही आरम्भ हो गया था। इस पत्र-व्यवहार पर यदि आज की तिथि डाल दी जावे तब भी कोई अचम्भे की बात न होगी। इस समय सर्व प्रान्तों के आर्यसमाजों में इसी दुर्घटना के दर्शन होते हैं। यदि आर्य-समाज को, उसके अग्रणी, जीवित रखकर वैदिक धर्म के प्रचार का साधन बनाना चाहते हैं तो उन्हें इस रोग की जड़ का पता लगाना चाहिए।

१. पण्डित कालूराम (रामगढ़-शेखावाटी राजस्थान निवासी) स्वामी दयानन्द के शिष्य तथा भक्त थे। उन्होंने राजस्थान के चूरू, सीकर तथा भुंझुन आदि जिलों में वैदिक धर्म का प्रचार किया था।
२. पण्डित कालूराम के पत्रों की अस्पष्टता का कारण है उनका स्वल्प भाषा-ज्ञान तथा पत्रों में मुख्यतया राजस्थानी बोली का प्रयोग।
३. महात्मा कालूराम के जन्म-स्थान रामगढ़ में आज भी उनकी स्मृति में मेलों का आयोजन होता है।
४. मुन्नालाल शर्मा उद्रेती आर्यसमाज अजमेर के मासिक मुखपत्र 'देशहितैषी' के सम्पादक थे। जीवन के संघर्षकाल में ये लाहौर में रहने लगे थे। वहाँ उनका देहान्त हुआ।

स्वामी केशवानन्द न जाने कौन थे जिनका वर्णन कमलनयन शर्मा के पत्र में आता है। इन्हीं के पत्र सं० ४ में पृष्ठ १७१ पर निम्नलिखित विचारणीय है—
 “.....सरदार भवतसिंह इंजिनियर हुए हैं। उन्हीं के दफ्तर में मैं भी काम करता हूँ। वे कहते थे कि गुजरात में मूलराज A. M. हमसे मिले थे और आर्यसमाजों को पक्षपाती कहते थे, इस कारण हमने और उन्होंने मिलकर एक संस्कृत पाठशाला जुड़े होकर नियत की है”। रायबहादुर मूलराज जी इस समय (हम) पर बड़ा उपकार करेंगे यदि यह बतलावे कि आरम्भ से ही आर्यसमाज के अन्दर किस प्रकार के पक्षपात ने घर कर लिया था।

जोधपुर से जो यह समाचार प्रसिद्ध होना लिखा है कि स्वामी जी का देहान्त हो गया, यह तो एक बार नहीं कई बार कई स्थानों से सुनने में आता था, परन्तु पृष्ठ १६२ पर जो मारवाड़ राज के निकट होने का लेख है उससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि ऋषि दयानन्द निर्भय होकर धर्म का प्रचार करनेवाले उपदेशक थे और इसलिए ऋषि-पद के अधिकारी।

पण्डित शुक्देवप्रसाद के पत्र के साथ जो पण्डित शिवकुमार शास्त्री का पत्र अजमेर के पण्डित शालिग्राम^१ के नाम का पृष्ठ २११ तथा २१२ पर छपा है, उससे ज्ञात होता है कि श्री पण्डित शिवकुमार जी^२ बराबर श्री स्वामी दयानन्द जी का अत्यन्त मान्य करते तथा उनके उद्देश्यों के साथ अन्तरीय भाव से सहमत थे।

बलदेव के पत्र — सं० ३ व ४—से विदित होता है कि उन दिनों श्री स्वामी महाराज के इंग्लैण्ड की ओर प्रस्थान करने की अफवाह फैल रही थी। यदि ऋषि दयानन्द एक बार लण्डनादि नगरों में भ्रमण कर आते तो न जाने धर्मान्दोलन के काम को कैसा प्रबल पलटा मिलता!^३ किन्तु यह होना ही न था। बेफिकरे बलदेव-से रोटी पर सैर करने के शौकीन अब भी बहुतेरे घूमते-फिरते हैं। पृष्ठ २२० पर वर्णित “स्वामी गणेश जी” का पता फिर नहीं मिला। पृष्ठ २२१ पर बिल्हौरवाले ‘मंगीलाल’ जी की बुझौती को जो बूझ दे उसे मैं भी कुछ पारितोषिक देने को तैयार हूँ।

१. पण्डित शालिग्राम शास्त्री गवर्नमेंट कॉलेज अजमेर में संस्कृत के प्राध्यापक थे। काशी-शास्त्रार्थ के समय ये वहाँ उपस्थित थे।

२. कालान्तर में महामहोपाध्याय पण्डित शिवकुमार शास्त्री के नाम से प्रसिद्ध तथा विख्यात सनातनधर्मी विद्वान्। इन्हें स्वामी जी ने स्व-स्थापित काशी की संस्कृत पाठशाला में २५ रुपये मासिक पर अध्यापक नियुक्त किया था।

३. केशवचन्द्र सेन ने स्वामी दयानन्द से इंग्लैण्ड जाने का प्रस्ताव किया था, किन्तु स्वामी जी को प्रथम अपने देश की दशा का सुधार ही अभीष्ट था।

गोरक्षा की ओर प्रथम ध्यान आकर्षित करनेवाले स्वामी दयानन्द ही थे। पृष्ठ २२७ पर दिये, गोपीनाथ के पत्र से विदित होता है कि रामगढ़वाले पण्डित कालूराम ने इस शुभ कार्य के लिए बड़ा परिश्रम किया था। एक सेठ ने मुझे ठीक लिखा था कि आजकल की सर्व गोशालाएँ तथा पिंजरापोल श्री स्वामी जी की ही मंगल इच्छा के परिणाम हैं।

भिनगा के भैया राजेन्द्रबहादुरसिंह का पत्र पाठकों को बहुत ही विस्मित कर देगा। इस पत्र से विदित होता है कि पुराने सत्यार्थप्रकाश में किये मांस-विधान की पुष्टि पंचमहायज्ञविधि के किसी आरम्भिक संस्करण से भी कुछ लोग समझते थे यद्यपि पुराने सत्यार्थप्रकाश से कुछ पहले छपी पंचमहायज्ञविधि में मांस-भक्षण का निषेध है। मेरी सम्मति में इस पत्र से विस्मित होने के स्थान में सन्देह की निवृत्ति हो सकती है। जिन पुरुषों ने ऐसे पत्रों को दवाएँ रक्खा है उन्होंने अधिकतः संदिग्धावस्था उत्पन्न कर दी है। यह पत्र संवत् १९३६ के चैत्र में लिखा गया, और कार्तिक संवत् १९४० वि० में स्वामी जी का देहान्त हुआ। उनकी मृत्यु के १॥ वर्ष पहले तक ज्ञात होता है कि उनका ध्यान मांस-विधान की भूल की ओर किसी ने आकर्षित नहीं किया। यही कारण मालूम होता है कि मृतक श्राद्ध के विरुद्ध विज्ञापन देते हुए भी स्वामी जी ने मांस-विषयक अशुद्ध लेख का वर्णन नहीं किया।

उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह जी के यहाँ दोनों समय अग्निहोत्र होने का वर्णन जो पृष्ठ २३६ पर हीरालाल अथर्वणी ने किया है उससे पता लगता है कि महाराजों की रूचि वैदिक कर्मकाण्ड की ओर बढ़ चली थी।

महाशय लक्ष्मण गोपाल देशमुख^१, असिस्टेंट कलक्टर खानदेश के पत्र यद्यपि केवल धड़ी की खरीदारी के सम्बन्ध में होने से कई पाठकों को तुच्छ प्रतीत होंगे, किन्तु मेरी दृष्टि में वे बहुमूल्य हैं। इनसे पता लगता है कि आर्यभाषा तथा संस्कृत के प्रचार को जिस ऋषि दयानन्द ने पुष्टि दी थी, यदि उसका अनुकरण उनके शिष्य करते तो आज यह हीन दशा न दिखाई देती कि आर्यसमाज के कतिपय भूषणों को यह भी लिखते लज्जा नहीं आती कि यदि उनसे उत्तर-प्राप्ति की इच्छा हो तो उनके नाम पत्र इंगलिश वा उर्दू भाषा में ही भेजा जावे।

मुंबई आर्यसमाज के मन्त्री के पत्र में पृष्ठ २४६ की समाप्ति पर कैसे हृदय-वेधक शब्द हैं जो आज भी उसी प्रकार सर्व आर्यसमाजों में गूँज रहे हैं—“कार्य करनेवाले बहुत कम हैं कि अपना तन-मन-धन लगाके करें, वाक्यविलास करनेवाले बहुत हैं।” यह शिकायत उस समय तक दूर न होगी जब तक कि सदाचार को ही धर्मशीलता की जड़ न समझ लिया जावे।

१. रावबहादुर गोपालराव हरि देशमुख के पुत्र।

मन्त्री सेवकलाल कृष्णलाल जी का पत्र सं० ६ जैनमत की पुस्तक के विषय में बड़ा मनोरंजक है; इस मत की पुस्तकों के दर्शन भी स्वामी जी महाराज को इन्हीं सज्जनों द्वारा हुए थे। पृष्ठ २७५ से ज्ञात होता है कि जून १८८३ ई० में स्वामी आलाराम^१ आर्यसमाजी बनकर मुम्बई पहुँचे हुए थे और उस समय तक संस्कृत कुछ भी नहीं जानते थे; किन्तु उस भाषा का अभ्यास दृढ़ता से कर रहे थे। उस समय श्री स्वामी जी के चरणों में पूरी श्रद्धा रखते थे, किन्तु आज अन्यों से बिगड़ने के कारण अपने पूर्वगुरु को गालीप्रदान कर रहे हैं। काल की विचित्र गति है !

लालाजी बंजनार्थ व्यास के पत्रों से (जो पृष्ठ २८० से २८५ तक दिये गए हैं) विदित होता है कि स्वामी जी के इस पंचभौतिक देहत्याग करने से कुछ मास पहले ही मुम्बई आर्यसमाज की अवस्था ढीली पड़ गई थी। अन्य कई आर्यसमाजों की निर्बलता का हाल भी इन्हीं दिनों के लिखे हुए पत्रों से विदित होता है। न केवल यही, बल्कि अजमेर, लखनऊ, फर्रुखावादादि के पत्रों से यह भी विदित होता है कि ऐसी अनुचित अवस्था बहुधा कुछ सभासदों के स्वार्थवश होने तथा परस्पर के विद्वेष से उत्पन्न हो चली थी। यह सच है कि ऋषि के परलोकगमन के कुछ वर्षों पीछे एक विचित्र प्रेम तथा पवित्रता की लहर उठी थी किन्तु परस्पर के द्वेष तथा सदाचार की अविद्यमानता ने उस लहर को भी विलकुल बँटा दिया है। यदि वैदिक धर्म का पुनरुद्धार अभीष्ट है तो आर्यसमाज के अग्रणियों को आचार-संशोधन का कोई विशेष उपाय सोचना चाहिए।

कवि सुखराम व्यस्वकराम का पत्र केवल एक नमूने का दिया है जिससे विदित होता है कि लोगों में उस समय धार्मिक विषयों के आन्दोलन की जिज्ञासा केवल श्री स्वामी दयानन्द जी के उपदेशों से ही उत्पन्न हुई थी। पृष्ठ २६२ पर जिस ग्रन्थ (दयानन्द सरस्वतिनं भाषण)^३ का “अहमदाबाद गुजरात वनविद्युलर सुसाइटी” के पुस्तकालय में विद्यमान होना वर्णित है और जिसका मूल्य ॥१॥ लिखा है, क्या वह पूनावाले व्याख्यान ही थे वा उनसे भिन्न कोई पुस्तक थी ? इसका पता लगाना चाहिए।

-
१. आर्यसमाज बम्बई के मंत्री तथा स्वामी दयानन्द के अत्यन्त विश्वासपात्र थे।
 २. यह व्यक्ति कालान्तर में आर्यसमाज का परम शत्रु बन गया।
 ३. अहमदाबाद स्थित उक्त सोसाइटी के पुस्तकालय में आज इस नाम की कोई पुस्तक विद्यमान नहीं है।

लाला मथुरादास का पत्र^१ (पृष्ठ ३०५ पर) बतलाता है कि उन्होंने जो ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का संक्षिप्त अनुवाद उर्दू में प्रकाशित किया था उसमें श्री स्वामी जी की सम्मति नहीं ली थी। उन्होंने कुल छपी हुई प्रतियाँ वैदिक यन्त्रालय में दे दी थीं। अच्छा ही होता यदि उन्हें न बेचा जाता जिससे बहुत-सी भूलों से सर्वसाधारण का बचाव होता।

धर्मवीर पण्डित लेखराम का एक ही पत्र, देवनागरी अक्षरों में लिखा हुआ, मिला है, यह पत्र विचित्र है। लाला कन्हैयालाल अलखधारी तथा मुंशी इन्द्रमणि की पुस्तकों से इन्होंने अन्य मतों के खण्डन की शिक्षा ली थी, इसलिए मुंशी इन्द्रमणि के साथ श्री स्वामी जी का विगाड़ उन्हें सह्य न था। श्री स्वामी जी के जीवन-चरित में मुंशी इन्द्रमणि के मामले पर जो कुछ लिखा है उसका इस पत्र के साथ मुकाबिला करने से विदित होता है कि पण्डित लेखराम जी सत्यग्राही बड़े दृढ़ थे। एक बात और विदित होती है—वैदिक धर्म में प्रेम उत्पन्न होते ही पण्डित लेखराम ने देवनागरी अक्षरों का अभ्यास आरम्भ कर दिया था और अपनी भाषा की अशुद्धियों के कारण अपने कर्त्तव्य-पालन में किंचित् भी नहीं घबराते थे।

स्वामी आलाराम का पत्र पृष्ठ ३१२ तथा ३१३ पर उनकी विचित्र जीवनी पर बड़ा प्रकाश डालता है।

शंका-समाधान का अवसर विरोधियों को तो बहुत मिलता रहा किन्तु बड़ा ही शोक है कि जिस समय आर्यसमाजियों के दिलों में धर्मविषयों के आन्दोलन की जिज्ञासा उत्पन्न हुई उस समय ऋषि के परलोकगमन की तैयारियाँ हो रही थीं। पृष्ठ ३१४-३१५ पर क्षेमकरणदास^२ का पत्र मुक्ति विषय के प्रश्नयुक्त कैसा हृदयवेधक है! उधर जोधपुर में विप देने की तैयारी दुष्ट कर रहे हैं और इधर प्यासे धर्म का मर्म जानने की जिज्ञासा कर रहे हैं। किन्तु शोक यह है कि अभिमान और द्वेष के अन्धकार से अन्धे किये गए आर्यसमाजी अब तक भी अपने धर्म के मूल-स्रोत वेद पर विचार करने को उद्यत नहीं होते।

देहरादून के पण्डित ज्योतिःस्वरूप का एक लेख पृष्ठ ३१६ पर वैयाकरणों के पढ़ने योग्य है।

ऋषि की स्वाभाविक शान्ति तथा सत्यप्रियता का नमूना देखना हो तो

१. लाला मथुरादास पंजाब के नहर-विभाग में ओवरसीयर थे। उन्होंने भूमिका का यह संक्षिप्त उर्दू अनुवाद १८८२ ई० में प्रकाशित किया था। इस ग्रन्थावली के सम्पादक ने इसे प्राप्त किया है तथा शीघ्र ही इसे नागरी लिपि में प्रकाशित किया जाएगा।

२. पण्डित क्षेमकरण त्रिवेदी अथर्ववेद के प्रसिद्ध भाष्यकार थे।

पृष्ठ ३३३ से ३३७ तक साधु अमृतराम नवीन-वेदान्ती तथा पण्डित गोपालराव हरि का पत्र-व्यवहार^१ अवश्य पढ़िए।

लखनऊ आर्यसमाज के आरम्भिक भगड़े के विषय में पृष्ठ ३३८ से ३६६ तक के पत्र, जो उभय पक्ष ने श्री स्वामी जी के नाम लिखे, इसलिए दिये गए हैं कि पाठक यदि वर्तमान समय की अव्यवस्था को दूर करने के लिए कुछ शिक्षा लेना चाहें तो ले सकें।

इन पत्रों में पृष्ठ ३५६ पर की निम्नलिखित पंक्तियाँ कुछ विचार-साध्य हैं। महाशय रामाधार वाजपेई ने एक स्थान पर अपने आर्यसमाज के अधिवेशन से उठ जाने का कारण यह बतलाया था कि उनका सन्ध्या का समय हो गया था। उत्तर में हरनामप्रसाद जी मन्त्री लिखते हैं—“और सन्ध्या-वन्दन के विषय में तो समाज विषय भी अनेक प्रकार के धर्म-सम्बन्धी देशोन्नतिकारक और परोपकारक होने के कारण न्यून नहीं वरन् अधिक है और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण स्वामी जी ही महाराज को देखिये।”

आर्यसमाज में इस प्रकार की अविद्या अब तक फैली हुई है जिससे बड़ी हानि हो रही है। स्वामी जी महाराज संन्यासी थे। संन्यासी का दिन-रात ही स्वाध्याय में व्यतीत होता है। संन्यास का अधिकार ही तब होता है जब स्वभावतः ही दिन-रात ओ३म् का ध्यान रह सके। संन्यासी सर्व बाह्य बन्धनों से मुक्त होता है इसलिए उसके वास्ते कोई विशेष समय वा नियम सन्ध्योपासन का नियत नहीं। किन्तु प्रत्येक गृहस्थ के लिए तो दोनों कालों की सन्ध्या ही सर्वोत्तम स्वाध्याय है। इसे ब्रह्मयज्ञ कहा है और पाँचों महायज्ञों में इसका प्रथम पद है। इस समय भी आर्यसमाज में ऐसे उत्तर सुनने में आते हैं जिनसे अपने कानों को दुःख पहुँचता है—“हम सन्ध्या से भी उत्तम काम कर रहे हैं।” क्या आज जो नास्तिकपन की-सी लहर आर्यसमाज के किसी-किसी विभाग में उठ रही है वह इसी अनियम का परिणाम तो नहीं? विचारशीलों को अवश्य सोचना चाहिए।

महाशय भोलानाथ जी मन्त्री आर्यसमाज बरेली के पत्र (पृष्ठ ३६७ से ३७१ तक) के साथ यदि ऋषि दयानन्द का चौबे कन्हैयालाल के नाम का पत्र (पृष्ठ ३८४-३८५) मिलाकर पढ़ा जाय तो पता लगेगा कि वर्णाश्रम धर्म के जिस उच्च शिखर पर ऋषि हमें ले-जाना चाहता था, अब तक भी हम उससे बहुत नीचे खड़े हैं।

प्रश्न स्पष्ट शब्दों में यह है—“क्या आर्यसमाज ने उस आदर्श तक पहुँचने के लिए, जिसको लक्ष्य में रखकर ऋषि दयानन्द ने उसकी बुनियाद डाली थी,

१. इस पत्र-व्यवहार को पण्डित गोपालराव हरि (देशमुख नहीं) ने स्वरचित ‘दयानन्द दिग्विजयार्क’ में विस्तारपूर्वक दिया है।

कोई पग आगे उठाया है ?” ऋषि दयानन्द का लक्ष्य क्या था उनके निज-कथित जीवन-वृत्तान्त के अन्तिम शब्दों से भलीभाँति प्रकट होता है—“ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि प्रत्येक स्थान में आर्यसमाज स्थापित होकर मूर्तिपूजा आदि दुष्ट आचार बन्द हो जावें, वेदशास्त्रों का सच्चा अर्थ समझ में आवे और उन्हीं के अनुकूल लोगों का आचरण होकर देश की उन्नति हो जावे।” यह स्पष्ट है कि वैदिक ज्ञान का समझना और उसके अनुकूल आचरण कराने का प्रयत्न करना आर्यसमाजों के स्थापित किये जाने का उद्देश्य था; अर्थात् कर्म को ज्ञान के अनुकूल साँचे में ढालना प्रत्येक आर्य का धर्म है। क्या इस धर्म के पालन करने में प्रयत्न हो रहा है? जितना प्रयत्न ज्ञान और क्रिया को अविरोधी करने में होगा उतनी ही आर्यसमाज की सफलता समझी जायगी।

वैदिक मर्यादा के अनुसार मनुष्य का अन्तिम उद्देश्य दुःखों से छूटकर परमानन्द का प्राप्त करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वर्णाश्रम-धर्म साधन हैं। कर्मकाण्ड का सार वर्णाश्रम-धर्म का पालन है। इसलिए यदि आर्यसमाज ने वर्णाश्रम-धर्म के पालन में कोई पग आगे बढ़ाया है तो समझना चाहिए कि अपने लक्ष्य की ओर चल रहा है; अन्यथा इसकी दशा शोचनीय समझी जावगी।

पहले आश्रमव्यवस्था के सुधार की ओर दृष्टि देना चाहिए। बिना संस्कार के सुधार होना कठिन है, और सारे संस्कार आश्रमव्यवस्था के अन्तर्गत हैं, इसलिए यदि हमारी आश्रमव्यवस्था सुधर न रही हो तो आर्यसमाज को अभी बाल्यावस्था में स्थित समझा जायेगा।

पहला आश्रम ब्रह्मचर्य है। क्या आर्यसमाज ने अपने गत ३३ वर्षों के जीवन में इस आश्रम के सुधार के लिए कुछ प्रयत्न किया है? इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है। जिस वस्तु का अभाव हो उसका सुधार कैसे हो सकता है? गृहस्थ और संन्यास का आभासमात्र तो ऋषि दयानन्द के उपदेशों से पहले भी विद्यमान था; इसलिए उनका सुधार हो सकता था। किन्तु ब्रह्मचर्याश्रम का तो नाटक भी उड़ चुका था, इसलिए उसके सुधार के कुछ अर्थ ही न थे। हाँ, ब्रह्मचर्याश्रम को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता थी। इस समय ब्रह्मचर्याश्रम के पुनर्जीवित करने के लिए आर्यसमाजों की ओर से बड़ा प्रबल प्रयत्न हो रहा है। गुरुकुलों का स्थापित होना इस प्रयत्न का प्रत्यक्ष प्रमाण है। किन्तु फिर भी यदि गुरुकुलों के प्रबन्धकर्त्ताओं से पूछा जायगा तो वे बतलावेंगे कि केवल पाठशाला तथा आश्रम खोल देने से ब्रह्मचर्याश्रम का भविष्य नहीं सुधर सकता।

पैतृक संस्कारों का सन्तानों पर बड़ा असर पड़ता है। माता के तो सर्व स्वभावों का सन्तान में पुनर्जन्म होता है। आचार्य-कुल की रक्षा का पूरा फल

१. यह भूमिका पं० मुंशीराम ने आज से ७६ वर्ष पूर्व लिखी थी।

तभी प्राप्त हो सकता है जबकि गुरुकुलों में प्रवेश करनेवाले बालक तथा बालिकाओं के माता-पिता अपने आचरणों के सुधार की ओर दृष्टि डालें और अयोग्यता की अवस्था में सन्तानोत्पत्ति की क्रिया को ही पाप समझें। मेरा यह मतलब नहीं है कि वर्तमान गुरुकुलों में आचार्य, अध्यापक तथा अधिष्ठाता आदर्श पुरुष हैं। मैं जानता हूँ कि उनमें बहुत-सी त्रुटियाँ हैं जिनके दूर हुए बिना पूर्ण फल की प्राप्ति नहीं हो सकती। किन्तु यदि छात्रों के अन्तःकरणों में पैतृक संस्कार उत्तम जमे हुए हों और उनके शरीर भी स्वस्थ ब्रह्मचारी माता-पिता के ग्रंथों के अंग हों तो उनके तेज से उनके संरक्षकों के अन्तःकरण भी आप-से-आप शुद्ध होते जायेंगे। परिणाम यह निकला कि जब तक ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश करनेवालों के पैतृक संस्कार शुद्ध न हों तथा उनके संरक्षकों के शरीर, मन तथा आत्मा पवित्र न हों तब तक ब्रह्मचर्याश्रम का सुधार कठिन है; अर्थात् गृहस्थाश्रम की शुद्धि पर ही ब्रह्मचर्याश्रम की स्थिरता का निर्भर है। जहाँ ब्रह्मचारियों की उत्पत्ति का स्रोत गृहस्थ है वहाँ आचार्य-अध्यापकादि भी गृहस्थाश्रम में पूर्ण शिक्षालाभ करके ही ब्रह्मचारियों को संसार-मार्ग के कण्टकों से बचाने में कृतकार्य हो सकते हैं।

तब गृहस्थ पर ही ब्रह्मचर्याश्रम का निर्भर है इसमें क्या सन्देह है! और इसमें भी कुछ वक्तव्य नहीं कि गृहस्थ ब्रह्मचर्य से ज्येष्ठ आश्रम है। किन्तु मनु भगवान् इसको सर्व आश्रमों में ज्येष्ठ (बड़ा) बतलाते हैं। यह माना कि समय के क्रम से गृहस्थ का दर्जा वानप्रस्थ तथा संन्यास के नीचे दिखाई देता है, किन्तु सारे आश्रमों का स्रोत होने से इसे ज्येष्ठ आश्रम बतलाया गया है। इसलिए इसकी अवस्था के विचार से प्रथम अन्य आश्रमों की अवस्था पर थोड़ी दृष्टि डालनी चाहिए। वानप्रस्थाश्रम का इस समय सर्वथा अभाव है। गृहस्थ में आनन्द की इच्छा से लोग प्रवेश करते हैं। गृहस्थ स्त्री-पुरुषों की भोग-क्रियाओं के बाह्य चित्र को देखकर मोहित हो लोग सौन्दर्य की तलाश में आँख मूंदकर वर्तमान प्रणाली का गृहस्थ भोगना आरम्भ करते हैं। ठोकर लगते ही आँख खुलती है; तब पता लगता है कि गुलाब के फूल के सौन्दर्य के साथ काँटे भी हैं जिनसे बचे बिना सर्वसाधारण के लिए गृहस्थाश्रम नरक-धाम बन रहा है। जिन्होंने अविद्यारूपी निद्रा को त्याग दिया और अपने धर्म को समझकर मृगतृष्णारूपी सौन्दर्य का पीछा छोड़ दिया उनके लिए तो वही गृहस्थ स्वर्गलोक बन गया और उसके कर्तव्यों का पालन करने में ही उन्हें शान्ति मिल गई। उनके लिए सम्भव है कि वे गृहस्थाश्रम की अवधि को पूरा करके वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करें और अपने गृहस्थ के निरीक्षणों पर पुनः विचार करके आगे चलने की तैयारी करें। किन्तु जो पुरुष केवल सांसारिक सौन्दर्यरूपी मृगतृष्णा के पीछे ही आतुर होकर भाग रहे थे, वे वानप्रस्थाश्रम में “लोहे के चने चबाने” कब आ सकते हैं! वे सीधे संन्यासाश्रम की ओर दौड़ते हैं। इसलिए वानप्रस्थाश्रम को पुनर्जीवित करने के लिए भी पहले

गृहस्थाश्रम के सुधार की आवश्यकता है।

क्या संन्यासाश्रम की अवस्था ठीक है ? आर्यसमाज के सभासद् कृतघ्न नहीं हैं और इसलिए वे आर्यसामाजिक उन संन्यासियों की प्रशंसा करते हैं जो वैदिक धर्म के प्रचार का कार्य करते रहे हैं वा अब कर रहे हैं। किन्तु क्या हमारे संन्यासी महात्मा स्वयं इस बात को अनुभव नहीं करते कि यदि वे आश्रमाताश्रम^१ उन्नति करते हुए सच्चे ब्राह्मण बनने के पश्चात् संन्यास धारण करते तो संसार की भी भलाई होती ? संन्यासी कर्मकाण्ड के सर्वबन्धनों से छूट जाता है। क्या उस प्रकार जैसे सिकखों के गुरु “बन्धन तोड़” कर “निर्वाण” हो गये थे ? नहीं, प्रत्युत उस प्रकार जैसे कि ब्रह्मवादियों ने वर्णन किया है। सूत्र, शिखा, संध्या, अग्निहोत्र कोई बन्धन भी संन्यासी के लिए नहीं रहता। किन्तु क्यों ? इसका उत्तर उपनिषदों में लिखा है—

- (१) सशिखं वपनं कृत्वा बहिः सूत्रं त्यजेद् बुधः ।
यदक्षरं परं ब्रह्म तत् सूत्रमिति धारयेत् ॥
- (२) बहिः सूत्रं त्यजेद्विद्वान् योगमुत्तममास्थितः ।
ब्रह्मभावमयं सूत्रं धारयेद्यः स चेतनः ॥
- (३) शिखा ज्ञानमयी यस्य उपवीतश्च तन्मयम् ।
ब्राह्मण्यं सकलं तस्य इति ब्रह्मविदो विदुः ॥
- (४) निरोद्धका ध्यानं संध्या वाक्कायक्लेशवर्जिता ।
सन्धिनी सर्वभूतानां सा संध्या ह्येक दण्डिनाम् ॥

संन्यासी को शिखासहित यज्ञोपवीत का सूत्र त्याग करने का क्यों आदेश है ? इसलिए कि जिस मनुष्य को परमात्मा की सामीप्यता सर्वकालों में प्राप्त तथा ज्ञात है, जिसके रोम-रोम में ओ३म् रम रहा है, उसके लिए चेतावनी के किसी चिह्न की भी आवश्यकता नहीं। जिसका शरीर तो क्या, मन और आत्मा भी पवित्र हो गया हो और जिसके ब्रह्मरन्ध्र में ज्ञान का चक्र चल रहा हो उसे सूत के तागे तथा वालों के चिह्न से सहायता लेने की क्या जरूरत है और जो क्षण-क्षण में ब्रह्म के ध्यान में ही निमग्न रहनेवाला, प्राणिमात्र को समदृष्टि से देखता हो, उसे कालविशेष में ध्यान लगाने की आवश्यकता क्यों ? और योगयुक्त संन्यासी को अग्निहोत्र का बन्धन तो बाँध ही नहीं सकता। क्योंकि—

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च ।

गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमत्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ॥

दुर्गन्ध को दूर करने के लिए वह यत्न करे जो दुर्गन्ध फैलाता हो। जिसके

१. आश्रम से आश्रम (पंचमी का प्रयोग) का अभिप्राय है।

समीप दुर्गन्ध नहीं आ सकती उसे दुर्गन्ध के दूर करने के प्रयत्न की भी आवश्यकता नहीं ।

क्या आजकल के संन्यासी स्वयं न मान लेंगे कि ऊपर की कसौटी पर चढ़ने के योग्य वे नहीं हैं ? सांसारिक पुरुषों से भी बढ़कर धनोपार्जन में लगे हुए हों, और इसलिए जिनको राग-द्वेष में विवश होकर फँसना पड़े, जो अज्ञान की निद्रा के वशीभूत होकर विषय-भोग को ही आनन्द का साधन समझ रहे हों, जिनके मन और आत्मा तो दूर रहे, शरीर भी शुद्ध न हों, क्या उनको शिखा, सूत्र, अग्निहोत्र, सन्ध्यादि बन्धनों का त्याग करना योग्य है ? ऊपर के प्रश्न पर दृष्टि डालते ही ऐसे पुरुष, जिनके विषय में गुसाईं तुलसीदास लिख गये हैं—

परहित हानि लाभ जिन्हेंकरे । उजरे हर्ष विषाद बसेरे ॥

हरिहर जस राकेस राहु से । पर अकाज भट सहसबाहु से ॥

आर्यसमाज के संन्यासियों को मेरे विरुद्ध भड़काने का प्रयत्न करेंगे; किन्तु मैं इन महानुभावों को तनिक भी दोष नहीं देता । जब पाँच सहस्र वर्षों से गिरते-गिरते गृहस्थाश्रमरूपी सागर की दशा वह हो गई है जो किसी से छुपी हुई नहीं तो तीनों प्रकार की एषणाओं से सर्वथा न मुक्त होते हुए भी आजकल के संन्यास-वेपधारी जो कुछ सेवा धर्म की कर रहे हैं वह भी थोड़ी नहीं है । तब क्या सन्देह है कि जब तक गृहस्थाश्रम का सुधार न होगा तब तक संन्यासाश्रम भी जो सर्व-आश्रमों को मर्यादा में रखने का साधन है, अपना कर्तव्य पालन करने में समर्थ न होगा !

अन्तिम परिणाम यह निकला कि सर्व-आश्रमों के सुधार का निर्भर गृहस्थाश्रम ही है और उसके सुधार के लिए आवश्यक है कि वर्णव्यवस्था की प्रणाली ठीक हो । पश्चिमीय देशों में जो आपापन्थ तथा नास्तिकपन की लहर उठ रही है और मनुष्य-समाज को निगल जाने के लिए तैयार है, उसे निर्वल करने का सिवाय वर्णव्यवस्था की ठीक स्थिति के और कोई साधन नहीं है । तब क्या यह परिणाम निकालना कठिन है कि वर्णव्यवस्था को उसकी गिरी हुई अवस्था से जब तक न उठाया जायगा तब तक आर्यसमाज अपने उद्देश्य की ओर एक पग भी नहीं उठा सकता ?

धर्म विषयों पर प्रामाणिक व्यवस्था की जैसी उस समय आवश्यकता थी अब भी वैसी ही है । शोक कि इन पत्रों के जो उत्तर ऋषि दयानन्द की ओर से दिये गये वे नहीं मिल सकते, नहीं तो बहुत-से सन्देहों की निवृत्ति अपने से आप हो जाती ।

खुन्नीलाल विद्यार्थी का पत्र (पृष्ठ ३९९ तथा ४०० पर) केवल यह दिखाने के लिए दिया गया है कि “तुकवन्दी का शोक” किसी विशेष जाति, पंक्ति वा आयु आदि की “मीरास” नहीं है ।

खड्गज्ञान का एक नमूना पृष्ठ ५०१ वाले पत्र से भी मिलता है।

महाशय प्रभुदयाल का पत्र, पृष्ठ ४०२-४०३, सिद्ध करता है कि इन महा-
नुभावों का दर्शनों के आर्यभाषायुक्त भाष्य का परिश्रम ऋषि दयानन्द के सत्संग
का ही परिणाम था।

पण्डित ज्वालादत्त के पत्रों से न केवल यह विदित होता है कि ऋषि दयानन्द
के नाम से जो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं उनमें बहुत-कुछ हाथ अन्य पण्डितों का था, जिस-
के कारण उन ग्रन्थों में अनेक अशुद्धियाँ रह गई हैं; वल्कि यह भी पता लगता है
कि इन लोगों के परस्पर के राग-द्वेष तथा अन्तरीय कुटिल भावों के कारण भी
उस महान् आत्मा के उद्देश्य को बहुत-कुछ हानि पहुँचती रही है। पण्डित
ज्वालादत्त ने योग्यता कहाँ से सम्पादन की, उसका पता ४१८ पृष्ठ से लगता है
—“अब मामा जी ने लिखा है कि तुम्हारा महाभाष्य हम भेज देंगे। गलती जो
आपने निकाली मैं स्वीकार करता हूँ, यह मेरा दोष है…………। मुंशी समर्थदान
से इनकी बनती ही न थी और दिन-रात जले-बुझे हुए रहते थे। इस असन्तुष्टता
के कारण इन्होंने और क्या अनर्थ करना चाहा था, उसका वर्णन तब करूँगा जब
मुझे शेष पत्रव्यवहार छापने का अवसर मिलेगा। इन लोगों की लीला का कुछ
परिचय रायबहादुर पण्डित सुन्दरलाल के पत्र से मिलता है जो पृष्ठ ४२३ से
४२६ तक छपा है।

दानापुर के रामनारायणलाल का पत्र पढ़ने योग्य है, जिससे पता लगता है
कि सन् १८८२ ई० में आर्यसामाजिक पुरुषों का प्रेम बड़ा ही उत्साहजनक था।
पृष्ठ ४३० पर कैसे मनोहर शब्द हैं! इस पत्र से यह भी ज्ञात होता है कि ग्रन्थ-
कर्तृत्व की टाँग आर्यसमाज के मेम्बर उसी समय तोड़ने लग गये थे। पृ० ४२६
पर जो ग्रन्थ-संशोधन के लिए सभा का प्रस्ताव पेश किया गया है उसकी आज भी
वैसी ही आवश्यकता है जैसी उस समय थी।

द्वारकानाथ का पत्र पृष्ठ ४३२ से ४३६ तक इसलिए दिया गया है कि ऋषि
दयानन्द के धर्मप्रचार के गौरव को लोग समझ सकें। जहाँ राजों-महाराजों,
सेठ-साहूकारों, संस्कृत के धुरन्धर पण्डितों तथा विदेशी विद्वानों में दयानन्द के
सिंहनाद ने हलचल मचा दी थी, वहाँ साधारण पुरुषों को भी विद्योन्नति के लिए
नयी छावर करने के लिए तैयार कर दिया था।

१. महाशय प्रभुदयाल ने षड्दर्शनों का भाष्य स्वामी दयानन्द के जीवनकाल में
ही लिखा था। कालान्तर में इन्होंने संन्यास ग्रहण किया।

२. पं० ज्वालादत्त फर्रुखाबाद-निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। ये स्वामी जी के
शिष्य तथा उनके ग्रन्थों के लेखक (लिपिकर्ता) भी थे।

समाप्ति के समीप माई भगवती^१ तथा लाला जीनवदास के पत्र^२ दिये हैं। वे पहले 'सद्धर्म-प्रचारक' पत्र में छप चुके हैं। सबसे अन्तिम पत्र मुंशी समर्थदान जी के हैं^३ जिन्हें केवल दिग्दर्शनमात्र समझना चाहिए। मेरे पास अब तक इतने पत्र बचे पड़े हैं कि यदि उन्हें छपाया जावे तो ५०० पृष्ठों की एक और पुस्तक तैयार हो जावे। वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धकर्त्ताओं के लम्बे पत्र-व्यवहार के अतिरिक्त बहुत-से अन्य उपयोगी पत्र वच रहे हैं। इन सबके अतिरिक्त उन अंग्रेजी पत्रों के अनुवाद भी छपने चाहिए जो 'वैदिक मेगेजीन' में निकल चुके हैं। किन्तु इन सर्व पत्रों के मुद्रित करने का विचार उस समय तक रोकना पड़ता है जब तक यह पता न लगे कि जो पुस्तक मैं आज समाप्त करके सर्वसाधारण के हाथों में देने लगा हूँ उसका कुछ आदर होगा वा नहीं।

इस प्रकार की पुस्तकों का छपना दो तरह ही हो सकता है--या तो काफी ग्राहक बन जावें जिनके अग्रिम भेजे धन से छपाई का काम हो सके, वा कुछ उदार पुरुष छपाई के लिए धन दे दें। पहले ढंग में क्लेश बहुत रहता है जिनके कारण मैं उसको वृत्ति में नहीं ला सकता। दूसरे ढंग पर काम हो सकता है। यदि एक वा कई भद्र पुरुष मिलकर ५००) जमा करा दें तो पत्र-व्यवहार का दूसरा भाग भी छप जायगा।

ग्रन्थ की समाप्ति पर मुझे अपने प्रिय भाई पण्डित ब्रह्मानन्द को धन्यवाद देना है जिन्होंने ग्रन्थ के संशोधनादि में मुझे सहायता देकर बाधित किया।

शान्ति भवन

मुंशीराम जिज्ञासु

जालन्धर शहर

प्रबिष्टा १७ फाल्गुन सं० १९६६ वि०

१. माई भगवती होशियारपुर जिले के हरयाणा ग्राम की निवासिनी तथा ऋषि दयानन्द की भक्त थीं।
२. लाला जीनवदास आर्यसमाज-लाहौर के उपप्रधान-पद पर रहे। वे ऋषि दयानन्द के जीवन के अन्तिम समय में अजमेर में उपस्थित थे तथा आचार्यवर के महाप्रस्थान के साक्षी रहे।
३. मुंशी समर्थदान ऋषि दयानन्द के अत्यन्त विश्वसनीय व्यक्ति थे जिन्हें स्वामी जी ने वैदिक यन्त्रालय का प्रबन्धक नियुक्त किया था। ये राजस्थान के सीकर जिले के एक ग्राम नेठवा के निवासी चारण जाति थे।

उर्दू ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की भूमिका

आर्यसमाज का विचार है कि वेदों के धर्म को गताब्दियों के पश्चात् अज्ञान के पर्दे से बाहर लाने का कार्य स्वामी दयानन्द ने किया है। हमारे हिन्दू भाइयों का विचार है कि यद्यपि स्वामी दयानन्द ने आर्यसन्तति का ध्यान वेदों और संस्कृत-विद्या की ओर आकृष्ट किया है तथापि उन्होंने वेदों की नई व्याख्या लिखकर सनातन धर्म की काया ही पलट दी है। ईसाई और मुसलमान भाइयों का विचार है कि नूतन ज्ञान-विज्ञान से सहायता लेकर स्वामी दयानन्द ने वेदों के अर्थ ऐसे परिवर्तित कर दिये हैं कि उनकी असम्बन्धपूर्ण शिक्षाएँ अब पर्दे की ओट में रह गई हैं, अन्यथा वस्तुतः वेदमन्त्र केवल जंगली लोगों के विचारों की अभिव्यक्ति से अधिक कुछ नहीं हैं। कहाँ तक लिखा जाय ! हर सम्प्रदाय और मत वाले यहाँ तक कि नास्तिक भी स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य के सम्बन्ध में अपनी पृथक् राय रखते हैं।

स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य के सम्बन्ध में चाहे लोग भिन्न-भिन्न विचार क्यों न रखते हों, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि स्वामी जी ने धार्मिक जगत् में एक जबरदस्त हलचल पैदा कर दी है, और जिन कारणों से यह हलचल पैदा हुई, वे भी कम रोचक नहीं हैं। जिन कारणों से स्वामी दयानन्द ने सायण, महीधर और अन्य समस्त पौराणिक युग के भाष्यकारों तथा वर्तमान के यूरोपियन तथा अमेरिकन संस्कृतज्ञों से मत-वैभिन्य प्रकट किया है, उनका जानना प्रत्येक न्याय-प्रिय व्यक्ति के लिए आवश्यक है, चाहे उसके विचार स्वामी दयानन्द के विचारों के साथ मेल खाते हैं या नहीं खाते।

ये सब कारण स्वामी दयानन्द ने अपनी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका नामक पुस्तक में अंकित कर दिये थे जिसके लगभग एक-तिहाई अंश का उर्दू-अनुवाद मैं सत्यप्रिय लोगों के लिए अब प्रस्तुत करता हूँ। यह पुस्तक स्वामी दयानन्द के वेद-भाष्य की भूमिका के रूप में है। इसमें आर्यसमाज के प्रवर्तक ने वेदभाष्य करने के लिए प्रामाणिक पुस्तकों का पता बताया है और उनकी सहायता से वेदों के अर्थ पर पड़े हुए उस आवरण को दूर कर दिया है जिसके कारण आर्यसन्तति दीर्घ अवधि तक उसकी विशेषताओं से अपरिचित रही। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए इस पुस्तक का अभिप्राय जानना आवश्यक है। यद्यपि लेखक के विचारों की सूक्ष्मता तथा उसके अन्वेषण की विशेषता मूल संस्कृत के ग्रन्थ को पढ़ने से ही

ज्ञात हो सकती है तथापि, जबकि स्वामी दयानन्द ने वेदों के प्रमाण से ही हर व्यक्ति को वैदिक ज्ञान का अधिकारी बताया है, तो मैंने भी वैदिक ज्ञान के इस भण्डार को उर्दू जाननेवाले लोगों तक पहुँचाना अपना कर्तव्य समझा, अतः वेदों की प्राचीनता, उनके ईश्वरोक्त होने से सम्बन्धित सब अध्याय पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करता हूँ। यदि लोगों ने इस भाग को खरीदकर यह सिद्ध कर दिया कि मैं उनकी सेवा करने में सफल हुआ हूँ, तो अवशिष्ट ग्रन्थ का अनुवाद भी एक-दो भागों में इसी ढंग से छपवाकर प्रकाशित कर दूंगा।

मूल पुस्तक में सर्वप्रथम वेद या किसी शास्त्र के प्रमाण तथा तथ्य उद्धृत किये गए हैं। तत्पश्चात् स्वामी जी ने मूल का अनुवाद या अभिप्राय अपनी सम्मति और प्रमाणों के साथ संस्कृत में लिखा है। इसके पश्चात् उस संस्कृत-भाग का हिन्दी-अनुवाद किया गया है। किन्तु मूल संस्कृतपाठ का इस हिन्दी अनुवाद के साथ मिलान करने से मालूम होता है कि इस हिन्दी रूप को संस्कृत का ठीक अनुवाद कदापि नहीं कह सकते, बल्कि कहीं-कहीं तो हिन्दी पाठ संस्कृत से भिन्न या अधिक दिखाई देता है। अनेक स्थानों में हिन्दी के पाठ में संस्कृत-अंश के बिल्कुल विपरीत विचार प्रकट किये गए हैं। इन सब त्रुटियों को देखकर बड़ा भारी आश्चर्य हुआ करता था, किन्तु यह आश्चर्य १८९४ ई० के लगभग बिल्कुल दूर हो गया जब ज्ञात हुआ कि हिन्दी-अनुवाद से स्वामी जी का कोई सम्बन्ध नहीं है, बल्कि उसके लिए वैदिक यन्त्रालय के कर्मचारी पण्डितगण उत्तरदायी हैं। इस आश्चर्यजनक वास्तविकता के ज्ञात होने पर मैंने 'सद्धर्मप्रचारक' (जालन्धर नगर) में (जिसका कि मैं सम्पादक हूँ) २८ जनवरी १८९४ को निम्न शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया था—

“स्वामी दयानन्द का वेदभाष्य और उसकी रक्षा”—मैं इस स्थान पर उस लेख में से एक लम्बा उद्धरण प्रस्तुत करता हूँ, जिससे इस लेख के पाठकों को ज्ञात हो जायेगा कि जिन नियमों के अनुसार मैंने इस पुस्तक का अनुवाद किया है उनकी क्या आवश्यकता थी—

“१८९१ की समाप्ति तक हमारा यही विचार रहा कि संस्कृत-भाष्य और उसका सम्पूर्ण हिन्दी-अनुवाद महर्षि का किया हुआ है। इसीलिए जब उसी प्रसंग में पण्डित लेखराम आर्यमुसाफिर ने हिन्दी-अनुवाद की त्रुटियों की ओर आर्य जनता का ध्यान आकृष्ट किया तो इस प्रश्न का समाधान निकालना हमारे लिए कठिन हो गया कि क्या महर्षि दयानन्द के अनुवाद में किसी को न्यूनाधिक करने का अधिकार है वा नहीं? किन्तु हमें घोर आश्चर्य के साथ ही अत्यन्त प्रसन्नता भी हुई जबकि हमने उसी वेदभाष्य के अंकों पर यह पंक्ति छपी देखी कि आर्य भाषा में अनुवाद यन्त्रालय के पण्डित करते रहे हैं, महर्षि दयानन्दकृत अनुवाद केवल संस्कृत में हैं। पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्मा आर्य जनता के विशेष धन्यवाद के

पात्र हैं जिन्होंने कि परोपकारिणी सभा के अधिकारियों की आँखें इस विषय में खोलीं और बड़ा जोर देकर उपर्युक्त सूचना प्रकाशित करवाई।”

पण्डित लेखराम के प्रयत्नों का यह परिणाम हुआ कि परोपकारिणी सभा को भी हिलना पड़ा और यजुर्वेदभाष्य की जाँच-पड़ताल करने का काम आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को दिया गया। पंजाब की सभा ने इस काम को कुछ आर्य पुरुषों में बाँट दिया जिनमें हम भी सम्मिलित थे। किन्तु खेद है कि फिर कभी न तो परोपकारिणी सभा की तरफ से प्रयत्न हुआ और न पंजाब के आर्यों ने ही अपना कर्त्तव्य पूरा किया। किन्तु पंजाब के आर्यों के आलस्य का एक दूसरा और कारण था। परोपकारिणी सभा की तरफ से यजुर्वेदभाष्य की पड़ताल करने की प्रार्थना के साथ हमारी प्रतिनिधि सभा से यह भी पूछा गया था कि क्या हममें से कोई आर्य पुरुष वेदभाष्य के नये अंकों के प्रूफ देखने के लिए अपनी सेवाएँ दे सकता है या नहीं? इसके उत्तर में दो-तीन आर्यपुरुषों के नाम लिखे गये थे, जिन्होंने इस सेवा को स्वीकार किया था और वे इस प्रतीक्षा में थे कि अब प्रूफ आते हैं, किन्तु प्रूफ कभी नहीं आए। इसलिए पंजाब की सभा ने यह सोचकर कि परोपकारिणी सभा को उनसे अधिक सहायता लेना स्वीकार नहीं है, पूर्ण शान्ति धारण कर ली।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि हिन्दी-अनुवाद की त्रुटियों से क्या कोई खास हानि हुई? अगर ये गलतियाँ केवल भाषा या व्याकरण की होतीं तो इनपर विचार करने की इस समय आवश्यकता न थी, क्योंकि दूसरी आवृत्ति में ऐसी त्रुटियाँ सावधानी के साथ छापने में सरलतापूर्वक दूर की जा सकती थीं। लेकिन भूमिका और वेदभाष्य के हिन्दी में स्थान-स्थान पर ऐसे अर्थ किये गये हैं जिनका संस्कृतभाष्य में नाममात्र भी संकेत नहीं है, और अर्थों की इसी न्यूनाधिकता के कारण अनेक स्थानों पर सिद्धान्तों में भी भ्रम पैदा होने की सम्भावना हो गई है। पण्डित लेखराम ने जिन त्रुटियों का संकेत किया था उनमें एक स्थान पर तो मूल संस्कृत में केवल ‘वामदेव’ शब्द था, जिसका अर्थ करते हुए पण्डितों ने ‘वामदेव ऋषि’ लिख दिया, और दूसरी जगह ‘सरस्वती’ शब्द था जिसका अनुवाद करते समय ‘सरस्वती नदी’ किया। अर्थात् पण्डितों ने अपनी चालाकी या मूर्खता के कारण महर्षि के सिद्धान्त पर पानी फेरना चाहा कि मूल वेद में विशिष्ट पुरुषों या जल-स्थल आदि का इतिहास नहीं मिलता। स्थानाभाव के कारण इस लेख में इतना स्थान नहीं है कि वेदभाष्य में से छाँटकर इस प्रकार की अन्य त्रुटियों को प्रस्तुत किया जाय। लेकिन नमूने के लिए हम नीचे ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में पण्डितों के द्वारा बढ़ाए गये कुछ ऐसे अंश प्रस्तुत करते हैं जिनपर विचार करने से हमारे पाठकों को स्पष्ट मालूम हो जायगा कि इन

भद्र पुरुषों ने जनता को स्वामी जी के सिद्धान्तों के बारे में कहाँ तक भ्रम में डाल रखा है—

१. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पृष्ठ १२२ पर यजुर्वेद अध्याय ३१ मन्त्र ४ की व्याख्या करते हुए महर्षि ने 'अनशन' शब्द की व्याख्या में लिखा है—

“द्वितीयमनशनमविद्यमानमशनं भोजनं यस्मिन् इति” जिसका अर्थ है कि “दूसरा अनशन यानी अभाव है, अनशन यानी भोजन का जिसमें” जिसका साफ मतलब यह निकला जो भोजन की चेष्टा नहीं करता। उदाहरण के लिए महर्षि ने 'पृथिवी' आदि कर दिया है। लेकिन हमारे पण्डितों ने यों अनर्थ किया है—

“और दूसरा—अनशन अर्थात् जो जड़ और भोजन के लिए बना है।” पाठक ध्यान दें कि एक शब्द के परिवर्तन से अर्थ कैसा उलटा हो गया ! महर्षि का तात्पर्य स्पष्ट है कि भोजन की चेष्टा न करनेवाले जड़ और जीव-सम्बन्ध से रहित उन वस्तुओं को बताया है जो कि भोजन के लिए बनी हैं, अर्थात् फल, वनस्पति आदि। परन्तु पृथिवी का दृष्टान्त ही बतला रहा है कि यहाँ भोजन के योग्य पदार्थ से अभिप्राय नहीं है क्योंकि पृथिवी को आज तक किसी मनुष्य ने भोजन की जगह प्रयुक्त नहीं किया।

प्रिय पाठक ! यही मन्त्र है जिसको वनस्पति में जीव होने के समर्थन में अनेक आर्य पुरुष प्रस्तुत करते हैं और आपने यह भी देखा है कि यह दावा केवल पण्डितों के हिन्दी-अनुवाद पर निर्भर है, अन्यथा भाष्यकार की संस्कृत में इस विचार का कहीं पता भी नहीं मिलता।

२. भूमिका के पृष्ठ २०५ पर भाष्यकार ने पुनर्जन्म के लिए यजुर्वेद के अध्याय १६ मन्त्र ४७ का प्रमाण दिया है और उसकी पुष्टि में निरुक्त आदि के प्रमाण दिये हैं। इस मन्त्र के संस्कृत-भाष्य में दो प्रकार के जीवात्माओं का उल्लेख है—

“अस्मिन्संसारे पापपुण्यफलभोगाय द्वौ मार्गौस्तः। एकः पितॄणां ज्ञानिनां देवानां विदुषां च द्वितीयो विद्याविज्ञानरहितानां मनुष्याणाम्।”

अर्थ—“इस संसार में पाप और पुण्य का फल भोगने के लिए दो रास्ते हैं— एक पितरों, ज्ञानियों, देवों और विद्वानों के लिए, दूसरा विद्याविज्ञानरहित मनुष्यों का।” लेकिन पण्डित महाशयों ने यहाँ बहुत-सी मनघड़न्त बातें लिखकर ऐसे-ऐसे विचार प्रदर्शित किये हैं जिनका कि मूल भाष्य तथा वेदमन्त्र में नामोनिशान भी नहीं है। पण्डित महाशय इस भाष्य का हिन्दी में यों अर्थ करते हैं—“इस संसार में हम दो प्रकार के मनुष्यों को सुनते हैं, एक मनुष्य-शरीर का धारण करना और दूसरा नीच गति से पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि का होना। इनमें मनुष्य-शरीर के तीन भेद हैं—एक पितृ अर्थात् ज्ञानी होना, दूसरा देव अर्थात् सब विद्याओं को पढ़कर विद्वान् होना, तीसरा मर्त्य आदि साधारण मनुष्य-

शरीर का धारण करना आदि ।”

अब विचार का स्थल है कि पशु से लेकर वृक्ष तक एक भी शब्द संस्कृत-भाष्य में नहीं आया । इसलिए जो लोग यहाँ से वृक्षों में जीव का होना और यजुर्वेद अध्याय ३१ मन्त्र ४ की व्याख्या के हिन्दी-अनुवाद से वृक्षों में जीव का अभाव देखकर महर्षि के कथन का परस्पर विरोध समझकर विस्मित हुआ करते हैं उनकी आत्मिक पीड़ा का पाप किसके माथे पड़ेगा ? मनुष्य और नीच गति के भेद का संस्कृत-भाष्य में पता भी नहीं है । फिर ‘पितृ’ और ‘देव’ जो दोनों शब्द एकार्थवाची संस्कृत में बताए गए हैं इनमें मनमाना भेद बताना वेदार्थ को ही उल्टा कर देता है क्योंकि वेदमन्त्र में ‘द्वौ’ शब्द स्पष्ट पड़ा हुआ है ।

आर्य वन्धुगण ! विचारो तो सही कि ऐसे अनर्थों ने कितने जिज्ञासु पुरुषों को सत्पथ के ग्रहण करने से न रोका होगा ?

३. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पृष्ठ १४६ पर नित्य होम के मन्त्रों की व्याख्या करते हुए महर्षि ने ज्वरी पंक्ति में लिखा है—

“अग्निज्योतिरित्यनेनैव तृतीयाहुतिर्देया तदर्थश्च पूर्ववत् ।”

अर्थ—‘अग्निज्योति’ आदि इस मन्त्र से फिर तीसरी आहुति देना । इसका अर्थ उपर्युक्त । परन्तु इसका अर्थ पण्डितों ने इस प्रकार किया है—“तीसरी मौन होके प्रथम मन्त्र से करनी ।” ध्यान रहे कि प्रथम मन्त्र यह है—“अग्निज्योति-ज्योतिरग्निः स्वाहा ।” ज्ञात होता है कि ‘पंचमहायज्ञविधि’ लिखते समय भी उस समय के लेखकों ने ‘भूमिका’ के इस अनुवाद से धोखा खाकर ज्यों-की-त्यों मक्खी पर मक्खी मारी है । पण्डितों की इस भूल का परिणाम यह है कि प्रायः आर्य पुरुष इस मन्त्र से मौन होकर आहुति देने का कारण अपने पण्डितों से पूछते रहे हैं और समुचित उत्तर न पाकर भ्रम और संशय में पड़ते हैं ।

इस भूल का मूल कारण ज्ञात करने के लिए कुछ और विचार करने की आवश्यकता है । वस्तुतः नित्य हवन के कुल मन्त्र यजुर्वेद अध्याय ३, मन्त्र ६-१० में पाये जाते हैं जिनमें से प्रातः और सायं होम के अन्तिम दो मन्त्र जो ‘सज्जूदेवेन’ से प्रारम्भ होते हैं—मन्त्र १० है और अवशिष्ट मन्त्रों का क्रम मन्त्र ६ में इस प्रकार है कि पहले सायं के हवन का पहला मन्त्र, इसके बाद प्रातःकाल के हवन का पहला मन्त्र, इसी तरह दूसरा । फिर प्रातः का तीसरा मन्त्र और उसपर मन्त्र ६ की समाप्ति होती है । इस प्रकार सायंकाल का एक आहुति-मन्त्र कम रहता है, उसकी पूर्ति के लिए ऋषि ने लिख दिया है कि “अग्निज्योतिरिति मन्त्र मनसोच्चार्य तृतीयाहुतिर्देया ।”

अर्थ—‘अग्निज्योति’ इस मन्त्र का मन से उच्चारण कर तीसरी आहुति देनी । मन से उच्चारण करने का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि अपनी ओर से पहले मन्त्र का उच्चारण करके तीसरी आहुति देनी चाहिए । परन्तु योग्य पण्डितों ने ‘मन’ का

अर्थ 'मौन' करके महर्षि के संस्कृत-भाष्य में कमी समझकर अपनी सम्मति तो दी और यह न समझे कि मौन होकर भी कहीं शब्दोच्चारण हुआ करते हैं ?

प्रिय पाठक ! कहीं तक इन त्रुटियों का उल्लेख करते जायें ! न तो इस लेख में ही इतना स्थान है और न हमें इतना समय मिलता है कि हम एक पूरा अशुद्धि-पत्र अथवा भ्रान्ति-पत्र तैयार करके आपके समक्ष पेश कर सकें । परन्तु पण्डितों की खतरनाक कार्यवाही का किसी सीमा तक नक्शा खींचकर आपको दिखा दिया है । अब हम परोपकारिणी सभा के धार्मिक प्रधान महाशय से निवेदन करते हैं कि जिस दायित्व को उन्होंने बड़े साहस से अपने ऊपर लेने का गत वर्ष से प्रण किया है, उसे निभाने के लिए बड़ी सावधानी से उद्यत हो जावें । अन्त में हम इस महत्त्वपूर्ण त्रुटि को दूर करने का जो एक ही उपाय है उसे प्रस्तुत करते हैं । हमारी सम्मति में सर्वप्रथम परोपकारिणी सभा का यह कर्त्तव्य है कि आर्यसमाज के दो-तीन विद्वानों को 'भूमिका' के हिन्दी-अनुवाद को शोधने के काम पर नियुक्त करें जो एक-एक शब्द की जाँच कर केवल महर्षि के संस्कृत-भाष्य का शब्दार्थ कर दें और इसके बाद कुल छपे हुए वेदभाष्य के अर्थ शोधित किये जावें और जब पूर्ण अशुद्धिपत्र तैयार हो जावे तो प्रत्येक पुस्तक का अशुद्धि-पत्र कारण-सहित पृथक् छपा दिया जावे, जो कि पुस्तक के साथ परिशिष्ट के रूप में प्रत्येक ग्राहक को दिया जावे, और भविष्य के लिए एक विशेष उपसमिति बना दें जो कि छपने से पूर्व संस्कृत-भाष्य के हिन्दी-अर्थों की जाँच कर लिया करे । न केवल यही, बल्कि भविष्य के लिए संस्कृत-भाष्य के छापने में भी अधिक सावधानी बर्ती जावे । यहाँ पर प्रश्न उत्पन्न होगा कि अशुद्धि-पत्र छपवाने में बहुत-सा धन खर्च होगा जिसमें वैदिक यन्त्रालय को आर्थिक क्षति पहुँचेगी । लेकिन स्मरण रहे कि वैदिक यन्त्रालय की स्थापना रूपया कमाने के लिए नहीं हुई थी, अपितु सच्चे वैदिक सिद्धान्तों को प्रसारित करने के लिए इसे महर्षि दयानन्द ने स्थापित किया था । यदि यह यन्त्रालय अन्धों को आँखें देने की अपेक्षा उन्हें सन्देहरूपी अन्धकार में ले-जाने का कारण बने तो उसके अस्तित्व से सर्वसाधारण को क्या लाभ हो सकता है ? हम इस प्रसंग को इस आशय के साथ समाप्त करते हैं कि परोपकारिणी सभा के सभासद् अपने कर्त्तव्य को समझेंगे और उसके पालन करने में सच्चा पुरुषार्थ दिखलाएँगे ।

उपदेश मंजरी (उर्दू अनुवाद)

प्रथम संस्करण की भूमिका

वर्तमान युग के आर्यसमाज के संस्थापक ने पूना नगर में १५ व्याख्यान एक ही क्रम में उसी प्रकार दिये थे, जिस प्रकार वे प्रत्येक स्थान पर वैदिक धर्म का उपदेश करते हैं। अन्य स्थानों की रीति से भिन्न पूना के किसी योग्य सज्जन ने इन १५ व्याख्यानों को लिपिवद्ध कर किसी पत्र में छपाया दिया था।^१ स्वामी दयानन्द ने अपने व्याख्यान संस्कृत में दिये थे, किन्तु इन्हें प्रकाशित करनेवाले ने इन व्याख्यानों को मराठी भाषा में छपाया था। कुछ समय पहले आर्यसमाज-जोधपुर के भूतपूर्व उपदेशक पण्डित गणेश रामचन्द्र ने इस गुजराती (मराठी) विवरण को देवनागरी (हिन्दी) में अनूदित किया और उनमें से नौ व्याख्यानों को संशोधित कर बाबू रामविलास शारदा मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान ने उक्त सभा की ओर से प्रकाशित भी किया था।^२ इसी समय में (सम्भवतः पण्डित लेखराम आर्यमुसाफिर के अनुरोध से) आर्यसमाज के दो पुरुषार्थी सभासदों अर्थात् ठाकुर गोविन्दसिंह मनसबदार और पण्डित श्रीनिवासराम^३ नायब मुसाहिब धाराशिव (हैदराबाद राज्य) ने पण्डित भगवतीप्रसाद शुक्ल (निवासी कलम्ब) से इन व्याख्यानों का अनुवाद करवाया।^४ मैंने इस उर्दू-अनुवाद में, जो इस समय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ, नौ व्याख्यानों तक इन दोनों देवनागरी (हिन्दी) अनुवादों से सहायता ली है, और अन्तिम छः व्याख्यानों के लिए मुझे केवल शुक्ल जी के अनुवाद पर ही निर्भर रहना पड़ा है।

इन व्याख्यानों का पाठ ही यह स्पष्ट करता है कि इनकी वर्तमान स्थिति में

१. पूना के हाईस्कूल के तत्कालीन सहायक मुख्याध्यापक पण्डित गणेश जनार्दन आगाशे ने इन व्याख्यानों को मराठी में लिपिवद्ध किया था।
२. ये नौ व्याख्यान १९५० वि० में अजमेर से प्रकाशित हुए थे।
३. पण्डित श्रीनिवासराम पण्डित नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ के पिता तथा पण्डित लेखराम के मित्र थे।
४. यह कहना कठिन है कि पण्डित भगवतीप्रसाद शुक्लकृत अनुवाद प्रकाशित हुआ या नहीं, किन्तु यह सत्य है कि महात्मा मुन्शीराम ने उसे देखा अवश्य था।

हम इन्हें स्वामी जी द्वारा प्रयुक्त भाषा या शब्द नहीं कह सकते, क्योंकि स्वामी जी के मूल व्याख्यान तो संस्कृत में हुए थे।^१ उनके संक्षिप्त नोट ले लिये गये, पुनः उनका मराठी में अनुवाद कर दिया गया, पुनः उन्हें देवनागरी में अनूदित कर दिया गया और उसी अनुवाद के अनुवाद का अनुवाद^२ मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ। यही कारण है कि अजमेर से प्रकाशित तथा पण्डित भगवतीप्रसादकृत अनुवाद की बहुत-सी बातें समझ में नहीं आतीं। मैंने प्रयत्न किया है कि इस प्रकार की कोई त्रुटि अवशिष्ट न रहे, इसलिए जिस स्थान पर शब्द-परिवर्तन से अर्थ सरलता से प्रकट हो सकता था, उस स्थान पर निस्संकोच परिवर्तन कर दिया है और अन्य स्थानों पर अर्थ को अधिक स्पष्ट करने के लिए कोष्ठक में अपनी ओर से स्पष्टीकरण किया है, कुछ अन्य स्थानों पर पादटिप्पणी देकर अर्थ को स्पष्टतर किया है। इन व्याख्यानों को प्रकाशित करने का कारण स्पष्ट करना इस स्थान पर आवश्यक है।

अनुवाद करते समय कई भाइयों ने मुझसे पूछा था कि जब सत्यार्थप्रकाश जैसी पूर्ण तथा स्वामी जी के सिद्धान्तों को स्पष्ट करनेवाली पुस्तक मौजूद है तो फिर इन व्याख्यानों को प्रकाशित करने की क्या आवश्यकता है? मेरा उत्तर यह है कि इन व्याख्यानों में कतिपय तथ्य ऐसे वर्णित हुए हैं जो सत्यार्थप्रकाश के अनेक तथ्यों पर अधिक प्रकाश डालेंगे और आर्यसमाज के सिद्धान्तों को अधिक स्पष्ट करेंगे। एक ही उदाहरण से मेरे कथन की पुष्टि हो जायगी। महर्षि पतंजलि के योगदर्शन के विभूतिपाद को समझने में बहुधा आर्य पुरुषों को कठिनाई होती है। अणिमा, गरिमा आदि सिद्धियों का शरीर के साथ सम्बन्ध कुछ कठिन-सा मालूम होता है। लेकिन स्वामी जी ने एक व्याख्यान में इस कठिनाई को बिल्कुल दूर कर दिया है।^३ उन्होंने इस प्रसंग में वहाँ लिखा है कि चूँकि योगाभ्यास आत्मा का विषय है, इसलिए सिद्धियाँ शरीर को नहीं, अपितु आत्मा को प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार और भी बहुत-से स्थानों पर नई-नई बातें भी इन व्याख्यानों से ज्ञात होती हैं। मेरे विचार से ये व्याख्यान सत्यार्थप्रकाश के पूरक का काम

१. स्वामी दयानन्द के पूना में दिये गये सभी व्याख्यान संस्कृत में नहीं हुए थे। जब स्वामी जी ने हिन्दी में व्याख्यान दिये, तो कुछ पण्डितों ने व्यंग्यपूर्वक कहा कि स्वामी जी संस्कृत में वक्तृता करने में असमर्थ हैं। उनकी इस धारणा का निराकरण करने के लिए स्वामी जी ने 'पुनर्जन्म'-विषयक वक्तृता संस्कृत में ही दी। इसे सुनकर उपस्थित श्रोतृवर्ग विस्मय-विमुग्ध रह गया था।

२. अर्थात् मराठी से हिन्दी में अनूदित व्याख्यानों का उर्दू-अनुवाद।

३. द्रष्टव्य—'उपदेश मंजरी' का ११वाँ व्याख्यान।

देगे और कुछ परिस्थितियों में एक श्रेष्ठ दस्तावेज से कम सिद्ध न होंगे। यदि इसी प्रकार स्वामी जी के प्रत्येक स्थान पर दिये गये भाषणों का पाठ हमारे लिए सुरक्षित रहता तो अनेक शंकाएँ जो अक्सर आर्य भाइयों को सिद्धान्तों के समझने में पैदा होती हैं, वे स्पष्ट हो जातीं।

कार्य का बोझ मुझपर बहुत अधिक है, इसलिए मुझे इस अनुवाद में शीघ्रता से काम लेना पड़ा और मैं अनुवाद को दुबारा नहीं देख सका हूँ। शायद इसी-लिए बहुत-सी त्रुटियाँ इसमें रह गई होंगी। अपने आर्य भाइयों से प्रार्थना है कि यदि उन्हें इसमें कोई त्रुटि दिखाई दे, तो वे शीघ्र मेरे पास लिखकर भेज दें। दूसरे संस्करण में इन्हें ठीक कर दिया जायगा। वेद-शास्त्रों का सम्मान करनेवाले प्रिय भाइयो, इस तुच्छ भेंट को स्वीकार करो और एक पूर्वज महानुभाव के व्याख्यानों को, वे चाहे किसी भी तुच्छ माध्यम से तुम तक पहुँचते हैं, हार्दिक रूप से सुनो। ओम् शान्ति, शान्ति, शान्ति !

जालन्धर नगर

मुंशीराम जिज्ञासु

१४ जनवरी, १८८८ ई०

द्वितीय संस्करण की भूमिका

जैसी कि आशा थी प्रथम संस्करण की १०५० प्रतियाँ बिक चुकी हैं और मुझे अवसर मिला है कि प्रथम संस्करण में जो त्रुटियाँ, कार्याधिक्य से रह गई थीं, उन्हें दूर कर दूँ। अधिकांश में तो मुद्रण की त्रुटियाँ थीं, जिन्हें सरलता से सुधार दिया गया है, किन्तु कुछ स्थानों पर अनुवाद में उपयुक्त शब्द प्रयुक्त नहीं हुए थे, उनके स्थान पर उचित शब्द प्रयुक्त कर अनुवाद के स्तर को उन्नत कर दिया गया है। अनेक स्थानों पर जहाँ वेद-मन्त्रों का अर्थ मूल में नहीं था और प्रथम संस्करण में भी शीघ्रतावश रह गया था, उसे अब दे दिया गया है। शास्त्रों के प्रमाण देते समय अनेक स्थानों में अध्याय आदि का संकेत नहीं दिया गया था, वह भी यथासम्भव दे दिया गया है और अनेक विशिष्ट टिप्पणियाँ देकर मैंने चेष्टा की है कि प्रत्येक उर्दू पाठक की समझ में इन व्याख्यानों का अभिप्राय आ सके।

जालन्धर नगर

मुंशीराम जिज्ञासु

६ मई १९०१ ई०

पण्डित लेखराम लिखित तथा पण्डित आत्माराम श्रमृतसरी द्वारा सम्पादित
महर्षि दयानन्द के जीवन-चरित(उर्दू) की श्री मुंशीराम जिज्ञासु लिखित भूमिका—

ओ३म्

भूमिका

तैयारी तथा सम्पादन का संक्षिप्त इतिहास

अधूरा जीवन-चरित्र—स्वामी दयानन्द का जीवन-वृत्तांत जनता के सामने रखते हुए आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से उसकी तैयारी का संक्षिप्त इतिहास पाठकों की सेवा में रखना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रकटतया जिस अधूरे रूप में यह जीवनचरित्र जनता के सामने रक्खा जा रहा है, उसे न तो 'बायोग्राफी' (व्यक्तिगत जीवनवृत्त—Biography) ही कह सकते हैं, क्योंकि उसमें लेखक अपने विचारों और क्रम के अनुसार घटनाओं को अपनी भाषा में लिखकर अपने निष्कर्ष निकाला करता है, और न ही इसे केवल आर्यसमाज का इतिहास ही कहा जा सकता है; क्योंकि अब तक यद्यपि आर्यसमाज का इतिहास केवल स्वामी दयानन्द का जीवन ही है, तथापि इस पुस्तक में उस इतिहास की शाखाओं ने भी पूर्णरूपसे विकास नहीं पाया है और स्वामी दयानन्द के जीवन का बहुत-सा भाग उसमें नहीं आया है। इसलिए इन दोनों के अतिरिक्त कि इस संग्रह का कोई नवीन नाम रखे बिना जनता को इसकी वास्तविकता का ज्ञान नहीं हो सकता। परन्तु, इससे पूर्व कि इस पुस्तक का नामकरण संस्कार किया जाय, यह उचित प्रतीत होता है कि इसके वर्तमान रूप में आने की कहानी आपको सुनाई जाय।

जीवन-चरित्र की प्रबल मांग—स्वामी दयानन्द ने जिस दिन इस अनित्य भौतिक शरीर को त्यागकर ब्रह्मलोक को प्रयाण किया, उसी दिन से लोग उनके जीवन का सम्पूर्ण इतिहास जानने की इच्छा प्रकट कर रहे थे। यह इच्छा केवल आर्यसमाजस्थ पुरुषों तक ही सीमित न थी प्रत्युत सर्वसाधारण—हिन्दू, मुसलमान और ईसाई—जनता की ओर से स्वामी दयानन्द के जीवन-चरित्र से परिचय प्राप्त करने की आकांक्षा पायी जाती थी। परन्तु इस आकांक्षा ने लगभग पाँच वर्ष तक कोई क्रियात्मक रूप धारण न किया। केवल समाचारपत्रों के द्वारा कभी-कभी कोई आवाज सुनाई देती थी जो कि सांसारिक भगड़ों के नक्कारखाने

(बाद्यालय) में तूती की आवाज के सदृश स्वयं दबकर रह जाती थी। अन्ततः क्रियात्मक आन्दोलन एक ऐसी जगह से प्रारम्भ हुआ जो पंजाब की आर्यसमाजों के प्रारम्भिक इतिहास में एक स्मरणीय शक्ति थी। मेरा अभिप्राय मुल्तान आर्य-समाज से है। दयानन्द ऍंग्लो वैदिक कॉलेज का आन्दोलन चाहे कहीं से प्रारम्भ हुआ, परन्तु क्या इस संस्था के तत्क्षण खोलने के आन्दोलन में लाला ज्वालासहाय जी रईस मियानी तथा सभासद् आर्यसमाज मुल्तान के आठ हजार रुपये के दान ने विजली का काम नहीं किया था ? फिर स्वामी दयानन्द के पश्चात् जब कि वेदों का पठन-पाठन समाप्त-सा होता दिखाई देता था, क्या मुल्तान ने हमें विश्वासी और विद्वान् गुरुदत्त नहीं दिया जिसने कि सच्चा विद्यार्थी बनकर वेद और परमात्मा में स्वयं पूर्ण श्रद्धा का उदाहरण उपस्थित करके सैकड़ों आत्माओं को टेढ़े और दुर्गम मार्गों से बचाया ? उसी मुल्तान आर्यसमाज ने अपनी १२ अप्रैल सन् १८८८ की अन्तरंग सभा के अधिवेशन में सम्मति दी कि स्वामी दयानन्द के जीवन की घटनाएँ एकत्रित करने के लिए पण्डित लेखराम को नियुक्त किया जाय।

घटनाओं के अन्वेषण के लिए पं० लेखराम योग्यतम व्यक्ति—पण्डित लेखराम आर्यपथिक उस समय 'आर्य गजट' फिरोजपुर के सम्पादक थे। आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब ने अपनी अन्तरंग सभा के अधिवेशन में, जो १ जुलाई सन् १८८८ को हुआ था, पण्डित लेखराम आर्यपथिक को इस कार्य के लिए नियुक्त करके मानो उन्हें सचमुच आर्यपथिक के पद का अधिकारी बना दिया। पंजाब की आर्य-समाजों से पन्द्रह सौ रुपयों के लिए अपील की गई थी जो थोड़े समय में ही एकत्रित हो गया। अतः नवम्बर १८८८ से पण्डित लेखराम जी ने नियमपूर्वक कार्य करना प्रारम्भ कर दिया।

देरी का कारण अन्वेषक की विशेष परिस्थिति—इसमें सन्देह नहीं कि पण्डित लेखराम जैसा अन्वेषक-स्वभाव आर्य ही इस कार्य के लिए उपयुक्त था, परन्तु मेरे विचार में यह पुस्तक पाठकों के हाथ में और शीघ्र पहुँचती और कदाचित् घटनाओं की दृष्टि से और अधिक पूर्ण होती यदि घटनाओं को एकत्रित करने का कार्य किसी ऐसे अन्वेषक को दिया गया होता जिसपर उपदेश देने का उत्तरदायित्व न होता। कौन नहीं जानता कि पण्डित लेखराम को वैदिक (आर्य) धर्म की उन्नति का विचार कभी भी एक स्थान पर बैठने नहीं देता था और यदि उन्होंने कहीं सुन लिया कि अमुक स्थान पर मुहम्मदी अथवा ईसाई मतों के उपदेशक विशेष सफलता प्राप्त कर रहे हैं तो फिर बड़े-से-बड़े और आवश्यक-से-आवश्यक कार्य को छोड़कर भी उस स्थान पर पहुँचना वह अपना कर्तव्य समझा करते थे। यही कारण था कि प्रायः विशेष वृत्तों की खोज में क्रमशः चलते हुए भी धार्मिक शास्त्रार्थों की सूचना प्राप्त होते ही पण्डित लेखराम कई आवश्यक स्थानों को

बीच में छोड़कर ही लौट आया करते थे। परन्तु आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब भी विवश थी। स्वामी दयानन्द का जीवन कोई साधारण जीवन न था जिसका वृत्तांत केवल एक या दो स्थानों पर जाने से विदित हो जाता। इस जीवन का वृत्तांत जानने के लिए एक ऐसे अन्वेषी स्वभाव के व्यक्ति की आवश्यकता थी जो जहाँ एक ओर निरन्तर यात्रा करता रहता तो दूसरी ओर विदित हुए वृत्तांत से ठीक निष्कर्ष निकालने की योग्यता रखता। ऐसा व्यक्ति पण्डित लेखराम के अतिरिक्त उस समय दूसरा दिखाई नहीं देता था। इसी कारण उन्हीं से काम लेना उचित समझा गया और जब घटनाओं के उस बहुमूल्य और प्रमाणित संग्रह को देखा जाता है, जो वह इकट्ठा कर गये हैं तो यही कहना पड़ता है कि निरन्तर प्रचार-कार्य में संलग्न रहने और अपनी बड़ी-बड़ी पुस्तकों के संशोधन और पूर्ति में व्यस्त रहने पर भी जो मसाला पण्डित लेखराम ने इकट्ठा किया है, वह कदाचित् ही कोई दूसरा व्यक्ति उस समय एकत्रित कर सकता। परन्तु फिर भी हम उन त्रुटियों की उपेक्षा नहीं कर सकते जो कि इस आवश्यक खोज के मार्ग में विशेष बाधाएँ पड़ने के कारण प्रकट हुई हैं। यही कारण है कि बहुत-से स्थानों के वृत्तांत पण्डित लेखराम जी ने अन्य स्थानों के निवासियों द्वारा प्राप्त करके लिखे हैं और उस स्थान-विशेष पर कई बार जाने पर भी वह उस स्थान पर बैठकर खोज न कर सके।

जीवनचरित्र की खोज में ये जो बाधाएँ पड़ती रहीं, इनको दूर करने की आवश्यकता आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब समय-समय पर अनुभव करती रही और इसीलिए विशेष नियम निश्चित करके पण्डित लेखराम जी की सेवा में भेजे गये, परन्तु पण्डित लेखराम जी के धार्मिक उत्साह को शान्त करने के लिए कोई भी नियम सफल नहीं हो सकता था। उनको बुलाने के लिए एक आर्यसमाज का यह सूचना दे देना ही पर्याप्त था कि एक व्यक्ति मुसलमान होने वाला है अथवा किसी मुहम्मदी उपदेशक या मौलवी से शास्त्रार्थ की संभावना है। इसपर यदि आर्य-प्रतिनिधि सभा की ओर से आक्षेप होता तो पण्डित जी का इतना उत्तर ही सभा को मौन करने के लिए पर्याप्त रहता था कि वह उन दिनों का—जो ऐसे शास्त्रार्थों में लगे हैं—वेतन न लेंगे। सन् १८६२ के अन्त तक पण्डित जी ने बहुत-कुछ कार्य कर लिया था, इसलिए उनको एकत्रित वृत्तांत को उचित क्रम देने के लिए बुला लिया गया। कुछ समय तक पण्डित जी मेरे पास रहकर समस्त वृत्तांत को नये सिरे से शुद्ध करके लिखते रहे, परन्तु आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब को उस समय उपदेशकों की अत्यन्त आवश्यकता थी। धर्म की प्यास लोगों में बहुत अधिक भड़क उठी थी और प्रत्येक स्थान पर पण्डित लेखराम के धार्मिक ज्ञान से लाभ उठाने की इच्छा जाग उठी थी। इसलिए विवश होकर उन्हें कुछ समय के लिए कार्य-बन्द करना पड़ा। इसके पश्चात् जीवनचरित्र-सम्बन्धी सारे कागज मुझको सौंपे

दिये गये, परन्तु पण्डित लेखराम जी के लेख को पढ़ना बड़ा कठिन काम था। मेरी रिपोर्ट पर आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब ने समस्त कागज राय ठाकुरदत्त जी को सौंप दिये, परन्तु जब उन्होंने भी कागजों को अधूरा बताया तो फिर पण्डित लेखराम जी को ही प्रकाशन का कार्य आरम्भ करने के लिए लाहौर में ठहराया गया।

पं० लेखराम का बलिदान और कार्य में रुकावट—पण्डित लेखराम जी ने यद्यपि लाहौर में रहकर अपने सामने लगभग ६०० पृष्ठों का विषय प्रेस के कार्तियों को लिखवा लिया था तथापि यह लेख अभी तक अपूर्ण था क्योंकि घटनाओं का बहुत-सा अंश केवल पण्डित जी के मस्तिष्क में ही था जो कि कापियाँ संशोधन करते समय उन्होंने पुस्तक में सम्मिलित करना था। कुछ कागज इस प्रकार के निकले हैं जिनसे विदित होता है कि अभी तक विशेष-विशेष नोट लिखने का कार्य पण्डित जी ने अवशिष्ट रख छोड़ा था। ये सब कठिनाइयाँ ही कुछ थोड़ी न थीं कि ६ मार्च सन् १८९७ की शाम को स्वामी दयानन्द का जीवन-चरित्र लिखते-लिखते पण्डित लेखराम आर्यपथिक ने अपने रक्त से उन्नीसवीं शताब्दी के ऋषि के मिशन की पूर्ति करने के लिए अपना बलिदान दे दिया। आर्यसमाज के संस्थापक का जीवनचरित्र पूर्ण करने के स्थान पर वह अपने जीवनचरित्र लिखने का कार्य आर्यसमाज के लिए छोड़ गये।

ला० आत्माराम ने कार्य सँभाला—इस खींचतान की दशा में आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब ने बड़ी गम्भीरता और धैर्य से काम लिया। २१ मार्च सन् १८९७ की अन्तरंग सभा के प्रस्ताव संख्या ७ द्वारा स्वामी जी के जीवन-वृत्तांत को शुद्ध करके जनता के समक्ष रखने का कार्य लाला आत्माराम जी, भूतपूर्व मंत्री आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब को सौंपा गया।

योग्यता और ज्ञान दोनों ही की दृष्टि से दूसरा कोई भी आर्यसमाजस्थ पुरुष उस समय ऐसा विद्यमान न था जो कि अपना पूरा समय देकर इस कठिन भार को उठाने का साहस कर सकता। चूँकि प्रूफ देखने और भाषा के शुद्ध करने में प्रायः मेरे मित्र लाला आत्माराम जी मुझसे सम्मति लेते रहे हैं, इसलिए मैं उन कठिनाइयों का अनुमान लगा सकता हूँ जिनका उन्हें सामना करना पड़ा है, परन्तु जिस सन्तोष और वैर्य के साथ लाला आत्माराम जी ने इन समस्त कठिनाइयों का सामना किया है उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ क्योंकि अन्ततः उन्होंने प्रत्येक रुकावट को दूर करके वर्तमान काल के लिए ऋषि का जीवन-वृत्तांत सर्वसाधारण के अध्ययनार्थ तैयार कर दिया है।

उनके ग्रन्थ सहयोगी—परन्तु पूर्व इसके कि मैं लाला आत्मारामजी के महान् परिश्रम की प्रशंसा करूँ, यह उचित प्रतीत होता है कि उन धार्मिक नवयुवकों का भी आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से धन्यवाद करूँ जिन्होंने कि लाला आत्माराम जी की इस महान् कार्य में सहायता करके पुस्तक के शीघ्र प्रकाशित

होने में सहायता दी है। लाला आत्माराम जी चूँकि विशेष कारणों से अपना निवास लाहौर में नहीं रख सकते थे, इसलिए कापी और प्रूफ देखने के कार्य में बड़ी कठिनाई होती यदि इस अवसर पर कोई लाहौर-निवासी आर्य उनकी सहायता न करता। ऐसी आवश्यकता के काल में हमारे पुरुषार्थी आर्य भाई लाला सीताराम जी लकड़ी-विक्रेता ने यह साधारण किन्तु कठिन कार्य अपने ऊपर लिया। यद्यपि लाला श्यामसुन्दर अमृतसरी, लाला लब्भूराम और कुछ अन्य नवयुवक भी इस कार्य में लाला सीताराम की सहायता करते रहे जिसके लिए वे सभा तथा जनता के धन्यवाद के पात्र हैं; तथापि चूँकि अन्त में वर्णित समस्त नवयुवक भाई केवल लाला सीताराम की प्रेरणा से कार्य करते रहे, इसलिए मैं लाला सीताराम को उनके धार्मिक उत्साह के लिए धन्यवाद देता हूँ और परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि इन सब भाइयों की रुचि दिन-प्रतिदिन धर्म में बढ़ती रहे।

लाला आत्माराम जी का योगदान—लाला आत्माराम जी ने केवल पुस्तक के उस भाग को ही शुद्ध नहीं किया जिसको पण्डित लेखराम जी नियमित रूप दे चुके थे प्रत्युत उन्होंने बहुत-सा आवश्यक और लाभदायक पुस्तक का भाग स्वयं लिखा। द्वितीय अध्याय तक के प्रत्येक विषय का उत्तरदायित्व स्वर्गीय पण्डित लेखराम जी पर है, यद्यपि इस भाग में भी बहुत-कुछ उद्यम पण्डित आत्माराम जी को करना पड़ा है और उन्होंने अपने परिश्रम से भाषा में बहुत-कुछ शुद्धि की है। तथापि इस समस्त भाग को नियमित रूप पण्डित लेखराम जी ने दिया था, और चूँकि स्वर्गवासी पण्डित जी ने साधारणतया घटनाएँ उन्हीं सज्जनों के शब्दों में लिखी हैं जिनसे कि उनको विदित हुई थीं, इसलिए यह भाग कोमलस्वभाव व्यक्तियों को साधारणतया अरुचिकर प्रतीत होगा, परन्तु सत्यप्रिय व्यक्तियों को इस सम्मिश्रणहीनता और सरलता में एक नवीन आनन्द प्राप्त होगा। लेखक की योग्यता का प्रकाश इस पुस्तक के लिखने का प्रयोजन नहीं है, प्रत्युत सत्य-सत्य वृत्तों बिना किसी प्रकार की काट-छाँट के सर्वसाधारण जनता तक पहुँचाना अभीष्ट है, इसलिए भाषा-सौन्दर्य की प्रेरणा से बचने में पण्डित लेखराम जी ने जनता का बड़ा उपकार किया है क्योंकि उन्होंने प्रत्येक समझदार मनुष्य को एकत्रित घटनाओं से अपने लिए स्वतन्त्र निष्कर्ष निकालने का अवसर प्रदान किया है। इस पुस्तक के तृतीय भाग अध्याय प्रथम में स्वामी दयानन्द जी के गुरु(ऋषि-वर विरजानन्द सरस्वती) का संक्षिप्त जीवन-चरित्र यद्यपि लाला आत्माराम जी ने अपनी भाषा में लिखा है, तथापि उसका मूल उन नोटों पर है जो कि पण्डित लेखराम जी उस सम्बन्ध में छोड़ गये हैं। इससे आगे इस भाग के द्वितीय अध्याय से समाप्ति पर्यन्त सारा विषय लाला आत्माराम जी की लेखनी से निकला हुआ है।

लाला आत्माराम द्वारा लिखित अंश पर भूमिका-लेखक का मौन—इस अंतिम

भाग के विषय में मैं अपनी कोई सम्मति प्रकट करना नहीं चाहता क्योंकि भिन्न-भिन्न स्वभाव इससे भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रभाव ग्रहण करेंगे। हाँ, इतना लिखना आवश्यक समझता हूँ कि वह भाग प्रत्येक पढ़नेवाले के लिए पूरे विचार और पूरे ध्यान का विषय है, क्योंकि मैं उस भाग को भलीभाँति समझ लेना ही इस पुस्तक के पढ़ने का फल समझता हूँ।

घटना-संग्रह की त्रुटियाँ : पाठकों से निवेदन—मैं पहले ही प्रकट कर चुका हूँ कि इस जीवनचरित्र की खोज और इसको नियमित रूप देने में बहुत-सी त्रुटियाँ रह गयी हैं और बहुत-से वृत्तांत विशेष बाधाओं के कारण अब तक जनता के समक्ष नहीं आ सके हैं। उदाहरणार्थ मैं कुछ घटनाएँ प्रकट कर सकता हूँ जिनका सम्बन्ध मेरे साथ है। पण्डित लेखराम जी के कागजों में एक सादा कागज निकला जिसपर केवल इतना लिखा था—“ला० मुंशीराम द्वारा कथित वृत्तांत”। मेरे अतिरिक्त इस समय कौन जान सकता है कि मैंने कौन-सी घटनाएँ पण्डित जी को बतलायी थीं ? इसी प्रकार और बहुत-से सज्जन पुरुषों ने वृत्तांत बतलाये होंगे जो पण्डित जी के हृदय में ही समाप्त हो गये। मेरा अभिप्राय इस लेख से यह नहीं है कि इन त्रुटियों के कारण हमारे सामने स्वामी दयानन्द का सम्पूर्ण जीवन नहीं आता; क्योंकि चाहे कितनी ही सावधानता क्यों न बरती जाय और कितने ही परिश्रम से घटनाएँ क्यों न एकत्रित की जायँ, फिर भी ऐसे महापुरुषों के जीवन के कुछ वृत्तांत कभी भी विदित नहीं होते। मेरा अभिप्राय केवल यह है कि इस पुस्तक के पढ़ने के पश्चात् जिस भद्र पुरुष के ध्यान में कोई ऐसी घटना आये जो इसमें न लिखी हो तो उसका कर्त्तव्य है कि वह सारी घटना को भली प्रकार लिखकर आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के कार्यालय (लाहौर स्थित में) भेज देवे, ताकि दूसरी आवृत्ति में (जिसकी बहुत शीघ्र आवश्यकता पड़ेगी) ज्ञान का भंडार अत्यधिक विस्तृत हो सके।

भूमिका-लेखक स्वामी जी के सम्पर्क में—इस त्रुटि को पूरा करने के लिए मैं पहला पग उठाता हूँ। स्वामी दयानन्द जी महाराज बरेली नगर में १४ अगस्त सन् १८७९ ईसवी को पधारे। उन दिनों मेरे पिता उस स्थान के शहर-कोतवाल थे और कॉलिज में विशूचिका रोग के कारण विशेष छुट्टियाँ होने के कारण मैं अपने पिता के पास बरेली आया हुआ था। उस स्थान पर ही मुझे पहली और अन्तिम बार ऋषिवर के दर्शन प्राप्त हुए। मैं उन दिनों नास्तिक था। काशी नगर की प्रबल मूर्तिपूजा से व्याकुल होकर मतमतान्तरों में कुछ समय आन्दोलन करने के पश्चात् मैंने ईश्वर की सत्ता को ही अस्वीकार कर दिया था। ईश्वरीय ज्ञान का न तो कभी माननेवाला था और न ही इञ्जील और कुरान से मुझे कभी शान्ति प्राप्त हुई। वेद का नाम सुना ही न था। नास्तिक होने के अतिरिक्त मेरा यह दृढ़ मत था कि संस्कृत भाषा में बेहूदापन (मूर्खतापन) के अतिरिक्त बुद्धि की कोई

बात है ही नहीं। यही कारण था कि काशी में शिक्षाप्राप्त्यर्थ पाँच वर्ष तक निवास रखने और पण्डितों के हठ करने पर भी मैंने लघुकौमुदी का कुछ प्रारम्भिक भाग पढ़ने और कुछ संस्कृत काव्य के अध्ययन के अतिरिक्त संस्कृत भाषा की ओर कुछ विशेष ध्यान न दिया था। मेरे पिता पौराणिक धर्म पर पक्का विश्वास रखनेवाले और प्रतिदिन ३ घंटों की पूजा करनेवाले थे। पुलिस-विभाग में वह असाधारण व्यक्ति समझे जाते थे, क्योंकि पूजा और पुलिस का कोई सम्बन्ध न था। स्वामी दयानन्द का पहला भाषण सुनकर आते ही पिता ने मुझसे कहा—‘मुंशीराम ! एक दण्डी संन्यासी आये हैं। बड़े विद्वान् और योगिराज हैं। तुम्हारे संशय उनकी वक्तृता सुनकर निवृत्त हो जायेंगे।’ मेरे पिता को विदित था कि मैं नास्तिक हूँ क्योंकि अपने विचारों को छिपाने की योग्यता मुझमें पहले ही से न थी। उत्तर में मैंने प्रतिज्ञा की कि चलूँगा। परन्तु और कुछ न कहा क्योंकि मन में उसी समय विचार आया कि संस्कृत जाननेवाला साधु बुद्धि की क्या बात करेगा ! दूसरे दिन खजांची लक्ष्मीनारायण की कोठी बेगम बाग में पिता के साथ पहुँचा। दर्शन करते ही कुछ श्रद्धा उत्पन्न हुई और फिर जब पादरी स्कॉट और दो-तीन और अंग्रेजों को सुनने का इच्छुक पाया तो और भी श्रद्धा बढ़ी। अभी दस मिनट भाषण नहीं सुना था कि मन ने कहा—‘यह विचित्र मनुष्य है ! केवल संस्कृत का ज्ञाता होकर ऐसी बुद्धि-अनुकूल बात कहता है कि विद्वान् लोग दंग हो जायें !’ व्याख्यान ईश्वर के निज नाम ‘ओ३म्’ पर था। मैं वह पहले दिन का आत्मिक आनन्द कभी भूल नहीं सकता। इसके पश्चात् मूर्ति-पूजा के खण्डन पर व्याख्यान जब आरम्भ हुए तो जहाँ मेरी श्रद्धा बढ़ने लगी, वहाँ मेरे पिता की श्रद्धा यद्यपि घटी तो नहीं, परन्तु उन्होंने व्याख्यानों में जाना वन्द कर दिया और प्रबन्ध का कार्य अपने आधीन एक सब-इन्स्पेक्टर को सौंप दिया। मेरे पूछने पर पिता ने कहा कि योगिराज दण्डी संन्यासी हैं, यह सब-कुछ कह सकते हैं, परन्तु हम गृहस्थियों को तो इसी पर आचरण करना चाहिए—‘हरिहर निन्दा सुनइ जो काना। होय पाप गोघात समाना ॥’ (तुलसीदासकृत रामायण)

पहले दिन के व्याख्यान के अतिरिक्त मैं अन्य किसी व्याख्यान से अनुपस्थित नहीं रहा; प्रत्युत पादरी स्कॉट के साथ जो शास्त्रार्थ हुए उनमें से पहले दो शास्त्रार्थों में काम करता रहा। अन्तिम शास्त्रार्थ के दिन मुझे तीव्र ज्वर हो गया था जिसके कारण मुझे जाते समय भी स्वामी जी महाराज के दर्शन प्राप्त न हुए।

स्वामी जी की तीन वर्णनीय बातें—इन दिनों की तीन-चार बातें वर्णनीय हैं जो कि मैंने पण्डित लेखराम जी को लिखवा दी थीं—(क) शनिवार का दिन था। व्याख्यान टाउन हाल में हो चुका था। बहुत-से मनुष्यों ने निवेदन किया कि अगले दिन रविवार को नियत समय से एक घंटा पूर्व व्याख्यान आरम्भ हो। स्वामी जी ने स्वीकार कर लिया और कहा—“मैं नगर से ढाई मील के अन्तर पर ठहरा हूँ

और मेरा समय विभक्त हो चुका है इसलिए व्याख्यान के लिए तो एक घंटा पहले आ सकता हूँ परन्तु सवारी भी साधारण समय से एक घण्टा पूर्व आनी चाहिए, क्योंकि मैं ठीक उस समय तैयार होता हूँ जब व्याख्यान आरम्भ होने में पन्द्रह मिनट शेष रहें।” इसपर खजांची लक्ष्मीनारायण ने प्रतिज्ञा की कि सवारी एक घण्टा पूर्व पहुँच जाएगी। रविवार के दिन नियत समय से एक घण्टा पूर्व, प्रत्युत उससे भी पूर्व श्रोताओं का समूह पूर्ववत् एकत्रित हो गया, परन्तु स्वामी जी न पहुँचे। अन्ततः पौन घण्टे के पश्चात् बगधी आयी; स्वामी जी उतरकर टाउन-हाल में पहुँचे और सोटा दीवार के साथ टिकाकर पूर्व इसके कि प्रार्थना के लिए बैठें, बोले—“मैं नियत समय पर तैयार था परन्तु सवारी नहीं पहुँची। मैं प्रतीक्षा के पश्चात् पैदल चल पड़ा, मार्ग में बगधी साधारण समय पर मिली; इसलिए विलम्ब हो गया। सम्भजनो ! मेरा दोष नहीं है, दोष बच्चों के बच्चों का है जो कि प्रतिज्ञा-पालन करना नहीं जानते।” खजांची लक्ष्मीनारायण जी रोहेलखण्ड के प्रख्यात धनवानों में से थे और स्वामी जी का आतिथ्य कर रहे थे, किन्तु सिर झुकाये चुपचाप सुनते रहे।

(ख) हम तो सत्य ही कहेंगे—एक दिन व्याख्यान के समय श्री स्वामी जी महाराज पुराणों की असम्भव बातों का खण्डन करते-करते उनके नैतिक शिक्षण के दोष दिखाने लगे। उस समय पादरी स्कॉट, मिस्टर रीड, कलक्टर जिला और मिस्टर ऐडवर्ड साहब कमिश्नर आदि पन्द्रह-बीस अंग्रेज सज्जन विराजमान थे। स्वामी जी ने पौराणिकों की पाँच कुमारियों का वर्णन करते हुए एक-एक के गुण कहने आरम्भ किये और पौराणिकों की बुद्धि पर खेद प्रकट किया कि द्रौपदी को पाँच पति कराकर उसे कुमारी कहना और इसी प्रकार कुन्ती, तारा, मन्दोदरी आदि को कुमारी कहना पौराणिकों के नैतिक शिक्षण को दोषपूर्ण सिद्ध करता है। स्वामी जी की वर्णनशैली ऐसी परिहासमयी थी कि श्रोता थकने का नाम नहीं जानते थे। इसपर साहब कलक्टर और साहब कमिश्नर आदि अंग्रेज हँसते और प्रसन्नता प्रकट करते रहे, परन्तु इस विषय को समाप्त करके स्वामी जी महाराज बोले “पौराणिकों की तो यह लीला है, अब किरानियों की लीला सुनो ! यह ऐसे भ्रष्ट हैं कि कुमारी के पुत्र उत्पन्न होना बतलाते और फिर दोष सर्वज्ञ शुद्धस्वरूप परमात्मा पर लगाते और ऐसा घोर पाप करते हुए तनिक भी लज्जित नहीं होते।”

इतना कहना ही था कि कलक्टर साहब और कमिश्नर साहब के मुख क्रोध के मारे लाल हो गए, परन्तु स्वामी जी का व्याख्यान उसी उत्साह के साथ चलता रहा। उसी दिन ईसाई मत का व्याख्यान के अन्त तक खण्डन करते रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल ही खजांची लक्ष्मीनारायण को साहब कमिश्नर बहादुर की कोठी पर बुलाया गया। साहब बहादुर ने कहा कि “अपने पण्डित साहब को कह दो कि

बहुत कठोरता से काम न लिया करें। हम ईसाई लोग तो सभ्य हैं, हम तो शास्त्रार्थ में कठोरता से नहीं घबराते, परन्तु यदि असभ्य हिन्दू और मुसलमान उत्तेजित हो गए तो तुम्हारे स्वामी पण्डित के व्याख्यान बन्द हो जायेंगे।" खजांची साहब यह सन्देश स्वामी जी के पास पहुँचाने की प्रतिज्ञा करके लौट आये, परन्तु स्वामी जी तक इस विषय को पहुँचानेवाला बीर कहाँ से मिलता ? कई आने-जानेवालों से खजांची जी ने प्रार्थना की, परन्तु कोई भी आगे बढ़ने का साहस न कर सका। अन्त में दृष्टि एक नास्तिक पर पड़ी और उसपर इस विषय को निवेदन करने का उत्तरदायित्व रक्खा गया। खजांची साहब उस नास्तिक और कुछ अन्य व्यक्तियों के सहित कमरे के भीतर पहुँचे, जिसपर नास्तिक केवल यह कहकर (कि खजांची कुछ निवेदन करना चाहते हैं क्योंकि उन्हें साहब कमिश्नर ने बुलाया था) वहाँ से खिसक गया और सारी विपत्ति मानो खजांची साहब के सिर पर टूट पड़ी। अब खजांची साहब कभी सिर खुजलाते हैं और कभी गला साफ करते हैं। अन्त में पाँच मिनट तक आश्चर्य से देखते हुए स्वामी जी ने कहा—“भाई, तुम्हारा तो कोई काम करने का समय ही नहीं है, इसलिए तुम समय का मूल्य नहीं समझ सकते, मेरा समय अमूल्य है; जो कुछ कहना हो कह दो।”

इसपर खजांची साहब बोले—“महाराज ! यदि कठोरता न की जाय तो क्या हानि है ! इससे प्रभाव भी अच्छा पड़ता है और अंग्रेजों को क्रुद्ध करना भी अच्छा नहीं है” आदि आदि। ये बातें अटक-अटककर और बड़ी कठिनाता से खजांची साहब के मुख से निकलीं। इसपर महाराज हँसे और कहने लगे, “अरे, बात क्या थी जिसके लिए गिड़गिड़ाता है और हमारा इतना समय नष्ट किया ? साहब ने कहा होगा कि तुम्हारा पण्डित कठोर बोलता है, व्याख्यान बन्द हो जाएँगे, यह होगा वह होगा। अरे भाई, मैं हौआ तो नहीं जो तुम्हें खा लूँगा ? उसने तुम्हें कहा, तू मुझसे सीधा कह देता। व्यर्थ इतना समय क्यों गँवाया ?”

एक विश्वासी पौराणिक हिन्दू बैठा था। वह कहने लगा—“देखा ? यह तो कोई अवतार हैं, मन की बात जान लेते हैं !”

अस्तु, यहाँ तो जो कुछ हुआ वह हुआ। अब व्याख्यान का वृत्तान्त वर्णनीय है। मैंने केशवचन्द्र सेन, लालमोहन घोष, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, ऐनी बीसेंट तथा अन्य बहुत-से विख्यात व्याख्यानदाताओं के भाषण सुने हैं और वे भी उनकी उन्नति के काल में, परन्तु मैं सच्चे हृदय से कहता हूँ कि जो प्रभाव मुझपर उस दिन के व्याख्यान ने किया और जो विशेषता मुझे उस दिन के सरल शब्दों में प्रतीत हुई वह अब तक तो दिखलाई नहीं दी, भविष्य की ईश्वर जाने। उस दिन आत्मा के स्वरूप पर व्याख्यान था, उसी के मध्य में सत्य के बल पर महाराज ने बोलना प्रारम्भ किया। पहले दिन वाले समस्त अंग्रेज सज्जन, पादरी स्कॉट के अतिरिक्त, उपस्थित थे। कोई व्यक्ति चेष्टा नहीं करता था, सब चुपचाप तन्मय

होकर व्याख्यान सुन रहे थे। मुझे पूरा व्याख्यान तो स्मरण नहीं परन्तु उसके प्रभाव को अब तक अनुभव करता हूँ। उसके कुछ शब्द तो मुझे अन्तिम समय तक याद रहेंगे। ऋषि ने कहा—“लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो, कलक्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा। अरे! चक्रवर्ती राजा क्यों न अप्रसन्न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे।” इसके पश्चात् उस उपनिषद्-वाक्य को पढ़कर जिसमें लिखा है कि आत्मा को न कोई शस्त्र छेदन कर सकता है और न अग्नि जला सकती है, गरजती हुई आवाज में बोले—“यह शरीर तो अन्तित्य है। इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है। इसे जिस मनुष्य का जी चाहे नाश कर दे।” फिर चारों ओर अपनी तीक्ष्ण नेत्रों की ज्योति डालकर सिंहनाद करते हुए वे बोले—“परन्तु वह शूरमा वीर पुरुष मुझको दिखलाओ जो यह दावा करता है कि वह मेरे आत्मा का नाश कर सकता है! जब तक ऐसा वीर इस संसार में दिखाई नहीं देता मैं यह सोचने के लिए भी उद्यत नहीं हूँ कि मैं सत्य को दवाऊँगा अथवा नहीं।”

(ग) मनुष्य-पूजा की निन्दा—सारे हाल में सन्नाटा छाया हुआ था; व्याख्यान में कुछ विलम्ब हो गया था। उठते ही महाराज ने पूछा ‘भक्त स्काट आज दिखाई नहीं दिये?’ पादरी स्काट साहब को स्वामी जी से बड़ा प्रेम हो गया था और चूँकि वह किसी व्याख्यान से भी अनुपस्थित नहीं हुए थे इसलिए स्वामी जी उन्हें इसी नाम से पुकारा करते थे। किसी ने कहा कि रविवार का दिन है इसलिए नहीं आये क्योंकि समीप के ही गिरजा में वह रविवार को उपदेश किया करते हैं : टाउनहाल से नीचे आते ही महाराज कहने लगे कि चलो स्काट का गिरजा देख आवें। यद्यपि अधिकतर श्रोता चले गए थे तथापि तीन या चार सौ की भीड़-भाड़ साथ ले गिरजा में जा पहुँचे। पादरी साहब ने व्याख्यान अभी समाप्त ही किया था। श्रोतागण एक सौ के लगभग थे। स्वामी जी को देखते ही पादरी साहब नीचे उतर आये और स्वामी जी को वेदी (Pulpit) पर ले-जाकर प्रार्थना की कि महाराज कुछ उपदेश करें। स्वामी जी ने खड़े-खड़े ही बीस मिनट तक मनुष्य-पूजा का खण्डन किया, सब चुपचाप सुनते रहे। यहाँ प्रश्न यह है कि स्वामी दयानन्द जी का सच्चा अनुयायी कौन है? यदि कोई है तो उसकी खोज करो, क्योंकि वैदिक धर्म की उन्नति का साधन वही होगा।

(घ) वेश्यागमन की निन्दा—एक दिन स्वामी जी महाराज को ज्ञात हुआ कि खजांची लक्ष्मीनारायण ने एक वेश्या को अपने घर में डाला हुआ है। जब खजांची साहब उस दिन आये तो स्वामी जी ने पूछा—“खजांची जी! तुम कौन हो?” खजांची जी ने उत्तर दिया—“महाराज! आप गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था को

मानते हैं, मैं क्या उत्तर दूँ ?” स्वामी जी बोले कि “यों तो सब वर्णसंकर हैं किन्तु समय के अनुसार तुम अपने को क्या कहते हो ?”

खजांची जी ने उत्तर दिया कि खत्री हूँ। महाराज बोले—“यदि खत्री के वीर्य से वेश्या में पुत्र उत्पन्न हो तो उसे क्या कहोगे ?” खजांची ने सिर नीचा कर लिया। इसपर महाराज ने कहा—“मुनो भाई ! हम किसी का लिहाज नहीं करते, हम तो सच-सच कहेंगे।” उसी रात खजांची जी ने उस वेश्या को कहीं भेज दिया।

परमात्मा से मिलन कैसे हो ? भूमिका-लेखक को बताया—जगत-बीती तो बहुत-सी कहानियाँ हैं जो किसी और समय के लिए छोड़ता हूँ। अब आपबीती वर्णन करता हूँ। मैंने तीन बार महाराज से बातचीत ईश्वर-विषय में की। मुझे उन दिनों अपने नास्तिकपन का बड़ा अभिमान था। यद्यपि स्वामी जी का सारा उपदेश मुझे अच्छा प्रतीत होता था, तथापि मैं मन में यही सोचा करता था कि यदि एक ईश्वर और वेद को मानना स्वामी दयानन्द जी छोड़ दें तो फिर संसार का कोई भी विद्वान् उनका सामना करनेवाला दिखाई नहीं देता। मैंने अभिमान में आकर पहली बार केवल शास्त्रार्थ के अभिप्राय से ईश्वर-विषय में आक्षेप किये, परन्तु पाँच मिनट में ही मेरी जिह्वा बन्द हो गई। अन्ततः चारों ओर से युक्तिजाल में फँसकर मैंने कहा—“महाराज ! आपकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है, आपने मेरी जिह्वा बन्द कर दी, परन्तु मुझे विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर कोई है।” दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार पाँच-पाँच मिनट में मेरी जिह्वा बन्द हो गई। जब तीसरी बार भी मैंने विवश होकर यही उत्तर दिया, तब महाराज प्रथम तो हँस पड़े, फिर गम्भीरतापूर्वक कहा—“देखो, तुमने प्रश्न किये, मैंने उत्तर दिये। यह युक्ति की बात थी। मैंने कब प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारा विश्वास ईश्वर पर करा दूँगा ? तुम्हारा विश्वास ईश्वर पर उस समय होगा जब ईश्वर स्वयं अपने ऊपर विश्वास करायेंगे।” उसी समय महाराज ने उपनिषद्-वाक्य भी पढ़ा था जो कि मुझे स्मरण नहीं रहा।^१

दयानन्द सच्चा ऋषि था—मैं उस समय तो नास्तिक-का-नास्तिक ही रहा और उसके पश्चात् चिरकाल तक अविश्वास की गहरी गुफा में गिरा रहा, परन्तु जब मेरे उद्धार का समय आया, युक्ति की आवश्यकता न रही। जहाँ बड़ी-बड़ी युक्तियाँ पादरियों, मौलवियों और पण्डितों की असफल होकर रह गयीं, जहाँ दयानन्द-से योगिराज की युक्ति ने भी सान्त्वना न दी, वहाँ परमात्मा ने स्वयं अपने ऊपर विश्वास कराया और उस समय मुझे ऋषि का कथन स्मरण आया और मैंने उनकी महानता के आगे सिर झुकाया और सहसा मेरे हृदय से यह शब्द निकले कि दयानन्द सच्चा ऋषि था।

१. यह उपनिषद्-वाक्य कठोपनिषद् (२।२३) का था।

इस पुस्तक का उचित नामकरण

प्यारे पाठको ! मैं आपकी सेवा में निवेदन कर चुका हूँ कि इस पुस्तक को न तो कोई वायोग्राफी (जीवन-चरित्र) ही कह सकते हैं और न ही इसे आर्यसमाज का इतिहास कह सकते हैं। फिर इसका नाम क्या रखें ? इस पुस्तक को नियमित रूप देनेवालों ने तो जो उचित समझा इसका नाम रख दिया, परन्तु मैं अपनी ओर से कोई विशेष नाम न रखता हुआ आपके समक्ष इस बारे में अपने विचार प्रकट करता हूँ और आपमें से प्रत्येक को यह अधिकार देता हूँ कि अपनी योग्यता और बुद्धि के अनुसार इस संग्रह का नामकरण-संस्कार स्वयं कर लें।

सच्चे जीवन-चरित्र का स्वरूप—महान् ऋषियों और सत्यप्रिय विद्वानों के जीवन-चरित्रों के द्वारा धार्मिक शिक्षा देने की रीति आर्यावर्त में कुछ नवीन नहीं है। प्राचीन आर्यावर्त में वानप्रस्थी महात्मा और विरक्त साधुजन सदा पूर्वजों के आचरणों के उदाहरणों के द्वारा अपने शिष्यों को धार्मिक शिक्षा दिया करते थे। उपनिषद्-ग्रन्थ, जो कि ऋषियों के वानप्रस्थकाल के उपदेश हैं, इस प्रकार के असंख्य उदाहरणों से भरे हुए हैं, किन्तु तिथियों को असार और परिवर्तनशील समझकर उनका वर्णन वे आवश्यक नहीं समझते थे। इस नयी रोशनी के काल में बड़े अभिमान के साथ कहा जाता है कि प्राचीन लोग इतिहास और जीवन-चरित्र के सार को नहीं समझते थे, किन्तु यदि थोड़ा-सा विचार किया जाय तो स्पष्ट स्वीकार करना पड़ता है कि उन्नीसवीं शताब्दी ने इतिहास और जीवन-चरित्र के गौरव को अभी तक बहुत कम समझा है। इसमें सन्देह नहीं कि योरुप की जातियाँ शताब्दियों के अन्धकार से पुरुषार्थ के साथ निकलती हुई अब किंचिन्मात्र समझने लगी हैं कि इतिहास और जीवनचरित्र मनुष्य की सच्ची शिक्षा में कहाँ तक लाभदायक हो सकते हैं, परन्तु खेद है कि हमारा अभाग्य देश अब तक मोह-निद्रा में सो रहा है। महाभारत के भयानक युद्ध ने हमारे साथ केवल यही अन्याय नहीं किया कि हमसे धर्मात्मा विद्वानों और उच्चतम विचारशक्ति रखनेवालों को छीन लिया, प्रत्युत हमें सार और असार में विवेक करने के योग्य भी नहीं छोड़ा। उसके पश्चात् पुराणों का वह अन्धकारमय युग आया जिसमें कि अविद्या और स्वार्थ का पूरा राज्य हो गया और इस अभागी भूमि के सामने से रहा-सहा प्रकाश भी लुप्त हो गया। फिर कालचक्र में फँसे हुए भारतवर्ष का यदि कोई इतिहास विद्यमान न हो तो आश्चर्य नहीं करना चाहिए। आश्चर्य यदि है तो यह कि दर्शनों, ब्राह्मणों और सूत्रग्रन्थों के द्वारा प्राचीन आर्यावर्त का पूर्ण इतिहास इस अनन्तकाल की हलचल में क्योंकर बच रहा ? वर्तमान काल में इतिहास प्रायः तिथियों के संग्रह को कहा जाता है और यदि सच्चा इतिहास तिथियों का संग्रह ही होता हो तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि आर्यावर्त का कोई भी प्राचीन

इतिहास विद्यमान नहीं है, परन्तु योरूप और अमेरिका के पुरुषार्थी अन्वेषकों ने बड़ी खोज और अनुभव के पश्चात् यह घोषणा की है कि सच्चे इतिहास के साथ तिथियों का कोई आवश्यक सम्बन्ध नहीं है। तिथियों का प्रयोग केवल क्रम के स्मरणार्थ किया जाता है; अन्यथा इतिहास का सम्बन्ध केवल उस सार्वभौम क्रान्ति के साथ है जो कि परमात्मा के नियमों के अनुकूल अथवा प्रतिकूल चलने पर मनुष्य-समाज के किसी भाग में उत्पन्न हुआ करती है।

जीवनचरित्र लिखने का सही उद्देश्य—जीवनचरित्र लिखने का उद्देश्य भी योरूप की अन्वेषक जातियों ने कहीं अब समझा है। पूर्वकाल में योरूप में भी जीवन-चरित्र का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत मनोरंजन समझा जाता था और इसलिए तिथियों और साधारण घटनाओं की ऐसे ग्रन्थों में भरमार होती थी, परन्तु उन्नतिपथगामी योरूप ने अब निश्चय कर लिया है कि महान् पुरुषों के जीवन-चरित्र केवल उन बड़ी-बड़ी घटनाओं का संग्रह हैं जिन्होंने कि मनुष्य-समाज के आचरणों में कोई विशेष प्रकट क्रान्ति उत्पन्न कर दी हो।

पाठकगण ! स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन-चरित्र का अध्ययन यदि आप केवल मनोरंजन के लिए करना चाहते हैं तो इसे हाथ न लगाइये। यदि इस पुस्तक को आपने केवल भाषा-सौन्दर्य अथवा क्रमव्यवस्था की परीक्षा करने के लिए हाथ में लिया है तो इसे तत्काल रख दीजिए ! हाँ, यदि आपको अपने जीवन के उद्देश्य की खोज है तो मन को सावधान कर अन्तःकरण की शुद्धि से इन क्रम-हीन किन्तु शिक्षाप्रद पृष्ठों को उलटिये। निश्चय ही शुभ परिणाम पर पहुँच जाइयेगा।

स्वामी दयानन्द का कार्य महान् था—यह एक मानी हुई बात है कि वर्तमान काल की उन घटनाओं में से जिन्हें कि साधारण कहकर सम्बोधित किया जाता है, स्वामी दयानन्द का कार्य भी एक श्रेष्ठ स्थान रखता है। प्रोफेसर मैक्समूलर से लेकर सर मोनियर विलियम्स जैसे पक्षपातपूर्ण विदेशी ईसाई तक, और कट्टर मूर्तिपूजकों से लेकर बिशननारायण दत्त सरीखे स्वतन्त्र स्वदेशी पुरुष तक, सभी, इस बात पर एकमत हैं कि कम-से-कम भारतवर्ष में, स्वामी दयानन्द की समानता करनेवाला दूसरा सुधारक इस शताब्दी में उत्पन्न नहीं हुआ। फिर इसमें क्या सन्देह है कि भारतवासियों के लिए स्वामी दयानन्द के जीवन-वृत्तान्त से बढ़कर और कोई अध्ययन नहीं हो सकता !

उन्नीसवीं शताब्दी में ऋषिजीवन का महत्त्व

भारत का इतिहास विश्व-इतिहास की कुंजी—संसार का सामाजिक इतिहास मनुष्यों के विचारों और कर्मों का संग्रह समझा जाता है। किसी सीमा तक तो यह विचार ठीक है, परन्तु यदि गूढ़ दृष्टि से देखा जाय तो संसार का इतिहास

वनानेवाले कुछ ही चेतन आत्मा प्रतीत होंगे और उनका भी संसार के सच्चे इतिहास से वहाँ तक ही सम्बन्ध दिखाई देगा जहाँ तक कि कोई नवीन विचार चेतन-जगत् में उनके द्वारा फूँका गया है। अन्यथा खाना, पीना, उठना, बैठना, जागना, सोना, चलना-फिरना और इसी प्रकार से इन्द्रियों की अन्य साधारण चेष्टाओं का तो मनुष्य-समाज के इतिहास से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। जिस प्रकार कि जड़ जगत् का इतिहास समझने के लिए वे बड़े व प्रारम्भिक नियम जानने आवश्यक होते हैं जो कि प्रत्येक काल की चेष्टाओं के मौलिक नियम रहे हैं, इसी प्रकार चेतन जगत् का सच्चा इतिहास तबतक समझ में नहीं आ सकता जबतक कि उन बड़े-बड़े प्रारम्भिक नियमों का ज्ञान प्राप्त न किया जाय जो कि प्रत्येक कालचक्र के भीतर काम करते रहे हैं। आकाश-अवस्था से वायु-अवस्था में आने के लिए सहस्रों वर्ष लगे और उस दीर्घकाल में क्या-क्या चेष्टाएँ नहीं होती रही हैं और फिर वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथिवी की अवस्था में पहुँचने के लिए कितने असंख्य काल की आवश्यकता थी ! इन करोड़ों वर्षों के समय में असंख्य चेष्टाएँ जड़ जगत् में होती रही हैं; परन्तु जबतक कि भूगर्भ-विद्या के विद्वानों ने प्रत्येक काल का आरम्भिक नियम न जाना तबतक उन अनगिनत चेष्टाओं का मूल कारण विदित न हुआ जो कि एक-एक काल के भीतर अज्ञानता की दृष्टि में एक-दूसरे से पृथक् प्रतीत हो रही थीं।

यही कहानी चेतन जगत् की है और उसको अपने पाठकों के अधिकतर स्पष्टीकरण के लिए हम यदि केवल अपने देश का इतिहास ही ले लें तो न केवल पर्याप्त ही होगा प्रत्युत सर्वथा उचित भी होगा, क्योंकि जिस प्रकार मनुष्य की रचना को प्रत्येक देश और काल के विद्वानों ने ब्रह्माण्ड का दृष्टान्त बताया है उसी प्रकार भारतवर्ष को यदि समस्त संसार का दृष्टान्त कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा। और फिर जब हम देखते हैं कि निष्पक्ष साक्षी कम-से-कम यहाँ तक तो सिद्ध करने और स्वीकार करने के लिए उद्यत हैं ही कि मनुष्यसृष्टि का आरम्भ भारतवर्ष के उत्तरीय भाग में पहले-पहल हुआ, तो यह उदाहरण ठीक समयानुसार प्रतीत होता है।

भारतीय इतिहास का काल-विभाजन : महापुरुषों के प्रादुर्भाव के आधार पर—भारतवर्ष का इतिहास भी, हम अपने ज्ञान और खोज के अनुसार, कुछ बड़े-बड़े कालों में विभक्त कर सकते हैं। वैदिक ऋषियों के काल को यदि एक ही दीर्घकाल मान लिया जाय (यद्यपि सम्भव है कि ज्ञान के बढ़ने पर हमें उस अथाह काल को कई भागों में विभक्त करना पड़े) तो उसके पश्चात् उपनिषत्कारों के काल की उन्नति और पतन का समझना कुछ कठिन नहीं रहता और फिर वाम-मार्ग के अन्धकारमय काल से घबराकर मनुष्यों में प्रकाश की खोज, गौतम बुद्ध का संघर्ष और उसके पश्चात् जैनमत का प्रचार और फिर धीरे-धीरे जड़पूजा की

प्रबलता, उस नये अन्धकार से छुटकारा दिलाने के लिए स्वामी शंकराचार्य का आविर्भाव और फिर मानवी निर्बलता के कारण पुरुषार्थ का नाश और अविद्या का राज्य—कहने का अभिप्राय यह कि इसी प्रकार क्रमशः हम भारतवर्ष के इतिहास को तीन बड़े भागों में विभक्त कर सकते हैं। परन्तु यद्यपि इस इतिहास के एक-एक काल को पूर्णरूप से समझने के लिए हमें उस काल का रहन-सहन, रीति-रिवाज, विद्या, कौशल, शिल्प, व्यापार, बोलचाल और वर्गों के परस्पर सम्बन्ध का विस्तृत वृत्तान्त जानने की आवश्यकता है, तथापि ये सब बातें समझ में आनी कठिन हो जाती हैं। कम-से-कम उस काल की जीवनचर्या के ठीक कारण तबतक विदित नहीं होते जबतक कि हमें इस बात का ज्ञान न हो कि उस काल के विचारों का आरम्भ कहाँ से हुआ, जब तक कि इस बात का निश्चय न हो जाय कि उस समस्त काल का प्रेरक प्राचीन विचारों को पलटा देनेवाला कौन-सा सिद्धान्त था।

यह एक माना हुआ सिद्धान्त है कि स्थूल वस्तु की अपेक्षा सूक्ष्म वस्तु अधिक शक्तिशाली होती है और यह इसलिए कि सूक्ष्म वस्तु स्थूल के भीतर प्रवेश करके भी कार्य कर सकती है। विद्युत् सबसे शक्तिशाली वस्तु है—इस तथ्य को कौन व्यक्ति अस्वीकार कर सकता है ! कारण स्पष्ट है कि विद्युत् प्रत्येक प्राकृतिक पदार्थ के भीतर व्यापक हो रही है और इसलिए विशाल-से-विशाल पहाड़ों तक को एक पल में चकनाचूर कर सकती है। यदि हम इसी सिद्धान्त को आँखों के सामने रख-कर चेतन जगत् का अवलोकन करें तो वहाँ भी स्थूल और सूक्ष्म का यही सम्बन्ध प्रतीत होगा। हमारी पृथिवी पर सबसे अधिक पूर्ण रचना मनुष्य की है और इस रचना की खोज करने से विदित होगा कि इन्द्रियों के गोलक, उदाहरणतया कानों के पर्दे, आँखों की पुतलियाँ, रसना का साधन जिह्वा और इसी प्रकार अन्य गोलक, सब-के-सब, स्थूल हैं और इसीलिए चेष्टारहित हैं। उनकी अपेक्षा उनके भीतरी नियम अर्थात् सुनने, देखने और रस लेने आदि की शक्तियाँ अधिक महान् हैं। इन सबकी अपेक्षा मन, जोकि इन सबको चेष्टा देता है, अधिकतर शक्तिशाली है और इस शक्तिशाली मन से भी बुद्धि, जो कि ज्ञान प्राप्त करने का साधन है, अधिक सूक्ष्म और इसलिए अधिक शक्तिशाली है। इस मोटे उदाहरण से स्पष्ट विदित हो जाता है कि चेतन जगत् को जितनी चेष्टा ज्ञान का एक सिद्धान्त दे सकता है उतनी चेष्टा और कोई सिद्धान्त नहीं दे सकता जैसा कि पवित्र वेद ने भी कहा है—

“सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः”

(यजुर्वेद अ० १, मं० ४)

अर्थात् वही (सत्यज्ञान) समस्त जीवन, समस्त कर्म और धारणा का मूल सिद्धान्त है।

ज्ञान के एक-एक सिद्धान्त ने प्रायः संसार के विचारों की कायापलट कर दी

है, परन्तु ज्ञान के ये महान् सिद्धान्त संसार में प्रकट क्योंकर होते हैं ? जिस प्रकार कि हम एक-एक ईश्वरीय नियम का पता केवल जगत् की उन रचनाओं को देखने से ही लगा सकते हैं जिनमें कि वे नियम काम करते हैं, इसी प्रकार हम ज्ञान के पवित्र नियमों का पता उन महापुरुषों के जीवनचरित्रों से लगा सकते हैं जो कि उन नियमों के प्रचार के लिए परमात्मा के नियमानुकूल अपने कर्मानुसार नियुक्त किये जाते हैं। मनुष्य-समाज के प्रत्येक काल के आरम्भ में उस काल की आवश्यकता के अनुसार ज्ञान का कोई एक नियम प्रकट होता है जो कि मनुष्य-समाज के विचारों में परिवर्तन करने के लिए जादू की-सी शक्ति रखता है। ऐसे प्रत्येक नियम का प्रकटीकरण किसी-न-किसी जीवात्मा के द्वारा होता है जो कि कदाचित् कई पूर्वजन्मों के साधनों से इसी नियम के प्रचार के लिए तैयारी कर रहा था।

महात्मा बुद्ध का आविर्भाव—उपनिषत्कार ऋषियों के काल के पश्चात् जब मनुष्य अपनी निर्बलता के कारण बुराइयों की ओर झुकने लगे, सच्चे ब्राह्मणों का अभाव हो गया, वेदों के सिद्धान्त में गड़बड़ होने लगी और अविद्या में फँसकर मदिरा, मांस और व्यभिचार के कर्मों को धर्म का बाना पहनाकर धर्म को दूषित करना आरम्भ हो गया, उस समय कई जन्मों के साधनों से सुसज्जित महात्मा बुद्ध का आविर्भाव हुआ। भारतवर्ष में दुराचरण की विकराल सेना के राज्य में चारों ओर हाहाकार देखकर बुद्धदेव ने शुद्धाचार के सिद्धान्त का प्रचार किया। वाम-मार्ग रूपी वेश्या को जो कि अपने केश खोलकर बेरोक-टोक भारतवर्ष के गली-कूचों में विचरती थी—अपना मुख छुपाना पड़ा। अन्याय दया में परिवर्तित हो गया। परन्तु महात्मा बुद्ध ने अन्ततः अपना कर्त्तव्य पूरा किया और चल दिये। मानवी दुर्बलता ने उस महान् आन्दोलन के मूल सिद्धान्त को भूला दिया। सच्चे पुरुषार्थ का पाठ बुद्धदेव ने पढ़ाया था परन्तु लोगों ने पुरुषार्थ के सच्चे अर्थ को न समझकर उसे अभिमान में परिवर्तित कर लिया। कर्मों का फल देनेवाले परमात्मा को वे भूल गये। बुद्धदेव ने अनन्तशान्ति का नाम मुक्ति रक्खा था, संसार की वासनाओं से छूटने का नाम मोक्ष बतलाया था। लोगों ने अपने समस्त विचारों को उसी संसार में सीमित कर दिया जिससे छुड़ाने के लिए बुद्धदेव का सारा पुरुषार्थ व्यय हुआ था।

शंकर का आगमन—समय ने फिर पलटा खाया। चिरकाल तक लोग जड़-पूजा करते रहे। अन्ततः ज्ञान के आत्मिक सिद्धान्त के प्रकाश का काल भी आ पहुँचा। ज्ञात नहीं कि कितने जन्म-जन्मांतरों में साधन करने के पश्चात् आत्मिक सिद्धान्त का प्रकाश स्वामी शंकराचार्य के द्वारा हुआ। प्रकृतिपूजा के विचारों का दुर्ग उनकी प्रबल युक्तियों और उनके अटल वेदप्रमाणों के शस्त्रों ने चकनाचूर कर दिया। आत्मा का राज्य हो गया, परन्तु मनुष्यों की दुर्बलता ने फिर इस पवित्र

आन्दोलन के भी नियम न समझे। आत्मा का महत्त्व दर्शाना शंकर का काम था परन्तु उसके अनुयायियों ने आत्मा से भिन्न कोई वस्तु ही न रखी। यहाँ तक कि नास्तिकता का पाठ पढ़कर स्वयं ईश्वर बन बैठे।

व्यक्तियों का महत्त्व नहीं ! उनके सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण—प्यारे पाठकगण ! आओ ! अब थोड़े समय के लिए इस आश्चर्ययुक्त कहानी पर विचार करें। क्या बुद्ध ने, जो हमारी भाँति ही दश इन्द्रियों, पाँच प्राणों और मन की चारों वृत्तियों का राजा था, किसी अपनी शक्ति द्वारा भूमण्डल के लगभग आधे भाग को अपने विचारों का अनुयायी बनाया था ? क्या शंकर ने जो कि हमारे समान ही खाने-पीने, उठने-बैठने की चेष्टाएँ करता था, किसी अपनी शक्ति से बौद्ध और जैनमत को भारतवर्ष से भगा दिया था ? आहार और निद्रा आदि के दास जो बुद्ध और शंकर थे—हमें उनसे कुछ भी प्रयोजन नहीं है। मनुष्य-समाज के इतिहास की नींव उन्होंने नहीं डाली, प्रत्युत उस एक-एक सिद्धान्त ने डाली जिनको संसार में फैलाने के लिए बुद्ध और शंकर साधन बनाये गए। जहाँ बुद्धदेव समय की आवश्यकता के अनुसार पुरुषार्थ के सिद्धान्त के प्रकटीकरण का साधन था वहाँ शंकराचार्य आत्मिक ज्ञान अर्थात् ब्रह्मविद्या के सिद्धान्त का प्रचार करने के लिए चुना गया था।

ऋषि दयानन्द के आविर्भाव की परिस्थिति—परन्तु जब शंकर अपना उद्देश्य पूरा करके चल दिया, मानवी दुर्बलता ने भारतवासियों को फिर आन दवाया। प्रत्येक प्राणधारी स्वयं ईश्वर बन बैठा, शान्ति कोसों दूर भागी। प्रकृति के नियमों का सामना करने की शक्ति न रखते हुए मनुष्यों के हृदयों ने जब साक्षी दी कि वे ईश्वर नहीं हो सकते, तब विश्वास की शिथिलता ने आन दवाया। प्रत्येक मनुष्य या वस्तु जो भयानक अथवा विचित्र दिखाई दी, उसी को अविद्या-ग्रस्त भारत ने अपना इष्टदेव ठहराया। ऐसी हलचल उत्पन्न हुई कि किसी सिद्धान्त का विवेक न रहा। ऐसे घोर समय में पाश्चात्य विज्ञान और पाश्चात्य नास्तिकता एक ओर तथा जड़ की मनुष्य द्वारा पूजा दूसरी ओर भारतवासियों को अपना ग्रास बनाने के लिए आ खड़ी हुई। समय और भी अधिक भयानक हो चला। चारों ओर से टकटकी लग रही थी कि इस काल की अवस्था के अनुसार आरोग्यप्रद सिद्धान्त चलाने के लिए कब प्रकट होता है कि महर्षि दयानन्द का आविर्भाव हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेजों ने भारतवर्ष में दृढ़तापूर्वक पाँव जमा लिये थे। लॉर्ड ऐमहर्स्ट के शासनकाल में ब्रह्म देश तक अंग्रेजों का हाथ बढ़ चुका था। आर्यावर्त की परतन्त्र जनता अपने लिए नवीन शासकों को उसी उपेक्षा से स्वीकार कर चुकी थी जोकि आठ शताब्दियों की निरन्तर परतन्त्रता के कारण उसकी आदत बन चुकी थी। ब्रिटिश राज्यसत्ता बाहरी और भीतरी

शत्रुओं के भय से मुक्त होकर उस समृद्धिशाली राज्य में क्रम और प्रबन्ध का तत्त्व डालने के लिए उद्यत हो रही थी जिसको कि ईश्वरीय नियम के अनुसार उन्होंने अकस्मात् अपने कब्जे में देखा। युद्ध के व्रणों पर मरहम लगाने का समय आ गया था। इंग्लैण्ड के छोटे-से द्वीप से लॉर्ड विलियम बैंटिक भारतवर्ष के गवर्नर-जनरल के पद का भार सँभालने के लिए चल दिये थे और जहाज में सुधारों पर विचार करते आ रहे थे जिनका आविर्भाव अन्त में उनके सप्तवर्षीय शासनकाल में हुआ। मसीही पादरी काफिर पाषाणपूजकों और मूर्ख अर्ध-असभ्यों को मानवी सहानुभूति और पाश्चात्य सभ्यता का पाठ पढ़ाने का दावा करते हुए हजारों मील की यात्रा पर चल पड़े थे। भारतवर्ष में शारीरिक युद्ध के साथ-साथ आत्मिक संघर्ष भी आरम्भ हो चुका था। बंगदेश में राममोहन राय का विशाल हृदय अपने भाइयों को पाषाणपूजा और भ्रमों के जंगल में फँसा हुआ देखकर व्याकुल हो चुका था। चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार देखकर उसने उपनिषदों में कुछ चमत्कार-सा देखा था, परन्तु खेद है कि सांसारिक युद्ध में मन विक्षिप्त होने के कारण उसे आगे बढ़ने का साहस न हुआ। वेदों के महान् प्रकाश और उसकी विचाररूपी तीक्ष्ण किरणों को सहन करने की शक्ति न रखते हुए उसकी आँखें चूंधियाँ गयीं। ब्रह्मसभा तो स्थापित हुई, परन्तु खेद है कि मूर्तिपूजा की फौलादी शृंखलाओं को काटनेवाले वीरों में मनुष्यपूजा की रेशमी डोर काटने का साहस न हुआ। लोग मूर्तियों की दासता से स्वतन्त्र होकर मसीह की दासता में फँसने लगे। एक ओर भरतपुर के दृढ़ किले पर अंग्रेजी सेना की चढ़ाई और दूसरी ओर प्राचीन आर्यों के रहे-सहे ब्रह्मविद्या के गढ़ पर मसीही सेना का आक्रमण होने की तैयारी हो रही थी कि सन् १८२४ में काठियावाड़ के एक छोटे-से ग्राम में एक औदीच्य ब्राह्मण के घर एक पुत्र ने जन्म लिया।

इसके पश्चात् कुछ समय तक जहाँ एक ओर सांसारिक राज्यप्रबन्ध में शांति होने लगी, वहाँ दूसरी ओर आत्मिक राजप्रबन्ध में भी शान्ति और सन्तोष के लक्षण दिखाई देने लगे। ईसाई मिशनरियों के प्रयत्न फल लाने लगे। सहस्रों व्याकुल आत्माएँ मूर्तिपूजा और अन्य भ्रमों से घबराकर मसीही मनुष्यपूजा की शरण लेने लगीं। धर्म का फिर नाममात्र राज्य दिखाई देने लगा। अंग्रेजी शिक्षा के कारण लोगों की आँखें कुछ खुलने लगीं। जहाँ एक ओर भारतवासियों के हृदयों में राजनैतिक उमंगें उछलने लगीं, वहाँ दूसरी ओर भिन्न-भिन्न प्रकार के आत्मिक भाव भी उत्पन्न होने लगे। उस समय भारतवर्ष की प्रजा ने जहाँ एक ओर देखा कि अपनी महारानी विक्टोरिया के पास उन्हें सीधे अपना प्रार्थना-पत्र ले जाने की आज्ञा नहीं प्रत्युत व्यापारियों की एक कम्पनी इसमें बाधक हो रही है, वहाँ दूसरी ओर अपने आत्मिक पिता जगदीश्वर के पास अपनी प्रार्थना ले जाने में भी उन्हें मसीह आदि पुरुष मार्ग में बाधक दिखाई दिये; परन्तु चूँकि

सांसारिक और आत्मिक दोनों लोकों में उनके भीतरी और बाहरी दोनों नेत्र खुल चुके थे इसलिए आँखें फिर बन्द नहीं हो सकती थीं ।

देश में भौतिक तथा आत्मिक अशान्ति के परिणाम— सांसारिक हलचल का परिणाम सन् १८५७ का विद्रोह था । उस अन्धकारपूर्ण काल में जो कुछ मार-काट हुई, जिस-जिस प्रकार के अत्याचार दोनों ओर से किये गए—उनका वर्णन करना हमारा काम नहीं है । हमें इस स्थान पर केवल उसके परिणाम से प्रयोजन है । अन्ततः महारानी का कोमल हृदय हिल गया । उनके पास प्रत्येक अत्याचार की रिपोर्ट पहुँच चुकी थी, परन्तु विद्रोहियों को उनके अपराधों का दण्ड देकर हमारी महारानी ने अपना दया का हाथ फैलाया । उन्होंने समझ लिया कि प्रजा पुत्र के समान है । उन्हें विश्वास हो गया कि अपने कर्तव्य का भार वणिकों को सौंपने का यही परिणाम होना था । अपने कर्मों का फल भारतवासी भुगत चुके । अब पुत्रों का अधिकार है कि माता से सीधे बातचीत करें । इस शुभ सूचना की घोषणा महारानी ने कर दी जिसको भारतवर्ष में फैलानेवाला लार्ड कैनिंग था ।

परन्तु आत्मिक क्षेत्र का युद्ध इतना शीघ्र समाप्त होनेवाला न था । वहाँ भी प्रबन्ध वणिकों के हाथ में था । मत-मतान्तरों के नेता और उनके प्रचारक, जिनका काम ही यह है कि अपने मत को जहाँ तक हो सके बढ़ावें, भारतवर्ष की प्रजा के हृदयों को डाँवाडोल करने लगे; परन्तु इन हृदयों के ज्ञाननेत्र खुल चुके थे—अब बन्द हों तो क्योंकर ? मसीही प्रचारकों ने आश्चर्य से देखा कि जो स्कूल और कॉलेज उन्होंने अपने मत की वृद्धि के लिए स्थापित किये थे, उन्हीं की शिक्षा उन भारत-निवासियों को उनसे घृणा उत्पन्न कराने का साधन बन चली । भारत-पुत्र व्याकुलता की दशा में समझ बैठे कि हमारा कोई आत्मिक पिता ही नहीं है । मनुष्यपूजा से पीड़ित होकर उन्होंने अपने स्वामी को ही भुला दिया । परन्तु इसमें उनका अपराध भी क्या था ! जब इसी संसार में विद्यमान महारानी विक्टोरिया को कम्पनी के अधिकारियों की सतायी हुई भारत की प्रजा भूल गयी थी तो फिर सूक्ष्म-से-सूक्ष्म जगजननी को यदि पादरियों और पुजारियों के अत्याचारों से पीड़ित होकर उसने पूर्णतया छोड़ दिया हो तो इसपर कौन विचार-शील पुरुष आश्चर्य कर सकता है ! नास्तिकता का राज्य हो गया । जिस प्रकार सन् १८५७ के भयंकर समय में भारत की प्रजा ने विक्टोरिया और उसके विधान का त्याग कर दिया था, उसी प्रकार बड़ा भयानक विद्रोह आत्मिक लोक में भी फैल गया और ईश्वर और उनके ज्ञान वेद को सबने भुला दिया । उस अन्धकार-पूर्ण काल में जितना आत्माओं का घात हुआ उसका वर्णन करने की शक्ति इस निर्बल लेखनी में नहीं है ।

देश के आत्मिक जगत् में विद्रोह—भारतवर्ष का कौन-सा शिक्षाप्राप्त

नवयुवक पुत्र है जोकि अपने विद्रोह के काल का स्मरण करके इस समय शान्ति प्राप्त होने पर भी काँप नहीं उठता और अपने पूर्व जीवन पर रक्त के अश्रु नहीं बहाता ? यह वह भयंकर काल था जब अपूर्ण अंग्रेजी शिक्षा के कारण हम सबको सन्देह हो गया था कि संस्कृत के शब्दों में कोई बुद्धि की बात भी लिखी हुई है अथवा नहीं। यह वह भयानक समय था कि जब मसीही पादरियों ने आर्यावर्त के नवयुवकों को यह पाठ पढ़ाया था कि उनके वेदों की शिक्षा हजरत नूह के वंशजों ने भारतवर्ष में फैलायी है। यह वह समय था कि जब वेदों के मन्त्रों को इस्माईल जोगी के छूमन्तरो में सम्मिलित किया जाता था। सारांश यह है कि जब भारतवर्ष की प्रजा के पापों का प्याला भर गया और आत्मिक जगत् में ऐसा घोर अन्धकार फैला कि भारतनिवासी अपने सिरजनहार को भूल गये, उस समय जहाँ एक ओर अद्वैत ब्रह्म ने रुद्ररूप का प्रकाश करके भारतवर्षीय प्रजा को न्याय के तीक्ष्ण खड्ग से उनके शताब्दियों के बिगड़े हुए आचरणों के लिए दण्ड दिया वहाँ दूसरी ओर प्रेम और विद्या का अमृत दोनों हाथों में लिये अपने जननीरूप का विस्तार किया और अपना शान्तिपुत्र जोकि सदा एकरस ब्रह्माण्ड के एक-एक परमाणु पर विद्युत् के अक्षरों में खुदा हुआ रहता है—अपने सच्चे सेवक के द्वारा भेजा। धन्य हैं जगज्जननी ! धन्य है उनका शान्तिपुत्र ! इस सच्चे सेवक के आगमन की सूचना केवल यही घटनाएँ नहीं दे रही थीं प्रत्युत दूरदर्शी लोग अपने विचार के दर्पण में उन्नीसवीं शताब्दी के ऋषि के आगमन की ओर टकटकी लगाये बैठे थे।

शान्तिदूत के आगमन के चिह्न सभी ने देखे—उन दूरदर्शियों में केवल वही थोड़े-से व्यक्ति ही सम्मिलित नहीं थे जिनका पालन-पोषण भारतभूमि में हुआ था, प्रत्युत मसीही विचारों की गोद में पले हुए भी और मसीही सभ्यता की पाठशाला में शिक्षा पाये हुए ऐसे उत्तम पुरुष विद्यमान थे जिन्हें स्पष्ट रूप से प्रतीत हो रहा था कि आर्यावर्त का आत्मिक ज्ञान संसार में फिर एक बार हलचल मचा देगा। सन् १८७७ ई० में सर एल्फ्रेड लॉयल ने उस विस्तृत हलचल को गहरी दृष्टि से भाँपकर, जोकि भारतवर्ष के आत्मिक क्षेत्र में मची हुई थी,—भविष्यवाणी की थी कि भारतवर्ष में ब्राह्मणधर्म में नये सिर से जीवन फूँकनेवाला ऋषि बहुत शीघ्र आनेवाला है। उपर्युक्त सज्जन ने अपनी पुस्तक 'एशियाटिक स्टडीज' (Asiatic Studies) के पृष्ठ ११८ पर इस विचार को स्पष्ट रूप से वर्णन किया है और फिर भारतवर्ष की वर्तमान आत्मिक दशा पर विचार करते हुए उन्होंने उक्त पुस्तक के पृष्ठ १३० पर कहा है—“किसी बड़े आन्दोलन के भारतवर्ष में आने के लक्षण दिखायी देते हैं, यदि शान्ति बनी रही। परन्तु उस आन्दोलन का क्या रूप होगा और किस ओर उसका प्रसार होगा—यह वह प्रश्न है जिसका उत्तर कि समय देगा।”

आनेवाला बड़ा आन्दोलन 'आर्यसमाज' सिद्ध हुआ—काल की गति और हिन्दू-समाज के आचरण ने उत्तर दिया कि वह आन्दोलन 'आर्यसमाज' है और बालब्रह्मचारी के षोडशवर्षीय प्रचार ने, जिस अवधि में परमात्मा के सच्चे सेवक ने सत्य का सहारा लेकर भारतवर्ष के विशाल महाद्वीप के एक सिरे से दूसरे तक आत्मिक हलचल मचा दी थी, जिस अवधि में भारत-निवासियों ने आश्चर्य से सुना था कि परमेश्वर न केवल हमारा न्यायकारी पिता ही है प्रत्युत हमारी दयालु माता भी है, जिस अन्तर में कि ईसाइयों ने आश्चर्य के साथ जाना किया कि भ्रातृभाव को मानुषी सहानुभूति के संकुचित घेरे से निकलकर प्राणधारीमात्र तक विस्तृत करने की आवश्यकता है। हाँ ! बालब्रह्मचारी के उसी षोडश-वर्षीय प्रचार ने बड़े गम्भीर शब्दों में उत्तर दिया कि ब्राह्मणधर्म में नये सिरे से जीवन फूँकनेवाला स्वामी दयानन्द है।

इस पुस्तक का उचित नाम—

ब्राह्मणधर्म में नया जीवन फूँकने की कहानी

सज्जन पुरुषो ! वस, यह पुस्तक ब्राह्मणधर्म में नये सिरे से जीवन फूँके जाने की एक पूर्ण कहानी है।

उस ब्राह्मणधर्म की विशेषता क्या है ? यह प्रश्न है जिसका उत्तर कि स्वामी दयानन्द ने अपने जीवन में दिया है। इसलिए भारत-सन्तान में से प्रत्येक का कर्तव्य है कि उस जीवन का सम्यक् रूप से अध्ययन करे।

पण्डित लेखराम की शैली की विशेषता—साधारणतया जीवनचरित्र से लेखक के विचार प्रकट हुआ करते हैं और पढ़नेवालों को निष्पक्ष विचार का अवसर प्राप्त होने के स्थान पर किसी एक विशेष पक्ष में फँसना पड़ता है, परन्तु पण्डित लेखराम ने आपको किसी विशेष पक्ष में फँसाने का यत्न नहीं किया। केवल घटनाओं को बिना किसी काट-छाँट के आपके विचार के लिए आपके सामने रख दिया है।

ब्राह्मणधर्मियों से निवेदन—आर्य पुरुषो ! इस पुस्तक को एक सिरे से दूसरे सिरे तक विचारपूर्वक पढ़ जाओ और फिर सोचो कि वे कौन-से सिद्धान्त थे जिन्होंने कि एक लंगोटबन्द साधु को वह शक्ति प्रदान की थी जो इस समय महाराजाओं में भी दिखाई नहीं देती। पता लगाओ कि आर्यसमाजों के स्थापित करने से ऋषि का क्या प्रयोजन था ? दयानन्द की जीवनयात्रा के मार्ग पर पथ-प्रदर्शन के लिए चिह्नों की खोज करो और जिस समय कि तुम्हें उन्नति का शिखर बड़ा ऊँचा और भयावना प्रतीत हो उस समय इस ज्योतिस्तम्भ की ओर टकटकी लगाकर ऊपर चढ़ते चले जाओ। फिर देखो कितनी सरलता से मार्ग समाप्त होता है। मेरे प्यारे हिन्दू भाइयो ! ब्राह्मणधर्म का अभिमान करनेवालो ! तुम्हारे

लिए इस पुस्तक का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। तुम पुराणों में सुनते आए हो कि कलियुग में भी सतयुग की लड़ी वर्तमान रहेगी। अपने हृदय से पूछो कि सतयुग किस प्रकार से आ सकता है। तुम्हें बतलाया जाता है कि दयानन्द ने तुम्हारे धर्म का नाश कर दिया है। सुनी हुई बातों का कुछ समयके लिए त्याग करके घटनाओं के आधार पर भला विचार तो करो कि दयानन्द ने धर्म का नाश किया है या तुम्हारे बिछुड़े हुए धर्म को तुमसे फिर मिलाने की चेष्टा की है? क्या तुम्हारा हृदय साक्षी देता है कि वेदों का सम्मान करनेवाला दयानन्द, वेदों के प्रेम में पागल कहलानेवाला दयानन्द, आर्ष ग्रन्थों में रचि रखनेवाला दयानन्द, ऋषियों की निन्दा को सहन न करनेवाला दयानन्द, कभी भी धर्म को हानि पहुँचा सकता है? क्या तुम अस्वीकार कर सकते हो कि दयानन्द ने तुम्हें उन वेदों का पता दिया जिनका कि चिरकाल से तुमने दर्शन तो क्या श्रवण भी नहीं किया था? आओ! प्रकाश के एकाएक प्रकट होने पर चूंधिया मत जाओ, सावधान होकर दृष्टि डालो! यह प्रकाश तुमको अविद्यारूपी गर्त से निकालने-वाला है। प्रकाश का पता देनेवाले के जीवन-वृत्तान्त को दीर्घदृष्टि से पढ़ो ताकि तुम्हें प्रकाश से लाभान्वित होने का ज्ञान प्राप्त होवे।

बिछुड़े भाइयों से अपील—हे मेरे बिछुड़े हुए मुहम्मदी और ईसाई मित्रो! अविद्या की अन्धकारमय रात्रि में जबकि हाथ पसारा नहीं सूझता था, तुमने भाइयों के हाथ छोड़कर अन्यो के हाथ में अपना हाथ दे दिया। जब क्रियात्मक रूप में तुम्हें विदित हो गया कि तुमने मूर्खता की है और तुम्हारे आत्माओं ने साक्षी दी कि तुम निज गृह से दूर जा रहे हो तो तुमने व्याकुल होकर आतुर नयनों से अपने भाइयों की ओर देखा। तुम्हारे भाई उस समय स्वयं देखने के योग्य न थे, फिर तुम्हारा हाथ क्योंकर पकड़ते? परन्तु अब अन्धकार दूर हो गया, वेदरूपी सूर्य का प्रकाश हो गया, जीवन के उद्देश्य को समझो और अपने उस भाई के जीवन-वृत्तान्त को पढ़ो जिसने कि तुम्हारे लिए, नहीं-नहीं, केवल तुम्हारे लिए ही नहीं प्रत्युत सत्य की खोज करनेवाले प्रत्येक के लिए अपनी जान को हेय समझा, सांसारिक सुख तथा आनन्द को हेय समझा और परमेश्वर के अटल नियम के आगे सिर झुकाये हुए अपने मिशन को पूरा किया।

हे शिक्षाप्राप्त भाइयो! इतिहास का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करनेवालो! उन्नीसवीं शताब्दी में ऋषिजीवन क्या एक अचम्भा नहीं है? मतवादियों के अद्भुत-से-अद्भुत चमत्कारों से बढ़कर क्या यह एक अद्भुत और आश्चर्यमय चमत्कार नहीं है?

हे दयालु पिता! प्रत्येक मनुष्य को, चाहे वह किसी वर्ण, स्वभाव, जाति अथवा सम्प्रदाय का हो—सामर्थ्य दे कि दयानन्द का जीवन-वृत्तान्त पढ़ते हुए

२०६

स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली

और उसके मिशन पर विचार करते हुए उन सिद्धान्तों को दयानन्द से पृथक् करके उनपर विचार करने की शक्ति प्राप्त करे जिनके प्रचार के लिए कि तूने दयानन्द को विशेष शक्तियाँ प्रदान की थीं ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः !

जालन्धर नगर

—मुंशीराम जिज्ञासु

२५ अक्तूबर १८९७ ई०

पाद-टिप्पणियाँ

(बन्दीघर के विचित्र अनुभव)

१. स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने ही पुत्र पं० इन्द्र वाचस्पति को प्रेरणा देकर दिल्ली से विजय नामक एक दैनिक पत्र १९१६ ई० में प्रकाशित कराया था।
२. स्वामी श्रद्धानन्द का महान् देशभक्त पं० गोपालकृष्ण गोखले से अत्यन्त सौहार्द भाव था। इसकी साक्षी इन दोनों के उस पत्र-व्यवहार से मिलती है जो 'वैदिक मैगजीन' (गुरुकुल कांगड़ी का मासिक पत्र) के पुराने अंकों में छपा था। प्रस्तुत ग्रन्थावलि में इस पत्र-व्यवहार का मुख्य अंश प्रकाशित किया जायगा।
३. इलाहाबाद से प्रकाशित होनेवाला प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक सर सी० वाई०-चिन्तामणि के सम्पादन में निकलता था। यह नरमदली राजनीति का समर्थक था।
४. पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार से अभिप्राय है।
५. दैनिक विजय से अभिप्राय है।
६. दीनबन्धु सी० एफ० एण्ड्रूज महात्मा मुंशीराम के आत्मीय मित्र थे।
७. यह पत्र १९२० ई० में प्रकाशित हुआ था।
८. बर्मा का एक नगर।
९. स्वामी श्रद्धानन्द की इस बर्मा-यात्रा के समय स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी भी उस देश में धर्मप्रचारार्थ गए हुए थे।
१०. मुस्तफा कमाल पाशा टर्की के नेता थे। उन्होंने अपने देश को मुल्लामौलवियों के शिकंजे से निकालकर आधुनिक बनाया था।
११. आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेता पं० ठाकुरदत्त शर्मा ने 'अमृतधारा' नामक विख्यात ओषधि का निर्माण किया था।
१२. उर्दू में साम्राज्यीय का विकृत रूप 'सामराजी' प्रयुक्त होता है।
१३. भारती कृष्णतीर्थ शारदापीठ के शंकराचार्य के पद पर आसीन एक उच्च कोटि के विद्वान् संन्यासी थे। उनका वैदिक गणित पर लिखा एक ग्रन्थ विख्यात है।

२०८

स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली

१४. सत्यार्थप्रकाश, पंचम समुल्लास ।
१५. मोटी रोटी के लिए पंजाबी शब्द ।
१६. प्रसाद के अर्थ में प्रयुक्त ।
१७. विचाराधीन के अर्थ में प्रयुक्त । ३१४००
१८. अंग्रेजों के बन्दी ।
१९. लाहौर से प्रकाशित उर्दू दैनिक ।
२०. सिख सम्प्रदाय का एक पवित्र धर्म-ग्रन्थ, जिसका नित्य पाठ किया जाता है। □



Recommended By Dr. P. N. Singh

GURUKUL KANGRI LIBR.	
Accession	<u>23-8-88</u>
Class on	<u>23-8-88</u>
Call no	<u>PK 30-7-98</u>
File no	<u>23-8-88</u>
Checked	<u>23-8-88</u>
Any Other	<u>PK 30-7-98</u>

25-11-88





भारतीय नवजागरण में आर्यसमाज तथा उसके संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती की भूमिका के अधिकृत व्याख्याकार डा० भवानीलाल भारतीय का जन्म राजस्थान प्रांत के अंतर्गत नागौर जिले के ग्राम परबसतर में आषाढ़ कृष्णा ३ सं. १९८५ वि. को हुआ। उनकी उच्चस्तरीय शिक्षा जोधपुर में हुई। उन्होंने संस्कृत तथा हिन्दी में एम. ए. तथा 'संस्कृत भाषा और साहित्य को आर्यसमाज का योगदान' शीर्षक विषय पर राजस्थान विश्वविद्यालय से ही पी. एच. डी. की उपाधि ग्रहण की।

डा० भारतीय को आर्यसमाज लेखन क्षेत्र में अवतीर्ण हुए ३७ वर्ष हो चुके हैं। इस बीच उन्होंने लगभग ६० छोटे बड़े ग्रन्थों का प्रणयन, सम्पादन, अनुवाद आदि किया है। दयानन्द सरस्वती की निर्वाण शताब्दी के अवसर उन्होंने नवजागरण के पुरोधा शीर्षक दयानन्द सरस्वती का शोधपूर्ण, बृहद, जीवनचरित लिखा था। आर्यसमाज के वेदविद् विद्वानों, शास्त्रार्थ महारथियों, पत्रकारों एवं लेखकों पर अनेक अनुसंधानपूर्ण ग्रंथ छप चुके हैं। पं. लेखराम पुरस्कार, पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय स्मारक साहित्य पुरस्कार, विद्यावती शारदा साहित्य पुरस्कार तथा पं. गोवर्धन शास्त्री स्मारक पुरस्कार आदि से सम्मानित डा० भारतीय आर्यसमाज की साहित्यिक एवं अनुसंधानात्मक गतिविधियों में विगत तीन दशाब्दों से निरन्त सम्बद्ध रहे हैं।

वे आर्यसमाज की संगठनात्मक गतिविधियों में भी निरन्तर भाग लेते रहे हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के मन्त्री तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के वर्षों तक वे अन्तरंग सदस्य तथा उपमन्त्री रहे। दो दशाब्द से भी अधिक समय तक राजस्थान की कॉलेज शिक्षा सेवा में रहने के पश्चात् वे विगत सात वर्षों से पंजाब विश्वविद्यालय की दयानन्द अनुसंधान पीठ के अध्यक्ष तथा प्रोफेसर पद पर कार्यरत हैं। स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली के अन्तर्गत प्रकाशित रचनाओं के वैज्ञानिक रीति के संपादन, विवेचन तथा अंग्रेजी ग्रन्थों के अनुवाद आदि से प्रो. भारतीय की सारस्वत साधना सम्यक् रूप से परिलक्षित होती है। आर्यसमाज विषयक शोध और अनुसंधान के बारे में भारतीय एवं विदेशी विद्वान उनसे प्रामाणिक परामर्श लेने में गौरव का अनुभव करते हैं।

गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली-६